मूल्य : आठ रुपये (८·००)

प्रथम संस्करण : मई, १९५८

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

क्रम

१. 'जोश' मलीहाबादी ... १

२. 'जिगर' मुरादाबादी ... २३

३. 'फ़िराक़' गोरखपुरी ... ३९

४. 'हफ़ीज़' जालंधरी ... ५३

५. 'अख्तर' शोरानी ... ७१

६. अब्दुलहमीद 'अदम' ... ८९

७. 'साग़र' निज़ामी ... १०१

८. 'मजाज़' लखनवी ... ११३

९. फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' ... १३३

१०. नून, मीम, राशिद ... १४९

११. मुईन अहसन 'जज़्बी' ... १६१

१२. सरदार जाफ़री ... १७७

१३. 'मख्दूम' मुहीउद्दीन ... २०१

१४. अहमद 'नदीन' क़ासमी ... २१५

१५. जां निसार 'अख्तर' ... २३१

१६. 'साहिर' लुध्यानवी ... २४७

१७. 'वामिक़' जौनपुरी ... २६५

१८. गुलाम रब्बानी 'ताबां' ... २७९

१९. जगन्नाथ 'आज़ाद' ... २९३

२०. 'अर्श' मलस्यानी ... ३०३

२१. 'मख्मूर' जालंधरी ... ३१५
२२. 'अख्तर' उल-ईमान ... ३३३
२३. 'सलाम' मछलीशहरी ... ३४३
२४. 'मजरूह' सुलतानपुरी ... ३५५
२५. 'क़तील' शफ़ाई ... ३६७

भूमिका

हिन्दी काव्य की तरह उर्दू शायरी का नवीन काल भी १८५७ ई० की क्रान्ति के बाद शुरू होता है। इससे पूर्व की सौ वर्षीय उर्दू शायरी (अपवादों को छोड़ कर) बादशाहों के क़सीदों (प्रशंसात्मक काव्य), सूफ़ियाना और इश्क़िया गज़लों तक ही सीमित थी। मानसिक विलासप्रियता, नैराश्य, करुणारस, व्यक्तिवाद, आध्यात्मिकता, अवसन्नता इत्यादि प्रवृत्तियों को विभिन्न 'रदीफ़ों' और 'काफ़ियों' में व्यक्त करने और शाब्दिक बाज़ीगरी दिखाने को ही (जिसे 'नाज़ुक-ख्याली' कहा जाता था) काव्य की पराकाष्ठा माना जाता था। ऐसा होना एक रूप से अनिवार्य भी था क्योंकि जब तक शांत तथा स्थिर सामाजिक जीवन में भौतिक तथा चिंतनात्मक परिवर्तन उत्पन्न न हों, साहित्य तथा काव्य के लिए भी, जो जीवन का प्रतीक होता है, नये मार्ग नहीं खुलते। ऐसे परिवर्तनों के लिए किसी बड़ी सामाजिक तथा राजनैतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है जो १८५७ ई० से पूर्व भारत के दीर्घ जागीरदारी-काल में कहीं नज़र नहीं आती। परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य हुए। राज्य बदलते रहे, खून की नदियां भी बहीं किन्तु इन समस्त बातों का सामूहिक सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वह जहाँ था, वहीं रहा। ऐसी स्थिति में जब कि देश का सामाजिक जीवन शताब्दियों तक एक विशेष वातावरण में सीमित और एक विशेष डगर पर चुपचाप चलता रहा हो, साहित्य तथा काव्य में अपेक्षित उत्थान की तलाश व्यर्थ होगी। प्राचीन उर्दू शायरों को यदि काल्पनिक 'माशूक़' की ज़ुल्फ़ों से डसे जाने और सीने पर नज़रों के तीर खाने से फ़ुर्सत न मिली तो उसमें उनका उतना दोष नहीं जितना उस काल की व्यवस्था का था।

वह व्यवस्था ही ऐसी थी जो शायर को जीवन की मूल समस्याओं के प्रति विमुख हो 'जाम और सबू' में डूबने, मस्त-अलस्त रहने या अधिक से अधिक 'ख़ुदा से लौ लगाने' की प्रेरणा करती थी। अतएव वे शायर जो राजदरबारों से सम्बंवित थे वे :

ग़र यार मय पिलाये, तो फिर क्यों न पीजिये
ज़ाहिद नहीं, मैं शेख़ नहीं, कुछ वली नहीं
(इन्शा)

की रट लगाते रहे और जिनकी पहुँच दरबारों तक न हो सकी थी, आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें निराशावादी बना दिया और जीवन उनके समीप 'रात को रो रो सुबह करने' और 'दिन को ज्यों त्यों शाम करने' का विषय बन गया और यह सिलसिला इतनी दूर चला, इतना शक्तिशाली हो गया कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब 'नज़ीर' अकबराबादी ने शायरी की इन प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह किया, शायरी को नवाबों की विलासतापूर्ण महफ़िलों और नींद की पेंग में निमग्न शायरों की पकड़ से निकाल कर बीच चौराहे में खड़ा करने का प्रयत्न किया और :

टुक हिरस-ओ-हवा[1] को छोड़ मियाँ, मत देस विदेस फिरे मारा
कज्ज़ाक़[2] अजल को लूटे हैं, दिन रात बजाकर नक्क़ारा
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतर, क्या गउएं पल्ला सर भारा
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर, क्या आग, धुआं और अंगारा
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा

ऐसे शेर कहकर मनुष्य और उसकी सामाजिकता को काव्य-विषय बनाया तो लकीर के फ़क़ीरों ने उन्हें बाज़ारू और घटिया शायर कहकर नज़र-अंदाज़ कर दिया। यहाँ तक कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब 'ग़ालिब' ने ग़ज़ल के तंग दामन को फैलाने और उसमें दार्शनिकता समोने का प्रयत्न किया तो उन्हीं सज्जनों ने उन पर 'मोहमलगो' (अर्थहीन शेर कहने वाला) होने का आरोप लगाया और उसके चौथाई शताब्दी बाद तक :

---

१. लोलुपता २. डाकू

रुख़-ए-रोशन के आगे शमा रखकर वो यह कहते हैं
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है

(दाग़)

—ऐसे काव्य को ही महान काव्य का स्थान देते रहे।

१८५७ की असफल क्रांति के बाद भारत की राजनीति में असाधारण और मौलिक परिवर्तन हुआ। शताब्दियों की जागीरदारी व्यवस्था पतनशील हुई और उसके स्थान पर पश्चिम से आई हुई औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सामान्य राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों से सामाजिक जीवन तथा मानव विचारों में भी परिवर्तन होने लगे। जीवन की जर्जर परम्पराओं पर कुठाराघात हुआ, नये रूप से वर्गीकरण हुआ और मध्यम वर्ग के लोगों ने पश्चिमी विद्या-विज्ञान को अपनाना शुरू किया। प्रत्यक्ष है इस सार्वभौम परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर होना भी अनिवार्य था। इसी सामाजिक परिवर्तन ने कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी जन्म दिया जो चैतन्य रूप से साहित्य तथा काव्य को बदलती हुई परिस्थितियों के साथ-साथ चलाना चाहते थे। जिन महान् लेखकों और कवियों ने उस समय परिवर्तन-शील परिस्थितियों को स्वीकार किया और आगे बढ़ते हुए जीवन का साथ दिया उनमें सर. सय्यद, हाली, आज़ाद और शिबली के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८६७ में 'आज़ाद' ने पहलेपहल उर्दू शायरी को 'नज़्म' नामक काव्य-रूप से परिचित कराया और लाहौर में कर्नल हालरायड (डायरेक्टर, शिक्षा विभाग, पंजाब) की सहायता से ऐसे मुशायरों की नींव रखी जिनमें शायर को ग़ज़ल का 'तरह मिसरा' देने की बजाय नज़्म के लिये कोई उपयोगी विषय दिया जाता था। स्वयं आज़ाद ने प्राकृतिक दृश्यों पर बहुत-सी कविताएँ लिखीं। उनके सम्मुख दो मौलिक सिद्धान्त थे; एक तो काव्य-विषय का अनुक्रम और दूसरे 'हुस्न व इश्क़' की तंग गली से निकलकर अन्य सांसारिक विषयों का प्रयोग। परन्तु 'आज़ाद' का काम अधूरा रहता यदि इस आंदोलन का नेतृत्व 'हाली' अपने हाथ में न लेते। 'हाली' साहित्य द्वारा एक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे और उन्होंने निःसन्देह उससे बहुत महत्वपूर्ण तथा महान उद्देश्य सिद्ध किया। 'मुसद्दस' द्वारा जैसी कल्याणकारी नज़्म लिखकर उन्होंने प्राचीन शायरी के रूप-रंग को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी बदल

डाला और फिर 'मुक़दमा शेर-ओ-शायरी' जैसा महान् आलोचना-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर तो रही-सही कसर पूरी कर दी। शायरी को दैवी संकेत और शायर को अमानवीय व्यक्ति कहकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो रहने वाले लोगों को पहली बार ऐसी तर्कपूर्ण बातों से चौंकाया कि :

"क़ायद है कि जिस क़दर सोसाइटी के ख्यालात, उसकी रायें, उसकी आदतें, उसकी रग़बतें (रुचियां), उसका मेलान (प्रवृत्ति) और मजाक़ बदलता है, उसी क़दर शेर की हालत बदलती रहती है और यह तब्दीली बिल्कुल बेमालूम होती है क्योंकि सोसाइटी की हालत देखकर शायर क़सदन अपना रंग नहीं बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह खुद भी बदलता है।"

(मुक़दमा शेर-ओ-शायरी)

अधिक विस्तार में न जाकर 'हाली' के काम को समझने के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-काव्य को रीतिकाल की दलदल से निकालकर उपयोगिता तथा राष्ट्रवाद की राह पर लगाया था, उसी प्रकार हाली ने उर्दू की कृत्रिम इश्किया शायरी की चूलें हिला दीं और न केवल अपने काल के कवियों और साहित्यकारों का बल्कि आने वाली पीढ़ी का भी पथ-प्रदर्शन किया।

'हाली' के बाद उर्दू साहित्य में एक अंतरिम-काल आता है जिसमें पश्चिमी साहित्य से जानकारी बढ़ी। पश्चिम का काव्य साहित्य चूंकि अपने जागीरदारी काल की मंज़िलों से गुज़र कर बहुत आगे निकल चुका था इसलिए उससे प्रभावित होने वाले उर्दू कवियों ने काव्य विषय को विशाल करने के साथ-साथ उर्दू नज़्म को कलात्मक परिपक्वता भी प्रदान की। इस प्रसंग में अजमत अल्लाह खां का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने शायरी में नये छंदों की आवश्यकता, अंग्रेज़ी काव्य-रूपों के प्रसार, भाषा में हिन्दी शब्दों तथा प्रक्रियाओं के समावेश से स्मृद्धि पैदा करने और विचार और भावों के प्राकृतिक प्रकटीकरण पर ज़ोर दिया और उर्दू शायरी में पहली बार ग़ज़ल के काल्पनिक 'माशूक' को हाड़-मांस प्रदान कर उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग किया† (इससे पूर्व 'माशूक' के लिए पुल्लिग इस्तेमाल होता था जिसे प्रत्यक्ष रूप से फ़ारसी से लिया

---

† इस प्रसंग में आगे चलकर अख्तर शीरानी ने उर्दू शायरी के माशूक पर 'सलमा', 'अजरा' आदि स्त्री नामों की अमिट मुहर लगा दी।

गया था) । लेकिन अज़मत अल्लाह खां की शायरी केवल इश्क़िया यथार्थवाद (जो अपने आप में बहुत बड़ा कारनामा थी) तक सीमित रही । सामूहिक रूप से उर्दू शायरी को धरती से उठाकर आकाश तक पहुँचाने का सेहरा 'इक़बाल' के सिर आता है ।

इक़बाल के साथ-साथ या कुछ पहले अकबर इलाहाबादी, चक्बस्त, हसरत मोहानी, सरवर जहांवादी, इस्माईल मेरठी इत्यादि अपने समय के उच्चकोटि के कवियों ने साहित्य और समाज तथा साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध को काफ़ी सुदृढ़ किया लेकिन उनमें से अधिकांश की कवितायें राजनैतिक नारों से आगे न बढ़ सकीं । इक़बाल की शायरी का प्रारंभ भी यद्यपि राजनैतिक नज़्मों से हुआ किन्तु अपने समकालीन शायरों की अपेक्षा उनका राजनैतिक बोध काफ़ी आगे था । उन्होंने भारतीय राजनीति के लगभग समस्त पहलुओं को अपनी शायरी में स्थान दिया लेकिन पर्याप्त चिंतन के बाद—इसी विशेषता ने उनमें गहराई उत्पन्न की और वे न केवल अपने युग के महान् कवि बने अपितु एक दार्शनिक भी । उन्होंने हिन्दु-मुस्लिम एकता के गीत गाये, देश की मिट्टी का कण-कण उन्हें देवता नज़र आया । देश में एक 'नये शिवाले' की नींव रखने के उन्हों ने मनसूबे बांधे, भारतवासियों की मौलिक समस्याओं पर गहरी दृष्टि डाली और श्रमजीवियों को जागरूक होने का संदेश दिया । १९१७ ई० में जब रूस में महान् क्रान्ति हुई और दुनिया के छठे भाग में श्रमिक वर्ग ने साम्राज्य और पूंजीवाद का तख्ता उलट दिया तो इक़बाल ने इसे 'बतन-ए-गेती' (जगत की कोख) से 'आफ़ताब-ए-ताज़ा' (नवप्रभात) का नाम दिया और इसके साथ ही उस रोमांटिक क्रान्तिवाद की परिपाटी पड़ी जो 'जोश' मलीहाबादी के हाथों निखरती हुई आधुनिक काल के प्रगतिशील कवियों की सम्पत्ति और काव्य-विषय बनी । हाली और इक़बाल के बिना आधुनिक उर्दू शायरी को आज की मंज़िल पर पहुँचने के लिए शायद बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती ।

१८५७ ई० के बाद आधुनिक उर्दू शायरी देश तथा मानव-प्रेम और साम्राज्य-विरोध की मंज़िलें तय करती हुई जब प्रथम महायुद्ध के बाद नये क्रांतिकारी मोड़ पर पहुँची तो एक बार पुनः उसमें गतिरोध उत्पन्न हो गया । नई राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ शायरों से कुछ ऐसी माँगें करने लगीं जिन्हें स्वयं इक़बाल भी पूरा न कर सके (और उन्होंने इस्लाम की दुनिया में जा शरण ली) । देश में स्वतंत्रता आन्दोलन इतना प्रबल

हो गया और किसानों के विद्रोह और मजदूरों के संगठन के भय से साम्राजी अत्याचार इतना बढ़ गया कि राजनैतिक नेताओं की भाँति लेखक तथा कवि भी इस असमंजस में पड़ गये कि आगे बढ़ें या वहीं रुक जायें—ऐसे नाज़ुक, महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक मोड़ पर कथा-साहित्य में प्रेमचन्द और काव्य-साहित्य में 'जोश' मलीहाबादी उर्दू साहित्य के नेतृत्व के लिये आगे बढ़े। प्रेमचन्द ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव डाली और जोश ने रोमांसवाद को आगे बढ़ाया और अपनी एजीटेशनल नज़्मों द्वारा अंग्रेज़ी शासन और उसके अन्याय तथा अत्याचारों पर आक्रमण किये। स्वतंत्रता संग्राम में मर-मिटने के लिए नौजवानों को ललकारा। हर प्रकार की राजनैतिक समझौतावाज़ी पर लानतें भेजीं और साम्यवाद के उगते हुए सूरज की ओर ऐसा स्पष्ट संकेत किया कि उनके वाद आने वाला प्रत्येक प्रगतिशील कवि उस सूरज के प्रकाश में नहा गया। इन्हीं दो महान् साहित्यकारों के नेतृत्व में लेखक तथा कवि एक यात्री-दल का रूप धारण कर गये और इस दल ने १९३५ ई० में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की नींव डाली।

प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डालने वाले और उसके घोषणा-पत्र के प्रस्तावक सज्जात ज़हीर, मुल्कराज आनन्द आदि ऐसे तरुण परन्तु शिक्षित लेखक थे जिन्होंने अपने प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और उसकी धाराओं का गहरा अध्ययन किया था। 'साहित्य को जीवन का प्रतीक' वनाने के साथ-साथ वे उसे 'भविष्य के निर्माण का प्रभाव-शाली साधन' वनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'भारत का नया साहित्य हमारे जीवन की मौलिक समस्याओं को अपना विषय वनाये—ये भूख, निर्धनता, सामाजिक विषमता तथा परतन्त्रता की समस्यायें हैं।'

यह आवाज़ इतनी शक्तिशाली तथा सक्रिय थी कि न केवल तरुण कवि और लेखक इससे प्रभावित हुए वल्कि उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों ने इसका स्वागत किया। काव्य साहित्य को उस समय तक आज़ाद, हाली, शिवली, इक़बाल और जोश जो चिंतनशीलता प्रदान कर चुके थे, नई पौध के कवियों ने उसे और विशाल किया और आज जब हम १९३५ ई० के वाद के उर्दू काव्य-साहित्य का निरीक्षण करते हैं तो इसकी असाधारण उन्नति पर आश्चर्य प्रकट किये विना नहीं सकते। आज की उर्दू शायरी को किसी कोण से देख लीजिये, वह संसार की उन्नत से उन्नत भाषा के काव्य साहित्य का मुक़ाबिला कर सकती है।

इस संकलन में जैसा कि इसके नाम से प्रत्यक्ष है, केवल आज के उर्दू शायरों की रचनाओं का संकलन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु आज के उर्दू शायर संख्या में कुछ कम नहीं हैं। उनमें एक बड़ी संख्या ऐसे शायरों की भी है जो उर्दू-साहित्य में अपने नाम तथा काम के लिए अमर स्थान प्राप्त कर चुके हैं परन्तु कई एक विवशताओं के कारण वे सभी इस संकलन की शोभा नहीं बन सके, जिन्हें इस संग्रह में नहीं लिया जा सका, उनसे मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ।

—प्रकाश पण्डित

—उन शायरों के नाम जो इस पुस्तक की शोभा नहीं बन सके

'जोश' मलीहाबादी

काम है मेरा तग़य्युर नाम है मेरा शबाब
मेरा नारा इन्क़िलाबो-इन्क़िलाबो-इन्क़िलाब

दूसरी ओर मशीन पर हल को और नागरिक जीवन पर ग्राम्य जीवन को प्रधानता देते हैं। ज्ञान को नारी के सौन्दर्य की मृत्यु और नारी को पुरुष के सुख-वैभव का एक साधन मानते हैं।

'जोश' साहब के व्यक्तित्व की यह दोरुखी उनकी पूरी शायरी में भी, जो लगभग आधी सदी में फैली हुई है, विद्यमान है। और इसकी पुष्टि करते हैं 'अर्शो-फ़र्श' (धरती और आकाश) 'शोला-ओ-शबनम' (आग और ओस) 'सुंबलो-सलासिल' (सुगन्धित घास और ज़ंजीरें) इत्यादि उनके कविता-संग्रहों के नाम; और उनकी निम्नलिखित रुबाई से तो उनकी पूरी शायरी के नैन-नक़्श सामने आ जाते हैं :

झुकता हूँ कभी रेगे-रवां[1] की जानिब,
उड़ता हूँ कभी कहकशां[2] की जानिब,
मुझ में दो दिल हैं, एक मायल-ब-ज़मीं[3],
और एक का रुख है आसमां की जानिब।

'जोश' की शायरी की इस परस्पर-विरोधी-अवस्था को समझने के लिए जिसमें एक साथ खैयाम, हाफ़िज़, गेटे, नतशे और कार्ल मार्क्स का दर्शन विद्यमान है, आवश्यक है कि उस वातावरण को, जिसमें शायर का पालन-पोषण हुआ, और उन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को, जिनमें शायर ने अपनी आंख खोली, सामने रखा जाए, क्योंकि मनुष्य का सामाजिक-बोध सदैव समाज के परिवर्तन-शील भौतिक मूल्यों का बंदी होता है और वह चीज़ जिसे 'घुट्टी' कहा जाता है मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व रखती है।

शबीर हसन खां 'जोश' १८९४ में मलीहाबाद (उत्तर-प्रदेश) में पैदा हुए। जाति के पठान और रहन-सहन से लखनवी। परदादा फ़क़ीर मोहम्मद 'गोया' अमीर-उद्दौला की सेना में रिसालदार भी थे और साहित्य-क्षेत्र के महारथी भी। ग़ज़लों का एक संग्रह तथा गद्य की एक प्रसिद्ध पुस्तक छोड़ी। 'गोया' के पुत्र मोहम्मद खां अहमद भी एक प्रतिभाशाली शायर थे। यों 'जोश' ने उस जागीरी वातावरण में पहली सांस ली जिसमें काव्य की रुचि के साथ-साथ घमण्ड, आत्मश्लाघा और अहम्मन्यता की भावना शिखर पर थी। गांव का कोई प्राणी यदि खींचे हुए धनुष की भान्ति शरीर को दोहरा करके सलाम न करता था तो मारे कोड़ों के उसकी खाल उधेड़ दी जाती थी। (स्वयं 'जोश'

---

१. आंधी-झक्कड़ से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाली रेत।
२. आकाश-गंगा ३. धरती की ओर बढ़ने वाला।

साहब भी एक शरीर पर अपनी छड़ी आज़मा चुके हैं।) प्रत्यक्ष है कि जन्म लेते ही 'जोश' इस वातावरण से दामन न छुड़ा सकते थे। उनमें भी वही आदतें उत्पन्न हो गईं जो उनके पूर्वजों का स्वभाव बन चुकी थीं। अतः अपनी मानसिक स्थिति के सम्बन्ध में एक स्थान पर वे स्वयं लिखते हैं: "मैं लड़कपन में अत्यन्त क्रूर था। मेरे हर बोल से जैसे चिंगारियां निकलती थीं.........मेरे स्वभाव की यही मौलिक कटुता मेरी राजनैतिक शायरी में तीखा-कड़वा स्वर बनकर आज भी व्यक्त होती है और मेरी शायरी का समालोचक मेरे स्वर की कर्कशता पर चीख़ उठता है।"

स्वर की इस कर्कशता ने जोश के सामाजिक सम्बंधों पर कुठाराघात किया। उन्होंने अपने पिता से विद्रोह किया। पूरे कुल से विद्रोह किया। धर्म, राज्य, समाज अर्थात् हर उस चीज़ से विद्रोह किया जो उन्हें अपने स्वभाव के प्रतिकूल प्रतीत हुई और विद्रोह के इस सिलसिले ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि कई स्थानों पर उन्होंने केवल विद्रोह के लिए विद्रोह किया और स्वयं को सर्वोपरि तथा सर्वोच्च समझ कर :

"दूसरे आलम[1] में हूँ दुनिया से मेरी जंग है।"

कहा और

काम है मेरा बग़ावत नाम है मेरा शबाब[2]।
मेरा नारा इंक़िलाबो-इंक़िलाबो-इंक़िलाब[3]॥

का नारा लगाया।

उन्होंने बग़ावत और इंक़िलाब (विद्रोह तथा क्रांति) का एक ही अस्तित्व माना और उसी रूप में उन्हें हमारे सामने पेश किया और देश की जनता ने जो अंग्रेज़ी राज्य में बुरी तरह पिस रही थी और देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रही थी, उनके इस नारे को उठा लिया। वह एक विचित्र संघर्षपूर्ण काल था। इधर भारत साम्राज्य की जंजीरों में जकड़ा हुआ स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहा था और उधर रूस की क्रांति के बाद एक नया जीवन-दर्शन सारे संसार को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। अंग्रेज़ों ने इस नये दर्शन की वास्तविक रूप-रेखा भारत तक नहीं पहुँचने दी और न ही उस समय भारत में श्रमजीवियों का कोई ऐसा संगठित दल था जो वर्गीय हितों के आधार पर उस स्वतन्त्रता-संग्राम तथा जीवन-व्यवस्था का विश्लेषण करके

१. संसार २. यौवन ३. बाद को 'जोश' साहब ने स्वयं ही बग़ावत शब्द के स्थान पर शब्द तग़य्युर (परिवर्तन) कर दिया।

नवाब रामपुर से लेकर उनकी मोटर के ड्राइवर तक प्रत्येक व्यक्ति को उनके प्रति गहरी श्रद्धा है। अतः आपके कहने भर की देर है, वे आपके भाई की सौ-सवा-सौ की नौकरी के लिए शिक्षा-मंत्री या खाद्य-मंत्री को टेलीफ़ोन कर देंगे या स्वयं मिलने निकल खड़े होंगे और आपके किराये के तीन रुपये बचाने के लिए दस मील प्रति गैलन खाने वाली उनकी यह लम्बी ब्यूक आपको अलीगढ़ पहुँचाने के लिए रवाना हो जाएगी। किसी ऐसे मुशायरे में जिसमें मुल्लाओं की संख्या अधिक हो, वे जान-बूझकर ऐसी रुबाइयां सुनायेंगे जिनमें मुल्लाओं और ख़ुदापरस्तों को गालियाँ दी गई हों। सरकारी ढंग की महफ़िल होगी तो उन्हें अपनी नज़्म 'मातमे-आज़ादी' याद आजायेगी और महिलाओं की संख्या अधिक देखेंगे तो मज़े ले-लेकर 'हाय जवानी, हाय ज़माने' अलापना शुरू कर देंगे। मुल्ला लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, सरकारी दफ़्तरों में टीका-टिप्पणी होती है, और महिलायें 'वॉक-आउट' तक कर जाती हैं, लेकिन जोश की 'क़लंदरी' में फ़र्क नहीं आता। शायद वे जानते हैं (और बिल्कुल ठीक जानते हैं) कि अब वे ख्याति के उस शिखर पर पहुँच चुके हैं जहाँ किसी की अनुचित बातों पर भी क्रोध के बजाय प्यार ही आ सकता है।

आश्चर्य और दुख की बात है कि उर्दू का यह प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय शायर पिछले दिनों स्थायी रूप से पाकिस्तान में जा बसा है। और और भी आश्चर्य और दुख की बात यह है कि 'जोश' से कभी इस बात की आशा नहीं की जा सकती थी कि वह 'बिक' भी सकता है, यद्यपि कुछ लोगों का अब भी यह ख़याल है कि "आख़री उम्र में क्या ख़ाक मुसलमां होंगे"।

ग़द्दार से ख़िताब

उंगलियां उट्ठेंगी दुनियां में तेरी औलाद पर।
ग़लग़ला होगा वो आते हैं रज़ालत[1] के पिसर[2] ॥

तेरी मस्तूरात[3] का बाज़ार में होगा क़याम।
मारिज़े-दुशनाम[4] में तेरा लिया जाएगा नाम ॥

उस तरफ़ मुंह करके थूकेगा न कोई नौजवाँ।
बर की हसरत में रहेंगी तेरे घर की लड़कियां ॥

क्या जवानों के ग़ज़ब का ज़िक्र ओ इब्ने-ख़िताब[5] !
सुन के तेरा नाम उड़ जायेगा बूढ़ों का ख़िज़ाब ॥

फ़ोश[6] समझी जायेगी महलों में तेरी दास्तां।
कांप उठेंगी ज़िक्र से तेरे कँवारी लड़कियां ॥

आएगा तारीख़ का जिस वक़्त जुंबिश में क़लम।
क़ब्र तेरी दे उठेगी लौ जहन्नुम की क़सम ॥

---

१. नीचता २. वंशज ३. औरतों ४. गाली देने के सम्बन्ध में
५. उपाधियों के लिए लालायित ६. अश्लील

ये कौन उठा है शर्माता ?

ये कौन उठा है शर्माता रैन का जागा, नींद का माता
नींद का माता धूम मचाता अंगड़ाइयां लेता, बल खाता
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख[1] पे सुर्ख़ी, आंख में जादू भीनी-भीनी बर[2] में ख़ुशबू
बांकी चितवन, सिमटे अबरू[3] नीची नज़रें, बिखरे गेसू[4]
ये कौन उठा है शर्माता ?

नींद की लहरें गंगा जमुनी जिल्द के नीचे हल्की-हल्की
आंचल ढलका, मसकी साड़ी हल्की महंदी, धुंदली बेंदी
ये कौन उठा है शर्माता ?

डूबा हुआ रुख ताबानी में[5] अनवारे-सहर[6] पेशानी में
या आबे-गुहर[7] तुग़यानी[8] में या चाँद का मुखड़ा पानी में
ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख़सार[9] पे मौजे-रंगीनी[10] कच्ची चांदी, सुच्ची चीनी
आंखों में नक़्शे-ख़ुदबीनी[11] मुखड़े पे सहर[12] की शीरीनी[13]
ये कौन उठा है शर्माता ?

आंख में ग़लतां[14] इशरतगाहें[15] नींद की सांसें जैसे आहें
बिखरी ज़ुल्फ़ें उरियां[16] बांहें जान से मारें जिसको चाहें
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१. चेहरे २. बग़ल ३. भौंहें ४. केश ५. मुखड़ा प्रकाश में डूबा हुआ है ६. सुबह का प्रकाश ७. मोती का पानी ८. ज्वार ९. कपोल १०. रंगीन धारा ११. आत्माभिमान के चिह्न १२. प्रभात १३. मधुरता १४. डूबे हुए १५. विलासगृह १६. नग्न

फैला-फैला आंख में काजल उलझा-उलझा ज़ुल्फ़ का बादल
नाज़ुक गरदन, फूल-सी हेकल[1] सुर्ख़ पपोटे नींद से बोझल
ये कौन उठा है शर्माता ?

कुछ जाग रही, कुछ सोती है हर मौजे-सबा[2] मुँह धोती है
नासुफ़्ता रुख़[3] या मोती है अंगड़ाई से जिज़-बिज़[4] होती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

चेहरा फीका नींद के मारे फीकेपन में शहद के धारे
जो भी देखे जान को वारे धरती माता बोझ सहारे
ये कौन उठा है शर्माता ?

हलचल में दिल की बस्ती है तूफ़ाने - जुनूं में[5] हस्ती है
आंख में शब की मस्ती है और मस्ती दिल को डसती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१. गले का तावीज़ २. प्रभात-समीर का झोंका ३. अनबिंधा (सुकुमार) चेहरा ४. तंग, परेशान ५. उन्माद के तूफ़ान में

ऐतराज़े-अज्ज़[1]

लोग कहते हैं कि मैं हूं शायरे - जादूबयां[2] ।
सदरे-माना[3] , दावरे-अलफ़ाज़[4] , अमीरे-शायरां[5] ॥
और खुद मेरा भी कल तक खैर से ये था खयाल ।
शायरी के फ़न में हूं मिनजुमला-ए-अहले-कमाल[6] ॥
लेकिन अब आई है जब इक-गोना[7] मुझ में पुख्तगी ।
ज़ह्न[8] के आईने पर कांपा है अक्से-आगही[9] ॥
आसमां जागा है सर में और सीने में ज़मीं ।
अब मुझे महसूस होता है कि मैं कुछ भी नहीं ॥
जिहल[10] की मंज़िल में था मुझ को ग़रूरे-आगही ।
इतनी लामहदूद[11] दुनिया और मेरी शायरी !
ज़ुल्फ़े-हस्ती[12] और इतने बेनिहायत पेचो-खम ।
उड़ गया रंगे-तअ़ल्ली[13], खुल गया मेरा भरम ॥
मेरे शेरों में फ़क़त इक तायराना[14] रंग है ।
कुछ सियासी रंग है, कुछ आशिक़ाना रंग है ॥
चहचहे कुछ मौसमों के, ज़मज़मे[15] कुछ जाम के ।
दैरे-दिल में[16] चंद मुखड़े मरमरीं असनाम के[17] ॥
चंद ज़ुल्फ़ों की सियाही, चंद रुखसारों[18] की आब ।
गाह[19] हरफ़े-बेनवाई[20], गाह शोरे-इंक़िलाब ॥

---

१. हीनता की आत्म-स्वीकृति २. जिसके बयान में जादू हो ३, ४, ५. अर्थों का बादशाह, शब्दों का हाकिम, शायरों का नेता ६. सबसे बढ़े हुओं में ७. ज़रा-सी ८. मस्तिष्क ९. बुद्धि का प्रतिबिम्ब १०. अज्ञानता ११. विशाल, असीम १२. विश्व-केश १३. शेखी का रंग १४. छिछला १५. गीत १६. दिल के मन्दिर में १७. मरमर की मूर्तियों (प्रेमिकाओं) के १८. कपोलों १९. कभी २० बेसामानी (विवशता) की चर्चा

वस्ल[1] के दो-चार नग़मे, हिज्र[2] की एक-आध आह।
क़अ्र[3] से नावाक़फ़ियत, सतहे-दरिया[4] पर निगाह॥
गाह मरने के अज़ायम[5], गाह जीने की उमंग
बस यही सतही[6] सी बातें, बस यही ओछे से रंग॥
बेखबर था मैं कि दुनिया राज़-अंदर-राज़ है।
वो भी गहरी ख़ामशी है जिसका नाम आवाज़ है॥
इब्तिदा-ओ-इंतिहा का इल्म नज़रों से निहां[7]।
टिमटिमाता-सा दिया, दो ज़ुलमतों[8] के दर्मियां॥
अंजुमन[9] में तख्लिये[10] हैं, तख्लियों में अंजुमन।
हर शिकन में इक खिचावट, हर खिचावट में शिकन[11]॥
पैकरे-हस्ती[12] पे ढीला है मज़ाहिर[13] का लिबास।
और मैं इसकी ज़रा-सी इक शिकन से रूशनास[14]॥
क्यों न फिर समझूं सुबक[15] अपने सुख़न के रंग को।
नुत्क़[16] ने अलमास[17] के बदले तराशा संग[18] को॥
पा रहा हूं शायद अब इस तीरह[19] हल्क़े से निजात।
क्योंकि अब पेशे-नज़र हैं उक़्दाहाए-कायनात[20]॥
ये भिंची उलझी ज़मीं, ये पेच-दर-पेच आसमां।
अलअमानो - अलअमानो - अलअमानो - अलअमां[21]॥
एक मुन्ना सा सितारा, एक नन्हा सा शरार[22]।
ये तज़लज़ुल[23], ये तलातुम[24], ये तमव्वुज[25], ये फ़िशार[26]॥

---

१. मिलन २. वियोग ३. गहराई ४. नदी के स्तर ५. संकल्प ६. छिछली ७. छुपा हुआ ८. अन्धेरों ९. जन-समूह १०. एकांत ११. सलवट १२. अस्तित्व की काया १३. दृश्यों १४. परिचित १५. हल्का १६. वाक्-शक्ति १७. हीरे १८. पत्थर १९. अन्धेरे २०. विश्व की गुत्थियाँ मेरे सामने हैं २१. खुदा की पनाह! २२. चिंगारी २३, २४, २५, २६. भूचाल, तूफ़ान, ज्वार-भाटा, अफ़रातफ़री

इक नफ़स[१] का तार और ये शोरे-उम्रे-जाविदां[२] ।
इक कड़ी और उसमें ज़ंजीरों के इतने कारवां ।।
इक सदा[३] और उसमें ये लाखों हवाई दायरे ।
जिनकी आवाज़ें अगर सुन ले तो दुनियां गूंज उठे ।।
एक बूंद और हफ़्त क़ुलज़म[४] के हिला देने का जोश ।
एक गूंगा ख़्वाब, और ताबीर[५] का इतना ख़रोश[६] ।।
इक कली और उसमें सदियों की मता-ए-रंगो-बू[७] ।
सिर्फ़ इक लम्हे की रग में और क़रनों[८] का लहू ।।
हर क़दम पर नस्ब[९] और इसरार[१०] के इतने ख़याम[११]!
और इस मंज़िल में मेरी शायरी मेरा कलाम!
जिसमें इल्मे-आस्मां है और न इसरारे-ज़मीं ।
एक ख़स[१२], इक दाना, इक जौ, एक ज़र्रा भी नहीं ।।
नौ-ए-इन्सानी[१३] को जब मिल जायेगी रफ़्तारे-नूर[१४] ।
शायरे-आज़म का तब होगा कहीं जाकर ज़हूर[१५] ।।
ख़ाक से फूटेगी जब उम्रे-अबद[१६] की रोशनी ।
झाड़ देगी मौत को दामन से जिस दिन ज़िन्दगी ।।
जब बशर[१७] की जूतियों की गर्द होगी कहकशां[१८] ।
तब जनेगी नस्ले-आदम शायरे-जादू-बयां ।।
फ़िक्र में कामिल[१९], न फ़न्ने-शेर[२०] में यकता[२१] हूं मैं ।
कुछ अगर हूं तो नक़ीबे-शायरे-फ़र्दा[२२] हूं मैं ।।

---

१. सांस २. अमर जीवन का कोलाहल ३. शब्द ४. सात समुद्र ५. स्वप्न-फल ६. शोर, वावेला ७. रंग और सुगंधि की राशि ८. शताब्दियों ९. गड़े हुए १०. भेदों ११. खैमे १२. तिनका १३. मनुष्य जाति १४. प्रकाश की सी तेज गति १५. आविर्भाव १६. अमर जीवन १७. मनुष्य १८. आकाश-गंगा १९. चिंतन में पारंगत २०. काव्य-कला २१. अद्वितीय २२. भावी शायर का सूचक

ग़ज़ल

फ़िक्र ही ठहरी तो दिल को फ़िक्रे-ख़ूबां[1] क्यों न हो ?
ख़ाक होना है तो ख़ाके-कूए-जानां[2] क्यों न हो ?

दहर में ऐ ख़्वाजा ! जब ठहरी असीरी नागुज़ीर ।
दिल असीरे-हल्क़ा-ए-गेसू-ए-पेचां क्यों न हो[3] ?

ज़ीस्त[4] है जब मुस्तक़िल आवारागर्दी ही का नाम ।
अक़्ल वालो फिर तवाफ़े-कूए-जानां[5] क्यों न हो ?

जब नहीं मस्तूरियों[6] में भी गुनाहों से नजात ।
दिल खुले-बंदों ग़रीक़े-बहरे-इस्यां क्यों न हो[7] ?

इक-न-इक हंगामे पर मौक़ूफ़[8] है जब ज़िन्दगी ।
मैकदे में रिंद रक़्सानो - ग़ज़लख़्वां क्यों न हो[9] ?

यां जब आवेज़िश[10] ही ठहरी है तो ज़र्रे छोड़कर ।
आदमी ख़ुरशीद[11] से दस्तो-गरेबां क्यों न हो[12] ?

इक-न-इक ज़ुलमत[13] से जब वाबस्ता[14] रहना है तो 'जोश' ।
ज़िन्दगी पर साया-ए-ज़ुल्फ़े-परीशां[15] क्यों न हो ?

---

१. सुन्दरियों की इच्छा २. प्रेयसी की गली की खाक ३. ऐ मालिक ! यदि संसार में बंदी होना अनिवार्य है तो फिर मनुष्य (प्रेयसी के) पेचदार केशों की कड़ी में बंदी क्यों न हो ? ४. जीवन ५. प्रेयसी की गली की परिक्रमा ६. गुप्त रूप से किये जाने वाले ७. पाप-सागर में क्यों न डूबे ? ८. आधारित ९. क्यों न नाचे-गाये ? १०. लाग-डांट ११. सूरज १२. क्यों न जूझे ? १३. अन्धेरा (स्याही) १४. सम्बन्धित १५. (प्रेयसी के) उलझे हुए केशों की छाया

क्या शैख़ मिलेगा गुलफ़िशानी करके[1],
क्या पायेगा तौहीने-जवानी करके,
तू आतिशे-दोज़ख़[2] से डराता है उन्हें,
जो आग को पी जाते हैं पानी करके।

◇ ◇ ◇

क्या फ़ायदा शैख़ ! तुझ से कीने[3] में मुझे,
ख़ुश्की में तुझे लुत्फ़, सफ़ीने[4] में मुझे,
अय्याश तो दोनों हैं, मगर फ़र्क़ ये है,
खाने में तुझे मज़ा, पीने में मुझे।

◇ ◇ ◇

काकुल[5] खुलकर बिखर रही है गोया,
नरमी से नदी गुज़र रही है गोया,
आंखें तेरी झुक रही हैं मुझसे मिलकर,
दीवार से धूप उतर रही है गोया।

◇ ◇ ◇

हम रहते हैं तिश्ना[6] छक के पीने के लिए,
गिर्दाब[7] में फंसते हैं सफ़ीने[8] के लिए,
जीते हैं, तो मरने के लिए जीते हैं,
मरते हैं तो बेदरेग़[9] जीने के लिए।

◇ ◇ ◇

ख़ुद को गुमकर्दा-गुनाह[10] करके छोड़ा,
हव्वा को भी तबाह करके छोड़ा,
क्या-क्या न किया ख़ुदा ने जन्नत में जतन,
आदम ने मगर गुनाह करके छोड़ा।

---

१. (उपदेशों की) पुष्प-वर्षा करके (कुकर्मों से बचने को कहना)
२. नरक की आग ३. द्वेष-भाव ४. नाव ५. केश ६. प्यासे
७. भंवर ८. नाव (बचने) ९. निश्चिन्त (भरपूर) १०. पाप-ग्रस्त

दिन होते न ज़र्द-रू[1] न रातें ही सियाह,
भूले से भी इक लब[2] पे न आती कभी आह,
इन्सान के दिल को छू न सकते आलाम[3],
मेरा-सा अगर शफ़ीक़[4] होता अल्लाह।

◇ ◇ ◇

क्यों मुझ से तक़ाज़ा है कि 'फंदे खोलो',
किस तरह कटे ये पाप, बोलो, बोलो,
बन्दे की तरफ़ शौक़ से आना यारो,
मायूस अल्लाह से तो पहले हो लो।

◇ ◇ ◇

मर-मर के जब इक बला से पीछा छूटा,
इक आफ़ते-ताज़ादम ने[5] आकर लूटा,
इक आबला-ए-नौ से हुआ सीना दोचार[6],
जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा।

◇ ◇ ◇

ये हुक्म है, चुप साध लो, आँखें न उठाओ,
दो खूब अज़ाँ, धूम से नाक़ूस[7] बजाओ,
गोबर पे चने चाब के पानी पीलो,
बिस्तर पे गिरो, डकार लो और मर जाओ।

◇ ◇ ◇

ऐ ख्वाब बता, यही है बाग़े-रिज़वां[8] ?
हूरों का कहीं पता, न ग़िलमां का[9] निशां,
इक कुंज में ख़ामोशो-मलूलो-तनहा[10],
बेचारे टहल रहे हैं अल्लाह मियां।

---

१. पीले चेहरे वाले २. होंट ३. दुख ४. स्नेही ५. नई मुसीबत ने ६. हृदय में नया छाला उत्पन्न होगया ७. शंख ८. जन्नत (स्वर्ग) ९. लौंडों का १०. मौन, उदास, अकेले

परिचय

"कोई अच्छा इन्सान ही अच्छा शायर हो सकता है," 'जिगर' मुरादाबादी का यह कथन किसी दूसरे शायर पर लागू हो या न हो, स्वयं उन पर बिल्कुल ठीक बैठता है। यों पहली नज़र में इस कथन में मतभेद की गुंजाइश भी कम ही नजर आती है लेकिन इसको क्या किया जाए कि स्वयं 'जिगर' के बारे में कुछ व्यक्तियों का मत यह है कि जब वे 'अच्छे इन्सान' नहीं थे, तब बहुत अच्छे शायर थे।

"जब वे अच्छे इन्सान नहीं थे" से उन समालोचकों का अभिप्राय उस काल से है, जिस काल में वे बेतहाशा शराब पीते थे। इस बुरी तरह और इस मात्रा में कि यदि दस व्यक्ति मिलकर आयु भर पीते रहें, तब भी उतनी न पी पायेंगे, जितनी 'जिगर' कुछ एक वर्षों में पी चुके हैं। और उन समालोचकों का अभिप्राय उस 'जिगर' से भी है जो सारे संसार और उसकी नैतिकता को शराब के प्याले में डुबो देते थे और जिन्होंने अपना दाम्पत्य जीवन नरक समान बना लिया था[1] और आठों पहर मस्त-अलस्त रहकर :

---

१. जिगर साहब की शादी उर्दू के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय 'असग़र' गोंडवी की छोटी साली से हुई थी। फिर 'असग़र' साहब ने 'जिगर' साहब से तलाक़ दिलवाकर उनकी पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया था। 'असग़र' साहब के देहांत पर 'जिगर' साहब ने फिर उसी महिला से दोबारा शादी कर ली और कुछ लोगों का ख़याल है कि उनकी इस पहली पत्नी ने ही उनकी शराब पीने की लत छुड़वाई है।

मुझे उठाने को आया है वाइज़े-नादां[1]
जो उठ सके तो मेरा साग़रे-शराब[2] उठा
किधर से वर्क़[3] चमकती है देखें ऐ वाइज़ !
मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताब[4] उठा।

ऐसे उच्चकोटि के शेर कहते थे और उनके तरन्नुम (गान) की हालत यह थी कि बड़े-बड़े उस्तादों का पित्ता उनके सामने पानी हो जाता था।

जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत मत का सम्बन्ध है मैं न तो पूर्ण रूप से 'जिगर' साहब के उक्त कथन का पक्षपाती हूँ और न ही उन समालोचकों के इस फ़ैसले से सहमत कि जब से 'जिगर' ने शराब छोड़ी है उनकी शायरी का स्तर नीचा हो गया है। मेरे तुच्छ विचार में 'जिगर' साहब की शायरी का यह अन्तर (यदि कोई अन्तर है तो) शराब पीने या न पीने का अन्तर नहीं है। यह अन्तर दाम्पत्य जीवन के नरक-समान बनने और फिर स्वर्ग-समान बन जाने का अन्तर भी नहीं है, बल्कि यह अन्तर दो विभिन्न कालों का अन्तर है। दो विभिन्न सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में एक ही ढंग से सोचने, पुराने पर संतोष और नये को अस्वीकार करने का अन्तर है। अतएव आज भी जब वे :

उनका जो फ़र्ज़ है अरबाबे-सियासत[5] जानें।
मेरा पैग़ाम मुहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे॥

ऐसे शेर कहते हैं तो हम उनकी इस 'मोहब्बत' को उस सूफ़ीवाद तथा अध्यात्मवाद से अलग करके नहीं देख सकते जो प्रारम्भकाल से ही उनकी शायरी की विशेषता रही है और जिसमें से :

यही हुस्नो इश्क़ का राज़ है, कोई राज़ इसके सिवा नहीं।
कि खुदा नहीं तो खुदी[6] नहीं, जो खुदी नहीं तो खुदा नहीं॥

ऐसे शेर निकले थे।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि 'जिगर' अपनी जगह से टस से मस न हुए हों। यह प्रत्यक्ष है कि उनकी पूरी शायरी में 'साक़ी' 'मैकदा', 'हुस्न', 'इश्क़', 'जुनून', 'रिंदी' इत्यादि परम्परागत् शब्द, परम्परागत् परिभाषायें और परम्परागत् अन्तर्चेतना की गहरी छाप है। वह ग़ज़ल को उर्दू शायरी की पराकाष्ठा

---

१. नादान धर्मोपदेशक २. शराब का प्याला ३. बिजली (एक परम्परा के अनुसार 'तूर' पहाड़ पर बिजली चमकी थी और मूसा (पैग़म्बर) ने खुदा से बातें की थीं ४. धर्म-ग्रंथ ५. राजनीतिज्ञ ६. अहंभाव

'जिगर' साहव बड़े हँसमुख और विशाल हृदय के व्यक्ति हैं। धर्म पर उनका गहरा विश्वास है और धर्म और प्रेम को वे मनुष्य के मोक्ष का साधन मानते हैं, लेकिन धर्मनिष्ठा ने उनमें उद्दण्डता तथा घमंड नहीं विनय तथा नम्रता उत्पन्न की है। वे हर उस सिद्धांत का सम्मान करने को तैयार रहते हैं जिसमें सच्चाई और शुद्धता हो। यही कारण है कि साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन का भरसक विरोध करने पर भी उन्होंने 'मजाज़', 'जज़वी', मसऊद अख़्तर 'जमाल', 'मजरूह' सुलतानपुरी इत्यादि वहुत से प्रगतिशील कवियों को प्रोत्साहन दिया है और प्रगतिशील लेखक संघ के निमन्त्रण पर अपनी जेव से किराया खर्च करके वे उनके सम्मेलनों में योग देते रहे हैं। (यों 'जिगर' साहव किसी मुशायरे में आने के लिए हज़ार-वारह सौ रुपये से कम मुआवज़ा नहीं लेते।) इस समय मुझे उनकी एक मुलाक़ात याद आ रही है जिसमें उन्होंने 'मजरूह' सुलतानपुरी की गिरफ्तारी पर शोक प्रकट करते हुए कहा था "ये लोग ग़लत हों या सही, यह एक अलग वहस है; लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये लोग अपने उसूलों के पक्के हैं। इन लोगों में खुलूस कूट-कूट कर भरा हुआ है।" और फिर 'मजरूह' की उस ग़ज़ल (जिसके कारण उसे गिरफ्तार किया गया था) की एक पंक्ति :

'यह भी कोई हिटलर का चेला है, मार ले साथी जाने न पाये'

पर मुस्कराकर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा था—"लो, देखो, खुद में तो मारने की हिम्मत नहीं, मारने के लिए साथी को आवाज़ दी जा रही है।"

वड़े वुजुर्ग होने पर भी 'जिगर' साहव हर समय गम्भीर मुद्रा धारण किये नहीं वैठे रहते। अपने से कहीं कम आयु के कवियों के साथ क़हक़हे लगाने में उन्हें विशेष आनन्द आता है। वे उन्हें खिला-पिलाकर वहुत प्रसन्न होते हैं और 'फ़िक़रे-वाज़ी' के किसी अवसर को हाथ से नहीं जाने देते। एक वार एक महफ़िल में 'जिगर' साहव शेर सुना रहे थे। पूरी महफ़िल झूम-झूम कर उनके शेरों पर दाद दे रही थी लेकिन एक व्यक्ति शुरू से आखिर तक विल्कुल चुप-चाप वैठा रहा। एकाएक अन्तिम शेर पर उस व्यक्ति ने उचक-उचककर दाद देनी शुरू कर दी। 'जिगर' साहव ने चौंककर उसकी ओर देखा और कहा :

"क्यों साहव ! क्या आपके पास क़लम है ?"

"जी हाँ" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "क्या कीजियेगा ?"

"मेरे इस शेर में ज़रूर कोई खामी है, वरना आप दाद न देते। इसे मैं

अपनी बयाज़ (कापी, जिसमें हाथ से शेर लिखे होते हैं) में से काटना चाहता हूँ।"

इसी प्रकार एक बार एक और व्यक्ति ने उनसे कहा कि, " 'जिगर' साहब, एक महफ़िल में मैं आपके एक शेर पर पिटते-पिटते बचा।"

इस पर 'जिगर' साहब बोले, "मेरा वह शेर असर के लिहाज़ से ज़रूर घटिया होगा, वरना आप ज़रूर पिटते।"

'जिगर' साहब का पहला दीवान (कविता-संग्रह) 'दाग़े-जिगर' १९२८ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद १९३२ में 'शोला-ए-तूर' के नाम से एक संकलन मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ से छपा जिसके पूरे खर्चे की ज़िम्मेदारी साहबज़ादा रशीदुज़्ज़फ़र (भोपाल) ने ली थी। नवाब भोपाल के ये भतीजे 'जिगर' साहब के बहुत प्रशंसक थे और एक समय तक उन्होंने 'जिगर' साहब को डेढ़ सौ रुपया मासिक वज़ीफ़ा दिया। अब तक 'शोला-ए-तूर' के बहुत से संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में 'इदारा फ़रोग़े-उर्दू' (लाहौर) ने इसका एक बहुत ही सुन्दर संस्करण निकाला है।

'जिगर' साहब उन सौभाग्यशाली कवियों में से हैं जिनकी कलाकृतियाँ उनके अपने जीवनकाल में ही 'क्लासिकल' साहित्य का अंग बन जाती हैं।

मेरा जो हाल हो सो हो बर्क़े-नज़र[१] गिराये जा।
मैं यूंही नालाकश[२] रहूं तू यूंही मुस्कराये जा॥

लहज़ा-ब-लहज़ा, दम-ब-दम, जलवा-ब-जलवा[३] आये जा।
तश्ना - ए - हुस्ने - ज़ात[४] हूं, तश्नालबी[५] बढ़ाये जा॥

जितनी भी आज पी सकूं, उज्र[६] न कर, पिलाये जा।
मस्ते नज़र का वास्ता, मस्ते - नज़र बनाये जा॥

लुत्फ़[७] से हो कि क़हर[८] से, होगा कभी तो रू-ब-रू।
उसका जहां पता चले, शोर वहीं मचाये जा॥

इश्क़ को मुतमइन[९] न रख, हुस्न के एतमाद[१०] पर।
वो तुझे आज़मा चुका, तू उसे आज़माये जा॥

◇ ◇ ◇

ख़ार[११]को गुल[१२]और गुल को ख़ार जो चाहे करे।
तूने जो चाहा किया, ऐ यार जो चाहे करे॥

उसने ये कह कर दिया दिल को फ़रेबे-जुस्तजू[१३]।
हश्र तक अब आशिक़े - नाचार[१४] जो चाहे करे॥

था अभी जलवा, अभी पर्दा, अभी कुछ भी नहीं।
आपकी ये हसरते-दीदार जो चाहे करे॥

हर हक़ीक़त हुस्न की है बेनियाज़े - एतराफ़[१५]।
अब कोई इक़रार या इन्कार जो चाहे करे॥

◇ ◇ ◇

---

१. नज़रों की बिजली २. आर्त्तनाद करता रहूँ ३. क्षण-प्रतिक्षण नवीनतम छवि के साथ ४. सौन्दर्य का प्यासा ५. पिपासा ६. बहाना, इनकार ७. कृपा ८. प्रकोप ९. सन्तुष्ट १०. विश्वास ११. कांटा १२. फूल १३. तलाश करने का धोखा १४. बेचारा बेबस आशिक़ १५. सौंदर्य की प्रत्येक वास्तविकता स्वीकरण—अस्वीकरण से उच्च है।

जब तक कि ग़मे-इन्साँ[1] से 'जिगर' इन्सान का दिल मामूर[2] नहीं।
जन्नत ही सही दुनिया लेकिन, जन्नत से जहन्नुम दूर नहीं॥

जुज़ ज़ौक़े-तलब, जुज़ शौक़े-सफ़र[3] कुछ और मुझे मन्ज़ूर नहीं।
ऐ इश्क़! बता अब क्या होगा कहते हैं कि मंज़िल दूर नहीं॥

वाइज़ का हर इक इरशाद बजा, तक़रीर बहुत दिलचस्प, मगर,
आँखों में सरूरे-इश्क़ नहीं, चेहरे पे यक़ीं[4] का नूर[5] नहीं॥

इस नफ़अ़-ओ-ज़रर की दुनिया में[6] मैंने ये लिया है दर्से-जुनूँ[7]।
ख़ुद अपना ज़ियां[8] तसलीम, मगर, औरों का ज़ियां मन्ज़ूर नहीं॥

मैं ज़ख़्म भी खाता जाता हूँ, क़ातिल से भी कहता जाता हूं।
तौहीन है दस्तो-बाज़ू की[9], वो वार कि जो भरपूर नहीं॥

अरबाबे-सितम की[10] ख़िदमत में इतनी ही गुज़ारिश है मेरी।
दुनिया से क़यामत[11] दूर सही, दुनिया की क़यामत दूर नहीं॥

◇ ◇ ◇

१. मानव प्रेम और दुख-सुख २. परिपूर्ण ३. सफर करने और प्राप्त करने की उत्सुकता के अतिरिक्त ४. विश्वास ५. ज्योति ६. लाभ और हानि के संसार में ७. उन्माद की शिक्षा ८. हानि ९. हाथों-बाहों की १०. अत्याचारियों की ११. महाप्रलय।

फुटकर शेर

उसे सय्याद[१] ने कुछ, गुल ने कुछ, बुलबुल ने कुछ समझा।
चमन में कितनी मानीखेज़[२] थी इक खामशी[३] मेरी ॥

◇ ◇ ◇

यूं तड़प कर दिल ने तड़पाया सरे-महफ़िल[४] मुझे।
उस को क़ातिल कहने वाले कह उठे क़ातिल मुझे ॥

◇ ◇ ◇

हद्दे-कूचा-ए-महबूब[५] हैं वहीं से शुरू।
जहां से पड़ने लगे पांव, डगमगाये हुए ॥

◇ ◇ ◇

ले के खत उनका, किया ज़ब्त बहुत कुछ लेकिन।
थरथराते हुए हाथों ने भरम खोल दिया ॥

◇ ◇ ◇

तेरी आंखों का कुछ क़सूर नहीं।
हां मुझी को खराब होना था ॥

◇ ◇ ◇

हुस्न की हर-हर अदा पर जानो-दिल सदक़े[६] मगर।
लुत्फ़ कुछ दामन बचाकर ही गुज़र जाने में है ॥

◇ ◇ ◇

वरना क्या था सिर्फ़ तरतीबे-अनासिर[७] के सिवा।
खास कुछ बेताबियों का नाम इन्सां हो गया ॥

◇ ◇ ◇

जीने तक हैं होश के जलवे आगे होश की मस्ती है।
मौत से डरना क्या मानी, मौत भी जुज़्वे-हस्ती[८] है ॥

◇ ◇ ◇

---

१. शिकारी २. अर्थपूर्ण ३. खामोशी ४. महफ़िल में ५. प्रेमिका की गली की सीमायें ६. न्यौछावर ७. तत्वों के क्रम ८. जीवन का अंग

क्या लुत्फ़ कि मैं अपना पता आप बताऊं।
कीजे कोई भूली हुई खास अपनी अदा याद॥

◇ ◇ ◇

इधर से भी है सिवा कुछ उधर की मजबूरी।
कि हमने आह तो की उनसे आह भी न हुई॥

◇ ◇ ◇

कभी शाखो-सब्ज़ा-ओ-बर्ग पर, कभी गुंचा-ओ-गुलो-खार पर[1]।
मैं चमन में चाहे जहां रहूं मेरा हक़ है फ़सले-बहार पर॥

◇ ◇ ◇

हर इक सूरत, हर इक तस्वीर मुबहम[2] होती जाती है।
इलाही! क्या मेरी दीवानगी कम होती जाती है॥

◇ ◇ ◇

किसी सूरत नमूदे-सोज़े-पिनहानी[3] नहीं जाती।
बुझा जाता है दिल, चेहरे की ताबानी[4] नहीं जाती॥
मुहब्बत में इक ऐसा वक़्त भी दिल पर गुज़रता है।
कि आंसू खुश्क हो जाते हैं, तुग़ियानी[5] नहीं जाती॥
जिसे रौनक़ तेरे क़दमों ने देकर छीन ली रौनक़।
वो लाख आबाद हो उस घर की वीरानी नहीं जाती॥
वो यूं दिल से गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं होती।
वो यूं आवाज़ देते हैं, कि पहचानी नहीं जाती॥

◇ ◇ ◇

हाय ये मजबूरियां, महरूमियां, नाकामियां।
इश्क़ आखिर इश्क़ है, तुम क्या करो, हम क्या करें?

◇ ◇ ◇

किस तरफ़ जाऊं, किधर देखूं, किसे आवाज़ दूं?
ऐ हुजूमे-नामुरादी[6], जी बहुत घबराये है।

---

१. शाखाओं, हरियाली, पत्तों, कलियों, फूलों, कांटों पर २. अस्पष्ट ३. आन्तरिक व्यथा का अस्तित्व ४. चमक ५. तूफ़ान ६. ऐ असफलताओं के समूह!

वो भी है इक मुक़ामे-इश्क़[1] जहां।
हर तमन्ना गुनाह होती है॥

◇ ◇ ◇

मैं तेरा अक्स[2] हूं कि तू मेरा।
इस सवालो-जवाब ने मारा॥

◇ ◇ ◇

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त[3] इक शोख़ से।
सामना जिस वक़्त हो जाता है, भर आता है दिल॥

◇ ◇ ◇

जिसे मैं भी ख़ुद न बता सकूं, मेरा राज़े-दिल है वो राज़े-दिल।
जिसे ग़ैर दोस्त समझ सकें, मेरे साज़ में वो सदा[4] नहीं॥

◇ ◇ ◇

लाखों में इन्तिख़ाब के क़ाबिल बना दिया।
जिस दिल को तुमने देख लिया दिल बना दिया॥

◇ ◇ ◇

दिल को क्या-क्या सुकून[5] होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता॥

◇ ◇ ◇

कांटों का कुछ हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

◇ ◇ ◇

ये इश्क़ नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे।
इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है॥

◇ ◇ ◇

इस तरह न होगा कोई आशिक़ भी तो पाबंद।
आवाज़ जहां दो उसे वो शोख़ वहीं है।

---

१. प्रेम की स्थिति २. प्रतिरूप ३. सम्बन्ध ४. आवाज़ ५. शान्ति

हरचन्द वक़्फ़े-कश-म-कशे-दो-जहां रहे[1]।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहां रहे ॥

◇ ◇ ◇

तौहीने-इश्क़ न हो, ऐ 'जिगर'! न हो।
हो जाये दिल का ख़ून, मगर आंख तर न हो ॥

◇ ◇ ◇

वो हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है।
जिसे ख़ाके-पा[2] तेरी छू गई, वो बुरा भी हो, तो बुरा नहीं ॥

◇ ◇ ◇

पांव रुकते ही नहीं मंज़िले-जानां[3] के ख़िलाफ़।
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं ॥

◇ ◇

दरिया की ज़िन्दगी पे सदक़े[4] हज़ार जानें।
मुझको नहीं गवारा[5] साहिल की मौत मरना ॥

◇ ◇ ◇

दिल गया रौनक़े-हयात[6] गई।
ग़म गया सारी कायनात[7] गई ॥

◇ ◇ ◇

इन्हें आंसू समझकर यूं न मिट्टी में मिला ज़ालिम।
पयामे-दर्दे-दिल है, और आँखों की ज़बानी है ॥

◇ ◇ ◇

क्या आगया ख़याल दिले-बेक़रार में।
ख़ुद आशियां को आग लगा दी बहार में ॥

◇ ◇ ◇

---

१. यह ठीक है कि हम दो दुनियाओं की कशमकश में गिरफ़्तार रहे
२. पांव की धूल ३. प्रेमिका तक पहुँचाने वाली मंज़िल ४. न्यौछावर
५. पसंद ६. ज़िंदगी की रौनक़ ७. सृष्टि

इश्क़ है किस क़तार में[1] हुस्न है किस शुमार[2] में।
उम्र तमाम हो चुकी, अपने ही इन्तज़ार में॥

◇ ◇ ◇

आज तो कर दिया साक़ी ने मुझे मस्त अलस्त।
डाल कर ख़ास निगाहें मेरे पैमाने में॥

◇ ◇ ◇

मौतो-हयात[3] में है सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला।
अपने को ज़िन्दगी बना, जलवा-ए-ज़िन्दगी[4] न बन॥

---

१. पंक्ति में (गिनती में) २. गिनती ३. मृत्यु और जीवन ४. जिंदगी का जलवा (नज़्ज़ारा)

'फ़िराक़' गोरखपुरी

यूं ही 'फ़िराक़' ने उम्र बसर की
कुछ ग़मे-जानां, कुछ ग़मे-दौरां

परिचय

किसी पाठशाला में एक मौलवी साहब ने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय 'ग़ज़ल' की व्याख्या इन शब्दों में की कि "शायरी के दूसरे असनाफ़ (रूपों) की तरह ग़ज़ल भी एक सनफ़े-सुख़न (काव्य-रूप) है जिसे अमूमन वो लोग अपनाते हैं जिनका चाल-चलन खराब होता है।"

और ठीक ही तो है—मौलवी साहब भला इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और क्या व्याख्या कर सकते थे जबकि ग़ज़ल का पूरा भंडार आशिक़ और माशूक़ की चर्चा, हिज्र और विसाल के झगड़ों, मैकदे, साक़ी और शराब के गुणगान और वाइज़, शेख़ और ब्रह्मन की पगड़ी उछालने आदि 'बदचलनियों' से भरा पड़ा है। इस पर ख़ुदा और जन्नत और जहन्नुम से इस प्रकार के मज़ाक़ों को :

हम को मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के खुश रखने को 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है॥
('ग़ालिब')

और

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी ख्वाहिश।
हमें तो शर्म दामनगीर होती है खुदा होते॥
('मीर')

भला कौन 'शरीफ़' आदमी है जो सहन कर सकता है। लेकिन वह जो किसी ने कहा है कि किसी से सहन हो न हो, होता वही है जो होना होता है।

अतएव मौलवी साहब आज भी ग़ज़ल की वैसी ही व्याख्या कर रहे हैं और ग़ज़लें लिखने वाले शायर बराबर अपनी ढिठाई का प्रमाण देते चले जा रहे हैं।

'फ़िराक़' गोरखपुरी की चर्चा करते समय मुझे मौलवी साहब का यह लतीफ़ा इसलिए याद आया क्योंकि इन दिनों शायरी के प्राचीन स्कूल के एक प्रसिद्ध और माननीय शायर नव्वाब जाफ़र अली ख़ाँ 'असर' बिल्कुल मौलवियों की-सी बातें कर रहे हैं और 'फ़िराक़' गोरखपुरी के :

ज़रा विसाल[1] के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त।
तेरे जमाल[2] की दोशीज़गी[3] निखर आई॥

ऐसे सुन्दर शेरों को अश्लील और :

कुछ क़फ़स की[4] तीलियों से छन रहा है नूर सा।
कुछ फ़िज़ा[5], कुछ हसरते-परवाज़[6] की बातें करो॥

और

तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-क़दम[7]।
रुके-रुके से कुछ आंसू, रुकी-रुकी सी हँसी॥

ऐसे अनुभूतिपूर्ण शेरों को काने, लूले और लंगड़े शेर कह रहे हैं।

'असर' और 'फ़िराक़' दोनों मेरे लिए बुज़ुर्ग और आदरणीय शायर हैं। न मुझे 'असर' साहब की-सी भाषाविज्ञता और पिंगल-ज्ञान का दावा है, न 'फ़िराक़' साहब ऐसे सुन्दर, सरस तथा संगीतपूर्ण शेर लिखना मेरे बस की बात। फिर भी मैं अपने इन दोनों बुज़ुर्गों को आपसी खेंचा-तानी से हाथ खींचने का परामर्श देते हुए किसी प्रकार का दुःसाहस नहीं कर रहा। 'फ़िराक़' साहब अपनी ग़ज़लों में 'असर' साहब पर इस प्रकार कीचड़ उछालते हैं :

वो मेरे अशआर 'असर' साहब हैं जिन पर मोतरिज़[8]
कुछ समझ में आ तो सकते हैं लियाक़त चाहिये॥
जैसी तनक़ीदें[9] 'असर' लिखते हैं ऐसी तो हर एक।
फेंक देगा लिख के तौफ़ीक़े-हमाक़त[10] चाहिये॥

और उत्तर में 'असर' साहब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, 'फ़िराक़'

---

१. प्रेमी और प्रेमिका का मिलन २. सौंदर्य ३. कंवारापन ४. पिंजरे की ५. शून्य (आकाश) ६. उड़ने की अभिलाषा ७. सिर से पाँव तक वह (महबूब) ओस और फूलों का प्रतिरूप है ८. एतराज़ करते हैं ९. आलोचनायें १०. मूर्खता की सामर्थ्य

अनभिज्ञ हैं। और अँग्रेज़ी साहित्य में तो इसका सबसे बड़ा प्रमाण शेक्सपियर है जिसके सम्बन्ध में अब भी समालोचकों का मत है कि वे व्याकरण बिल्कुल नहीं जानते थे और अशुद्ध भाषा लिखते थे। लेकिन······

'रूहे-कायनात', 'शोला-ए-साज़', 'मशअ़ल', 'रूप', 'शबनमिस्तान', 'रमज़ो-कनायात' इत्यादि कविता-संग्रहों के रचयिता 'फ़िराक़' गोरखपुरी आधुनिक काल के उन बड़े उर्दू शायरों में से हैं जिनकी संख्या अधिक नहीं, जिन्हें प्रगतिशील कवि कहलवाने का गौरव प्राप्त है, और जिनका नाम मीर, ग़ालिब, इक़बाल, जोश और जिगर के साथ लिया जाता है।

ग़ज़लें

डरता हूं कामयाबी-ए-तक़दीर[1] देख कर।
यानी सितमज़रीफ़ी-ए-तक़दीर[2] देख कर ॥
क़ालिब[3] में रूह फूंक दी या ज़हर भर दिया।
मैं मर गया हयात[4] की तासीर[5] देखकर ॥
हैरां हुए न थे जो तसव्वुर[6] में भी कभी।
तस्वीर हो गये तेरी तस्वीर देखकर ॥
ख्वाबे-अदम[7] से जागते ही जी पे बन गई।
ज़हराबा-ए-हयात[8] की तासीर देखकर ॥
ये भी हुआ है अपने तसव्वुर में होके महव[9]।
मैं रह गया हूं आपकी तस्वीर देखकर ॥
सब मरहले हयात के तै करके अब 'फ़िराक़'।
बैठा हुआ हूं मौत में ताख़ीर[10] देखकर ॥

◇ ◇ ◇

उमीदे-मर्ग[11] कब तक, ज़िन्दगी का दर्दे-सर कब तक ?
ये माना सब्र करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक ?
दियारे-दोस्त[12] हद होती है यूं भी दिल बहलने की !
न याद आयें ग़रीबों[13] को तेरे दीवारो-दर कब तक ?

---

१. भाग्य की सफलता २. भाग्य का मज़ाक़ ३. शरीर ४. जीवन ५. गुण, प्रभाव ६. कल्पना ७. नास्तित्व ८. जीवन का विष ९. निमग्न १०. विलम्ब ११. मृत्यु की आशा १२. मित्र का देश १३. प्रवासी

ये तदबीरें भी तक़दीरे-मुहब्बत बन नहीं सकतीं।
किसी को हिज्र में भूले रहेंगे हम मगर कब तक ?
इनायत की, करम की, लुत्फ़ की आखिर कोई हद है !
कोई करता रहेगा चारा-ए-ज़ख्मे-जिगर[1] कब तक ?
किसी का हुस्न रुसवा हो गया पर्दे ही पर्दे में।
न लाये रंग आख़िरकार तासीरे-नज़र कब तक ?

◇ ◇ ◇

ये माना ज़िन्दगी है चार दिन की।
बहुत होते हैं यारो चार दिन भी ॥
खुदा को पा गया वाइज़[2], मगर है।
ज़रूरत आदमी को आदमी की ॥
बसा-औक़ात[3] दिल से कह गई है।
बहुत कुछ वो निगाहे-मुख्तसर[4] भी ॥
मिला हूँ मुस्करा कर उससे हर बार।
मगर आंखों में भी थी कुछ नमी सी ॥
मुहब्बत में करें क्या हाल दिल का।
खुशी ही काम आती है न ग़म ही ॥
भरी महफ़िल में हर इक से बचाकर।
तेरी आंखों ने मुझ से बात कर ली ॥
लड़कपन की अदा है जान-लेवा।
ग़ज़ब[5] ये छोकरी है हाथ भर की ॥
है कितनी शोख़ तन्ज़ अय्यामे-गुल पर[6]।
चमन में मुस्कराहट हर कली की ॥
रक़ीबे-ग़मज़दा[7] अब सब्र कर ले।
कभी इससे मेरी भी दोस्ती थी ॥

---

१. हृदय के आघात का इलाज २. धर्मोपदेशक ३. प्रायः ४. अल्पकालीन दृष्टि ५. लड़कपन की अदा को हाथ भर की छोकरी से उपमा दी है ६. वसन्त ऋतु पर कितना चपल व्यंग है ७. दुखित प्रतिद्वन्द्वी

शामे-ग़म कुछ उस निगाहे-नाज़ की बातें करो।
बेखुदी बढ़ती चली है राज़ की बातें करो ॥
नकहते-ज़ुल्फ़े-परीशां, दास्ताने - शामे - ग़म[१]।
सुबह होने तक इसी अंदाज़ की बातें करो ॥
ये सकूते-यास[२], ये दिल की रगों का टूटना।
खा़मशी में कुछ शिकस्ते-साज़ की[३] बातें करो ॥
हर रगे-दिल वज्द में[४] आती रहे, दुखती रहे।
यूं ही उस जा-ओ-बेजा[५] नाज़ की बातें करो ॥
कुछ क़फ़स[६] की तीलियों से छन रहा है नूर[७] सा।
कुछ फ़ज़ा[८] कुछ हसरते-परवाज़[९] की बातें करो ॥
जिसकी फ़ुरकत[१०] ने पलटदी इश्क़की काया 'फ़िराक़'।
आज उस ईसा-नफ़स दमसाज़[११] की बातें करो ॥

---

१. उलझे हुए सुगंधित केशों और शोकभरी संध्या (रात) का वृत्तांत २. नैराश्य की चुप्पी ३. साज़ के टूटने की ४. दिल की हर नस उन्माद में ५. उचित-अनुचित ६. पिंजरे ७. प्रकाश ८. आकाश ९. उड़ने की अभिलाषा १०. विछोह ११. पवित्र-हृदय मित्र

रुबाइयां

घर छोड़े हुओं की कोई मंज़िल न सही ।
होती नहीं सहल कोई मुश्किल न सही ।।
हस्ती[1] की ये रात काट देने के लिए ।
वीराना सही, किसी की महफ़िल न सही ।।

◇ ◇ ◇

खोते हैं अगर जान तो खो लेने दे ।
जो ऐसे में हो जाये वो हो लेने दे ।।
एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे ।
इस वक़्त तो जी खोल के रो लेने दे ।।

◇ ◇ ◇

क़तरे अरक़े-जिस्म के[2] मोती की लड़ी ।
है पैकरे-नाज़नीं[3] कि फूलों की छड़ी ।।
गर्दिश में निगाह है कि बटती है हयात[4] ।
जन्नत भी है आज उम्मीदवारों में खड़ी ।।

◇ ◇ ◇

संजोग वियोग की कहानी न उठा ।
पानी में भीगते कंवल को देखा ।।
बीती होंगी सुहाग रातें कितनी ।
लेकिन है आज तक कंवारा नाता ।।

◇ ◇ ◇

---

१. जीवन २. शरीर के पसीने के ३. प्रेयसी का वदन ४. जीवन

फुटकर शेर

ग़रज़ कि काट दिये ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त।
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में॥

◇ ◇ ◇

मंज़िलें गर्द[1] के मानिंद उड़ी जाती हैं।
वही अंदाज़े-जहाने-गुज़रां[2] कि जो था॥

◇ ◇ ◇

हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुज़र फिर भी॥

◇ ◇ ◇

ये ज़िन्दगी के कड़े कोस, याद आता है।
तेरी निगाहे-करम[3] का घना-घना साया॥

◇ ◇ ◇

मुनासबत[4] भी है कुछ ग़म से मुझको और ऐ दोस्त।
बहुत दिनों से तुझे मेहरबां नहीं पाया॥

◇ ◇ ◇

कुछ आदमी को हैं मजबूरियां भी दुनियां में।
अरे वो दर्दे - मुहब्बत सही, तो क्या मर जाएँ॥

◇ ◇ ◇

मुझे ख़बर नहीं है ऐ हमदमो, सुना ये है।
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूँ॥

◇ ◇ ◇

एक तेरे छुटने का ग़म, एक ग़म उनसे मिलने का।
जिनकी इनायतों[5] से जी और उदास हो गया॥

◇ ◇ ◇

---

१. धूल २. काल-चक्र की रीति ३. कृपा-दृष्टि ४. सम्बंध, लगाव
५. कृपाओं

हम से क्या हो सका मुहब्बत में ?
तुमने तो खैर बेवफ़ाई की ॥

◇ ◇ ◇

कौन ये ले रहा है अंगड़ाई।
आसमानों को नींद आती है ॥

◇ ◇ ◇

मैं पा के भी तुझे कुछ मुन्तज़िर सा हूं तेरा।
है दिल का क़ौल[1] कि तू आप अपनी आहट है ॥

◇ ◇ ◇

सिमट सिमट सी गई है फ़ज़ा-ए-बेपायां[2]।
बदन चुराये वो जिस दम इधर से गुज़रे हैं ॥

◇ ◇ ◇

यकलख़्त[3] चौंक उठा हूँ मैं जिस दम पड़ी है आँख।
आये तुम आज भूली हुई याद की तरह ॥

◇ ◇ ◇

कहां वो खलवतें[4] दिन-रात की और अब ये आलम[5] है।
कि जब मिलते हैं दिल कहता है कोई तीसरा होगा ॥

◇ ◇ ◇

मैं देर तक तुझे खुद ही न रोकता लेकिन।
तू जिस अदा से उठा है उसी का रोना है ॥

◇ ◇ ◇

मेहरबानी को मुहब्बत नहीं कहते ऐ दोस्त।
आह अब मुझसे तेरी रंजिशे-बेजा[6] भी नहीं ॥

◇ ◇ ◇

कू-ए-जानां[7] के भी इक मुद्दत से हैं आहट पे कान।
अहले-ग़म[8] के कारवां, किन वादियों में खो गये ॥

---

१. कथन २. असीम शून्य ३. एकाएक ४. एकांत की मुलाकातें ़ालत ६. व्यर्थ की अप्रसन्नता ७. यार की गली ८. शोक-ग्रस्त प्रेमियों

थी यूं तो शामे-हिज्र[1] मगर पिछली रात को।
वो दर्द उठा 'फ़िराक़' कि मैं मुस्करा दिया॥

◇ ◇ ◇

बजा है ज़ब्त भी, लेकिन मुहब्बत में कभी रोले।
दबाने के लिए हर दर्द, ऐ नादां नहीं होता॥

◇ ◇ ◇

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आये।
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है॥

◇ ◇ ◇

शाम भी थी धुआं-धुआं, हुस्न भी था उदास-उदास।
दिल को कई कहानियां, याद-सी आके रह गईं॥

◇ ◇ ◇

ज़िन्दगी को भी मुंह दिखाना है।
रो चुके तेरे बेक़रार बहुत॥

◇ ◇ ◇

मुहब्बत में मेरी तनहाइयों के हैं कई उनवां[2]।
तेरा आना, तेरा मिलना, तेरा उठना, तेरा जाना॥

◇ ◇ ◇

हुस्न को इक हुस्न ही समझे नहीं और ऐ 'फ़िराक़'।
मेहरबां, नामेहरबां क्या-क्या समझ बैठे थे हम॥

◇ ◇ ◇

'फ़िराक़' तू ही मुसाफ़िर है तू ही मंज़िल भी।
किधर चला है मुहब्बत की चोट खाये हुए॥

◇ ◇ ◇

न रहज़नों से[3] रुके रास्ते मुहब्बत के।
वो क़ाफ़ले नज़र आये लुटे-लुटाये हुए॥

◇ ◇ ◇

---

१. विछोह की रात २. शीर्षक ३. लुटेरों से

देखिये कब इस निज़ामे-ज़िन्दगी की[1] सुबह हो।
आसमानों को भी जैसे आ रही है नींद सी॥

◇ ◇ ◇

मुद्दतें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गये हों तुझे, ऐसा भी नहीं॥

◇ ◇ ◇

कहां का वस्ल[2] तनहाई ने शायद भेस बदला है।
तेरे दम भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं॥

◇ ◇ ◇

न कोई वादा, न कोई यक़ीं, न कोई उमीद।
मगर हमें तो तेरा इन्तज़ार करना था॥

◇ ◇ ◇

उस रहगुज़ार पर है रवां कारवाने-इश्क़।
कोसों जहां किसी को खुद अपना पता नहीं॥

◇ ◇ ◇

ज़िन्दगी क्या है आज इसे ऐ दोस्त।
सोच लें और उदास हो जायें॥

◇ ◇ ◇

---

१. जीवन के विधान २. मिलाप

'हफ़ीज़' जालंधरी

तशकीलो-तकमीले-फ़न में जो भी 'हफ़ीज़' का हिस्सा है
निस्फ़ सदी का क़िस्सा है दो-चार बरस की बात नहीं

ओरियध

आपने अपनी आयु में इस प्रकार की कथायें अवश्य सुनी होंगी कि एक बार जब मारे गर्मी के चील अंडा छोड़ रही थी और मनुष्य, पशु सब की ज़बानें बाहर निकल आई थीं तो बैजूबावरा ने मल्हार गा दिया और देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी। या तानसैन ने आधी रात को दीपक-राग छेड़ दिया और शहर भर के बुझे हुए दीपक आप ही आप जल उठे।

ऐसी कथाओं को आप मनघड़ंत और कल्पित बातें कह सकते हैं लेकिन इन कथाओं में काव्य-विषय और उसके रूप(संगीत धर्म) के परस्पर सम्बन्ध की ओर जो स्पष्ट संकेत मिलता है, उसकी किसी प्रकार अवहेलना नहीं की जा सकती और यही कारण है कि किसी महान् कवि की किसी रचना के बारे में कभी इस प्रकार की बातें सुनने में नहीं आईं कि कविता का विषय तो शृंगाररस का है और शब्द भक्तिरस के प्रयुक्त किये गये हैं।

मोहम्मद हफ़ीज़ 'हफ़ीज़' जालंधरी की शायरी का अध्ययन करने से जो बात सबसे पहले हमें अपनी ओर खींचती है, वह यही विषय और रूप का परस्पर सम्बन्ध है। उसके यहाँ एक शब्द पर दूसरा शब्द, एक पंक्ति पर दूसरी पंक्ति और एक शेर पर दूसरा शेर इस प्रकार ठीक बैठा हुआ और उसे आगे बढ़ाता हुआ मिलता है, मानो किसी चित्र पर पड़ा हुआ पर्दा सरक रहा हो। और फिर जब पूरा चित्र हमारे सामने आता है तो जाना-पहचाना होने पर भी हमें उसमें कुछ ऐसा नया अर्थ, नया प्रसंग और नया सौंदर्य नजर आने लगता है कि हम उस पर से नजरें हटाना पसंद नहीं करते। नये और पुरानेपन के इस

समावेश से 'हफ़ीज़' ने अपने यहाँ जो निरालापन उत्पन्न किया है, वह आधारित है उसके छोटे-छोटे संगीतधर्मी छन्दों के चुनाव पर (जिसके लिए उसने हिन्दी पिंगल का भी आश्रय लिया है), विचारों की एकाग्रता पर, चित्र-चित्रण के लिए चित्र से मेल खाती हुई उपमाओं पर। अतएव जब हम उसकी कविता 'वसंत' या 'अभी तो मैं जवान हूँ' पढ़ते हैं (या उसके मुँह से सुनते हैं) तो हम पर एक विचित्र प्रकार की मस्ती और उन्माद सा छा जाता है। 'जलवा-ए-सहर' के विषय-वस्तु की ओर ध्यान दिये बिना केवल शब्दों के उतार-चढ़ाव से ही ऐसा मालूम होता है, जैसे नींद में डूबा हुआ पूरा संसार जाग उठा हो और एक अंतिम अंगड़ाई के साथ सारी शिथिलता को परे झटक कर दिनचर्या के लिये तैयार हो रहा हो। 'तारों भरी रात' सुनते समय न केवल पूरे विश्व के सो जाने का विश्वास हो जाता है, बल्कि स्वयं सुनने वाले पर निद्रा आक्रमण करने लगती है, और जब हम 'बरसात' सुनते हैं तो लगता है, वर्षा ऋतु में हम किसी बाग़ की सैर कर रहे हैं, झूला झूलने वाली मल्हार गा रही हैं और उनके अरमानों भरे गीत हमारे दिल में हूक-सी उत्पन्न कर रहे हैं।

'उसके मुँह से सुनते हैं' लिखने की आवश्यकता मुझे इसलिए हुई कि एक बड़ा शायर होने के साथ-साथ 'हफ़ीज़' एक बड़ा अभिनेता भी है। आज तक कोई ऐसा मुशायरा (कवि-सम्मेलन) दूसरे शायरों के लिये 'शुभ' सिद्ध नहीं हुआ जिसमें 'हफ़ीज़' मौजूद हो। अपनी एक-दो तानों से ही वह पूरे मुशायरे पर छा जाता है और लोग-बाग बार-बार उसी के शेर सुनने की फ़र्माइश करने लगते हैं। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह केवल मुशायरों का शायर है और उसकी सफलता का भेद उसकी गलेबाज़ी या उसकी विभिन्न शारीरिक हरकतों में निहित है और इसलिये उसे गायक या मसखरा कहकर टाला जा सकता है। (शुरू-शुरू में ऐसी कोशिशें ज़रूर की गई थीं) नहीं, गायक या मसखरे की बजाय मौलिक रूप से वह न केवल एक बड़ा शायर है बल्कि उर्दू शायरी में वह एक कड़ी का सा महत्त्व रखता है और मेरे इस कथन में शायद संदेह की कम गुंजाइश होगी कि 'इक़बाल' के तुरन्त बाद जिन उर्दू-शायरों ने शायरी को जीवन के निकटतर लाने, विषय से लग्गा खाते हुए छन्दों का 'आविष्कार' करने और ख़ूब सोच-समझ कर भाषा तथा शैली को सरल बनाने के सफल प्रयास किये हैं और इस प्रकार नये शायरों के लिये नई राहें खोली हैं, उनमें 'अख़्तर' शीरानी और 'हफ़ीज़' जालंधरी का नाम सबसे ऊपर आता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक और प्राचीन घटनाओं को 'शाहनामा

इस्लाम' (चार संस्करण) के नाम से काव्य का रूप देने और शुष्कता तथा गद्य से स्वच्छ रखने में 'हफ़ीज़' ने जिस कलात्मक निपुणता का प्रमाण दिया है, निःसंदेह वह उसी का काम था। फ़िर्दौसी (प्रसिद्ध ईरानी कवि) ने महमूद ग़ज़नवी के कहने पर 'शाहनामा' लिख कर ईरान के बादशाहों की महानताओं को फिर से जीवित करने का जो अद्वितीय काम किया था, ठीक उसी प्रकार 'हफ़ीज़' ने अपनी धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर इस्लामी इतिहास और इस्लाम की आन-बान को जिन्दा करने की कोशिश की है।

'शाहनामा इस्लाम' के अतिरिक्त उसकी कविताओं के कई और संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'नग़मा-ए-ज़ार', 'सोज़ो-साज़' और 'तलख़ाबा-ए-शीरीं' उल्लेखनीय हैं। इन संग्रहों की नज़्मों, ग़ज़लों और गीतों की विशेषता वही असाधारण प्रभाव है, जिसमें पाठक आप ही आप बहता चला जाता है।

१६२१ में जब उसने पहले-पहल परम्परागत शायरी से हटकर नया रंग अपनाया तो, जैसा कि सदैव होता है, रूढ़िवादियों ने उस पर अपने छुरी-काँटे तेज़ किये। इस बारे में हफ़ीज़ एक स्थान पर स्वयं लिखता है :

"मुझे ऐसे लोगों की भीड़-भाड़ में से राह निकालनी पड़ी है जिनका बोध अभी दबोच लेने, तिक्का-बोटी कर डालने और खा जाने से आगे नहीं बढ़ा। साहित्य-वाटिका उनकी शिकारगाह है। मुझे उनके इक्के-दुक्के से भी वास्ता पड़ा और उनकी टोलियाँ भी मुझ पर लपकीं—झपटीं। पहले ये भभकी देते हैं, कोई डर जाये या उलझ पड़े तो उसकी ख़ैर नहीं। उनसे बचने के लिए केवल एक शस्त्र उपयोगी है—बेपरवा मुस्कराहट।"

अतएव उसने अपने इसी शस्त्र का प्रयोग किया और कान लपेटकर, मुस्कराता हुआ, अपनी डगर पर चलता रहा और अब तक चल रहा है।

उर्दू शायरी के इस निराले पथिक का जन्म १४ जनवरी १६०० को जालंधर (पंजाब) में हुआ। इस प्रसंग से यह शताब्दि और वह साथ-साथ चल रहे हैं। स्वयं उसके कथनानुसार कोई अन्य होता तो एक इसी आधार पर शायर से कहीं उच्च पदवी की मांग कर बैठता—"यह मेरा अहसान है कि मैं शायर होने का ज़िक्र भी दबी ज़बान से करता हूँ।"

वह अभी बहुत छोटा था जब उसे मोहल्ले की मस्जिद में बिठा दिया गया, जहाँ ६ वर्ष की आयु में ही उसने क़ुरान शरीफ़ पढ़ लिया, बहुत से सूरे (क़ुरान शरीफ़ के खंड) कंठस्थ कर लिए और करीमा और मामकीमा (शेख सादी (ईरानी कवि) की बच्चों की नज़्में) रट लीं। लेकिन इससे आगे वह मस्जिद

में न चल सका, जिसका कारण उसके कथनानुसार नैतिक भी था और भौतिक भी। फिर उसे मिशन स्कूल में भरती कराया गया, लेकिन वहाँ से वह दूसरी कक्षा ही से भाग निकला। सरकारी पाठशाला में प्रविष्ट हुआ, चौथी कक्षा में था कि वहां से भी भाग लिया। आर्य पाठशाला में और फिर मिशन हाई स्कूल में ले जाया गया लेकिन 'गणित' से उसकी जान जाती थी और 'गणित' के घंटे में वह प्रतिदिन भाग निकलता था, अतः दूसरे दिन उसकी खूब पिटाई होती थी। भागने और पिटने के इस संघर्ष में आखिर भागने की विजय हुई और वह सातवीं कक्षा से ऐसा भागा कि फिर कभी पाठशाला का मुँह न देखा।

यह बात सचमुच आश्चर्यजनक है कि इतनी कम शिक्षा और घर के अत्यंत असाहित्यिक वातावरण के होते हुए उसने सात वर्ष की छोटी-सी आयु में तुकबन्दी शुरू कर दी और फिर ग्यारह वर्ष की आयु में बाक़ायदा शेर कहने लगा। अपने उन दिनों के बारे में स्वयं उसका बयान देखिये :

"मेरे घराने पर मौत झपट रही थी। मेरे भाइयों को प्लेग और हैज़ा लिये जा रहे थे और मुझे क़ाफ़िये और ग़ज़ल।"

क़ाफ़िये और ग़ज़ल के लिए नियमानुसार उसे किसी 'उस्ताद' की ज़रूरत पड़ी। अतएव उसने क़रीबी बस्ती के एक शायर सरफ़राज़ खां 'सरफ़राज़' (जो उसके कथनानुसार उस ज़माने में जैसे शेर कहते थे आज बुढ़ापे में भी वैसे ही कहते हैं) की शरण ली। लेकिन 'सौभाग्यवश' उन्होंने कोई विशेष परामर्श न दिया। फिर फ़ार्सी के एक महा पंडित और कवि मौलाना ग़ुलाम क़ादिर 'गिरामी' को कुछ ग़ज़लें दिखाईं, जिस पर 'गिरामी' साहब ने मश्वरा दिया कि किसी का शिष्य बनने की बजाय उसे स्वयं ही अपनी रचनाओं पर बार-बार आलोचनात्मक दृष्टि डालनी चाहिये। अतः इस मश्वरे पर अमल करते हुए उसने फिर किसी 'उस्ताद' के आगे घुटने नहीं टेके और अन्त में इस दावे का हक़दार हो गया कि :

अहले-ज़बां तो हैं बहुत, कोई नहीं है अहले-दिल।
कौन तेरी तरह 'हफ़ीज़' दर्द के गीत गा सका?

और

'हफ़ीज़' अहले-ज़बां कब मानते थे।
बड़े ज़ोरों से मनवाया गया हूँ॥

आज 'हफ़ीज़' जालंधरी जिसे 'अब्बुलअसर' (प्रभावशालियों का पिता) कहा जाता है, जिसकी कविता सम्बन्धी सेवाओं के आधार पर (कदाचित् युद्ध के पक्ष

गीत

जाग सोज़े-इश्क़[1] जाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग !!

जाग काम देवता फ़ितना - हाए नौ[2] जगा ।
बुझ गया है दिल मेरा फिर कोई लगन लगा ॥
सर्द हो गई है आग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

पड़ गई दिलों में फूट क्या विजोग पड़ गया ।
पृथ्वी पे चार खूंट एक सोग पड़ गया ॥
सर नगूं[3] है शेशनाग !
जाग सोज़े - इश्क़ जाग ॥

तूने आंख बंद की कायनात[4] सोगई ।
हुस्ने - खुदपसंद[5] की दिन से रात हो गई ॥
ज़र्द पड़ गया सुहाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

अब न वो सफ़र न सैर रहवरी न रहज़नी ।
कुछ नहीं तेरे वग़ैर दोस्ती न दुश्मनी ॥
अब लगाव है न लाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

---

१. प्रेम-ज्वाला २. नये फ़ितने ३. सिर झुकाये हुए ४. ब्रह्मांड
५. आत्मप्रशंसक सौंदर्य

ऐ मुग़न्नी - ए - शबाब[१] जाग ख़्वाबे - नाज़ से ।
दिल-शिकस्ता है रबाब अर्सा - ए - दराज़ से[२] ॥
मर गये क़दीम[३] राग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

तू जो चश्म वा करे[४] हर उमंग जाग उठे ।
आहो - नाला जाग उठे राग रंग जाग उठे ॥
जोग से मिले विहाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

फिर उसी उठान से तीर उठे कमां उठे ।
सब्र की ज़बान से शोर अलअमां[५] उठे ।
जाग उठे दिलों के भाग ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

जाग ऐ नज़र फ़िरोज़[६] जाग ऐ नज़र नवाज़[७] ।
जाग ऐ ज़माना सोज़[८] जाग ऐ ज़माना साज़ ॥
जाग नींद को तियाग[९] ।
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

---

१. यौवन के गायक २. बहुत समय से ३. प्राचीन ४. आँख खोले ५. हे भगवान! ६,७. नज़र को रौनक़ प्रदान करने वाला ८. ज़माने को जला देने वाला ९. त्याग

हुस्न पाबंदे-रज़ा[1] हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं।
मैं कहूं, तुम मुझे चाहो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
फिर कभी ख़ब्ते-वफ़ा[2] हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं।
फिर कोई दोस्त ख़फ़ा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
जिस ने इस दौर के इन्सान किये हैं पैदा।
वही मेरा भी ख़ुदा हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
हश्र के दिन मुझे सच कहने की तौफ़ीक़ न दे।
कोई हंगामा बपा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
हुस्न वाले मेरे क़ातिल हैं ये दावा है मेरा।
हुस्न वालों को सज़ा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
दोस्तों को भी मिले दर्द की दौलत या रब!
मेरा अपना ही भला हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
ऐ बुतो तुम पे अंधाधुंद मरे ख़ल्क़े-ख़ुदा[3]।
और ख़ुदा देख रहा हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥

१. इच्छा से आबद्ध २. वफ़ा करने का उन्माद ३. दुनिया

फुटकर शेर

दीवानगी-ए-इश्क़[1] के बाद, आ ही गया होश।
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे॥
हम ख़ूने-जिगर पी के चले जायेंगे साक़ी।
ले शीशा-ए-दिल[2] तोड़ दे पैमाना बना दे॥

◇ ◇ ◇

इश्क़ न हो तो दिल्लगी, मौत न हो तो ख़ुदकुशी।
ये न करे तो आदमी आख़िरे-कार क्या करे?

◇ ◇ ◇

हाय किस दर्द से की ज़ब्त की तलक़ीन[3] मुझे।
हँस पड़े दोस्त जो मैंने कभी रोना चाहा।
आने वाले किसी तूफ़ान का रोना रोकर।
नाख़ुदा[4] ने मुझे साहिल पे डबोना चाहा॥

◇ ◇ ◇

फ़रिश्ते को न मैं शैतान समझा।
नतीजा ये कि बहकाया गया हूं॥
मुझे तो इस ख़बर ने खो दिया है।
सुना है मैं कहीं पाया गया हूं॥

◇ ◇ ◇

हो गया जब इश्क़ हम-आग़ोशे-तूफ़ाने-शबाव[5]।
अक़्ल बैठी रह गई साहिल पे शरमाई हुई॥

◇ ◇ ◇

अब इब्तिदा-ए-इश्क़ का आलम[6] कहां 'हफ़ीज़'।
कश्ती मेरी डबो के वो दरिया उतर गया॥

◇ ◇ ◇

---

१. इश्क़ का दीवानापन २. दिल-रूपी शीशा ३. हिदायत ४. मांझी
५. यौवन के तूफ़ान से बग़लगीर ६. इश्क़ के प्रारंभ की स्थिति

परिचय

'अख्तर' शीरानी का नाम ज़बान पर आते ही 'गेटे' का वह कथन याद आ जाता है जिसमें इस जर्मन दार्शनिक ने प्रेम तथा वेदना की भावना का जिक्र करते हुए कहा था कि प्रेम और वेदना की भावना विश्व की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है, लेकिन इसका सजीव रूप नारी है।

जहाँ तक नारी को और उसके कारण प्रेम तथा वेदना को अपना काव्य-विषय बनाने का प्रश्न है, गेटे के इस 'सजीव रूप' को हम वर्ड्ज़वर्थ के यहां 'लूसी' के रूप में देखते हैं, कीट्स की कविता में वह 'फ़ैनी ब्रौनी' बनकर हमारे सामने आता है और उर्दू का सब से बड़ा रोमांसवादी शायर 'अख्तर' शीरानी उसे 'सलमा' कहकर पुकारता है।

उर्दू के कुछ समालोचकों की दृष्टि में 'अख्तर' की 'सलमा' भी वर्ड्ज़वर्थ की 'लूसी' और कीट्स की 'फ़ैनी' की तरह कवि की कल्पित प्रेयसी है—एक पवित्र परछाईं, एक अलौकिक सुन्दरी—क्योंकि 'सलमा' के अतिरिक्त 'अख्तर' के यहाँ 'रेहाना', 'अज़रा,' 'शीरीं', 'शमसा' इत्यादि कई नायिकाओं का उल्लेख मिलता है और समान मधुरता और भावुकता के साथ मिलता है।

'अख्तर' अपनी 'सलमा' की प्रशंसा करते हुए कहता है:

बहारे-हुस्न[१] का तू गुन्चा-ए-शादाब[२] है सलमा,
तुझे फ़ितरत ने अपने दस्ते-रंगीं से[३] संवारा है,
बहिश्ते-रंगो-बू का[४] तू सरापा इक नज़ारा है,

१. सौन्दर्य के वसन्त २. पल्लवित कलि ३. रंगीन हाथों से ४. रंग और सुगंधि के स्वर्ग का

तेरी सूरत सरासर पैकरे-महताब[1] है सलमा,
तेरा जिस्म इक हुजूमे-रेशमो-कमख़्वाब[2] है सलमा,
शबिस्ताने-जवानी[3] का तू इक ज़िन्दा सितारा है,
तू इस दुनिया में बहरे-हुस्ने-फ़ितरत[4] का किनारा है,
तू इस संसार में इक आसमानी ख़्वाब है सलमा।

और 'अज़रा' के सम्बन्ध में वह कहता है :

परी-ओ-हूर की तस्वीरे-नाज़नीं 'अज़रा' !
शहीदे-जलवा-ए-दीदार[5] कर दिया तू ने।
नज़र को महशरे-अनवार[6] कर दिया तू ने॥
बहारो-ख़्वाब की तनवीरे-मरमरीं[7] 'अज़रा'।
शराबो-शेर की तफ़सीरे-दिलनशीं[8] 'अज़रा' !

और 'रेहाना' के बारे में लिखता है :

उसे फूलों ने मेरी याद में बेताब देखा है।
सितारों की नज़र ने रात भर बेख़्वाब देखा है॥
वो शम्मए-हुस्न[9] थी, पर सूरते-परवाना[10] रहती थी।
यही वादी है वो हमदम[11] जहाँ 'रेहाना' रहती थी॥

लेकिन 'अख़्तर' के एक परम मित्र हकीम नय्यर वास्ती ने अभी हाल में 'अख़्तर व सलमा' नामक एक पुस्तक में बड़े विस्तार से बताया है कि 'सलमा' शायर की कोई कल्पित प्रेयसी नहीं बल्कि इसी संसार की एक जीवित सुन्दरी थी जो लाहौर में रहती थी और जिससे शायर को असीम प्रेम था और जो स्वयं भी उसे जी-जान से चाहती थी। दोनों में बराबर पत्र-व्यवहार होता था, लेकिन सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण वे जीवन में केवल दो-तीन बार ही एक दूसरे से मिल पाये; और जब 'सलमा' का विवाह हो गया और वह लाहौर से गुजरात चली गई तो शायर के लिए उसका विछोह असह्य हो उठा। वह दिन-रात शराब के नशे में ग़र्क रहने लगा और उसके दिल के तारों से ऐसे नग़मे फूट निकले जो उर्दू की रोमांसवादी शायरी के लिए अन्तिम शब्द बन गये।

वास्तविकता जो भी हो, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'सलमा'

---

१. चाँद की मूर्ति २. रेशम का ढेर ३. जवानी के शयनागार ४. प्रकृति के सौन्दर्य के सागर का ५. दर्शन के जलवे का शहीद ६. प्रलयक्षेत्र की ज्योति ७. मरमरीं आलोक ८. हृदय-स्पर्शी व्याख्या ९. सौन्दर्य का दीपक १०. पतंगे की तरह ११. साथी

अपना काव्य-विषय बनाने वाले आधुनिक उर्दू शायर,आत्मगत् (Subjective) अनुभूतियों के साथ-साथ परगत् (Objective) प्रेरणाओं को भी अपने सम्मुख रखते हैं। सामाजिक प्रतिबन्धों से घबराकर संसार से निकल भागने की अपेक्षा वे सामाजिक प्रतिबन्धों को तोड़ने पर उतारू हैं, और इस सिलसिले में अंधे कामदेव तक को आंखें प्रदान कर रहे हैं।

'अख़्तर' शीरानी जिसका असल नाम मुहम्मद दाऊदख़ां था, ४ मई १९०५ को टोंक राज्य में पैदा हुआ। वहीं कुरान की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। बाद में उर्दू की प्रारम्भिक पुस्तकें अपनी चची से पढ़ीं और फिर मौलवी अहमद ज़मां और साबिर अली 'शाकिर' से फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त की। 'अख़्तर' के कथनानुसार जब वह 'शाकिर' साहब का शिष्य था तो उन्हीं दिनों उसमें काव्य-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई थी।

सन् १९२० में जब 'अख़्तर' के पिता हाफ़िज़ महमूद ख़ां शीरानी, जो अपने समय के एक विख्यात बुद्धिजीवी थे, ओरियंटल कालेज लाहौर में फ़ारसी के प्रोफ़ैसर नियुक्त हुए तो 'अख़्तर' भी उनके साथ लाहौर चला आया। अपनी एकमात्र और लाडली संतान होने के कारण हाफ़िज़ साहब 'अख़्तर' को उच्च शिक्षा दिलाने के इच्छुक थे और इसके लिए अपनी ओर से उन्होंने भरसक प्रयत्न भी किया, परन्तु लाहौर की साहित्यिक बैठकों और काव्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति ने 'अख़्तर' को 'मुन्शी फ़ाज़िल' से आगे नहीं बढ़ने दिया, और अपनी उस छोटी सी आयु में ही 'अख़्तर' को अपनी नज़्मों पर इतनी प्रशंसा मिली कि भविष्य का यह महान रोमांसवादी शायर घर वालों के कड़े विरोध के बावजूद शिक्षा से विमुख हो शायरी के मैदान में कूद पड़ा।

उन्हीं दिनों कुछ समय तक उसने उर्दू की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'हुमायूँ' के सम्पादन का काम किया। फिर १९२५ में 'इन्तख़ाब' का सम्पादन किया। १९२८ में 'ख़यालिस्तान' निकाला और १९३१ में 'रोमान' जारी किया और उसके बाद कुछ समय तक मौलाना ताजवर नजीबाबादी (जिनसे शुरू-शुरू में 'अख़्तर' ने अपनी कविताओं पर संशोधन भी लिया था) की मासिक पत्रिका 'शाहकार' का सम्पादन किया।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'अख़्तर' ने अपनी कई पुस्तकें, उदाहरणतः गद्य में 'जुहाक', 'आईना-ख़ाने में' और 'धड़कते दिल' और पद्य में 'फूलों के

गीत', 'नग़मा-ए-हरम', 'सुबहे-वहार', 'अखतरिस्तान', 'लाला-ए-तयूर', 'तयूरे-आवारा', 'शहनाज़' और 'शहरूद' यादगार छोड़ीं।

यादगार छोड़ीं—इसलिए कि आज 'अख्तर' हमारे बीच नहीं है और अपनी रचनाओं के साथ-साथ वह स्वयं भी हमारे लिए स्मृतिमात्र रह गया है। ६ सितम्बर १६४८ को उर्दू के इस महान रोमांसवादी शायर ने बड़ी दयनीय स्थिति में कुछ समय तक एक भयंकर रोग में ग्रस्त रहने के बाद लाहौर के एक अस्पताल में दम तोड़ दिया।

ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

ऐ इश्क़ न छेड़ आ-आके हमें, हम भूले हुओं को याद न कर,
पहले ही बहुत नाशाद[1] हैं हम, तू और हमें नाशाद न कर,
क़िस्मत का सितम ही कम तो नहीं ये ताज़ा सितम ईजाद न कर,
यूं ज़ुल्म न कर बेदाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

जिस दिन से मिले हैं दोनों का सब चैन गया आराम गया,
चेहरों से बहारे-सुबह गई आंखों से फ़रोग़े-शाम[2] गया,
हाथों से ख़ुशी का जाम छुटा होंटों से हंसी का नाम गया,
ग़मगीं न बना नाशाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

रातों को उठ-उठ रोते हैं, रो-रो के दुआयें करते हैं,
आंखों में तसव्वुर[3] दिल में ख़लिश[4] सर धुनते आहें भरते हैं,
ऐ इश्क़, ये कैसा रोग लगा जीते हैं न ज़ालिम मरते हैं,
ये ज़ुल्म तू ऐ जल्लाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

ये रोग लगा है जब से हमें, रंजीदा हूं मैं बीमार है वो,
हर वक़्त तपिश, हर वक़्त ख़लिश बेख़्वाब[5] हूं मैं बेदार[6] है वो,
जीने से इधर बेज़ार हूं मैं मरने पे उधर तैयार है वो,
और ज़ब्त कहे फ़र्य्याद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

---

१. दुखी २. संध्या की चमक-दमक ३. कल्पना ४. पीड़ा ५-६. नींद-रहित

बेदर्द ज़रा इन्साफ़ तो कर इस उम्र में और मग़मूम है वो,
फूलों की तरह नाज़ुक है अभी तारों की तरह मासूम है वो,
ये हुस्न सितम, ये रंज ग़ज़ब, मजबूर हूं मैं मज़लूम है वो,
मज़लूम पे यूं बेदाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

ऐ इश्क़ ख़ुदा-रा[1] देख कहीं वो शोख़े-हज़ीं[2] बदनाम न हो,
वो माहे-लक़ा[3] बदनाम न हो, वो ज़ोहरा-जबीं[4] बदनाम न हो,
नामूस[5] का उसके पास[6] रहे, वो पर्दानशीं बदनाम न हो,
उस पर्दानशीं को याद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

वो राज़ है ये ग़म आह जिसे पा जाये कोई तो ख़ैर नहीं,
आंखों से जब आंसू बहते हैं, आ जाये कोई तो ख़ैर नहीं,
ज़ालिम है ये दुनिया दिल को यहां भा जाये कोई तो ख़ैर नहीं,
है ज़ुल्म मगर फ़र्य्याद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

दुनिया का तमाशा देख लिया, ग़मगीन सी है बेताब सी है,
उम्मीद यहां इक वहम सी है, तसकीन यहां इक ख्वाब सी है,
दुनिया में ख़ुशी का नाम नहीं, दुनिया में ख़ुशी नायाब सी है,
दुनिया में ख़ुशी को याद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

---

१. भगवान के लिए २. शोक-ग्रस्त चपल युवती ३. चांद सी सुन्दरी ४. सितारों सी सुन्दरी ५. लोक-लाज ६. खयाल

आज की रात

कितनी शादाब[1] है दुनिया की फ़ज़ा[2] आज की रात !
कितनी सरशार[3] है गुलशन की हवा आज की रात !
कितनी फ़य्याज़[4] है रहमत[5] की घटा आज की रात !
किस क़दर ख़ुश है ख़ुदाई से ख़ुदा आज की रात !
कि नज़र आयेगी वो माहलक़ा[6] आज की रात !

आज क्या बात है दुनिया के नज़्ज़ारे ख़ुश हैं ?
बाग़ के फूल, सरे-चर्ख़[7] सितारे ख़ुश हैं।
एक बेनाम सी सरमस्ती के मारे ख़ुश हैं।
एक मैं ख़ुश नहीं जितने भी हैं सारे ख़ुश हैं।
है ख़ुशी चार तरफ़ नग़मासरा[8] आज की रात !

ग़ायबाना जो हमें नामे[9] लिखा करती थी।
दूर से हम पे जो दिल अपना फ़िदा करती थी।
दादे-अशआर[10] जो गुमनाम दिया करती थी।
होके बेपर्दा जो पर्दे में रहा करती थी।
सामने होगी वही शोख़-अदा[11] आज की रात !

दास्ताने - दिले - बेताब[12] सुनायेंगे उन्हें।
आज रोयेंगे गले मिलके रुलायेंगे उन्हें।
ख़ुद ही फिर रोने पे हंस देंगे, हंसायेंगे उन्हें।
और जुर्रत की तो सीने से लगायेंगे उन्हें।
नित नये जज़्बों की है नश्वोनुमा[13] आज की रात !

दिल की रग-रग में है बेताब मुहब्बत उसकी।
आंख के पर्दे पे लहराती है सूरत उसकी।

---

१. पल्लवित २. वातावरण ३. उन्मत्त ४. उदार ५. अनुकम्पा ६. चांद जैसी अनुपम सुन्दरी ७. आकाश पर ८. गीत गा रही है ९. पत्र १०. शेरों पर दाद ११. चंचल अदाओं वाली (सुन्दरी) १२. बेचैन दिल का वृत्तांत १३. बढ़ोतरी

खलवते - रूह में[1] आबाद है उल्फ़त उसकी।
मेरे जज़्बात पे तारी[2] है लताफ़त[3] उसकी।
और कुछ याद नहीं इसके सिवा आज की रात !
लेकिन इज़्हारे - ख़यालात[4] करेंगे क्योंकर ?
शर्म आती है मुलाक़ात करेंगे क्योंकर ?
बात करनी है मगर बात करेंगे क्योंकर ?
ख़त्म ये ख़्वाब की सी रात करेंगे क्योंकर ?
आह ये आज की ये ख़्वाबनुमा[5] आज की रात !
ऐ दिल ऐसा न हो कुछ बात बनाये न बने।
हाले - दिल जो भी सुनाना है सुनाये न बने।
पास आयें तो मगर पास बिठाये न बने।
शर्म के मारे उन्हें हाथ लगाये न बने।
कि तसव्वुर[6] से भी आती है हया[7] आज की रात !
यूं तो हर तरह अदब[8] मद्दे - नज़र रखना है।
हसरते - दिल का[9] लिहाज़ आज मगर रखना है।
बेखुदी ! देख, तुझे मेरी ख़बर रखना है।
नाज़नीं क़दमों पे[10] यूं नाज़ से सर रखना है।
कि तड़प उट्ठे दिले-अर्ज़ो-समां[11] आज की रात !
हम में कुछ जुर्रते-गोयाई[12] भी होगी कि नहीं ?
हिम्मते - नासियाफ़र्साई[13] भी होगी कि नहीं ?
शर्म से दूर शिकेबाई[14] भी होगी कि नहीं ?
यूसुफ़े-दिल ज़ुलेखाई भी होगी कि नहीं[15] ?
आज की रात उफ़, ओ मेरे ख़ुदा आज की रात !

---

१. आत्मा के एकान्त में २. छाई हुई ३. लालित्य, माधुर्य ४. विचारों का प्रकटीकरण ५. स्वप्निल रूपी ६. कल्पना ७. लज्जा ८. शिष्टाचार ९. दिल की हसरत का १०. (प्रेयसी के) सुकोमल पैरों पर ११. धरती तथा आकाश का हृदय १२. बोलने का साहस १३. माथा टेकने का साहस १४. झिझक १५. ज़ुलेखा के प्रेमी यूसुफ़ की ओर संकेत है कि तू प्यार कर सकेगा या नहीं ?
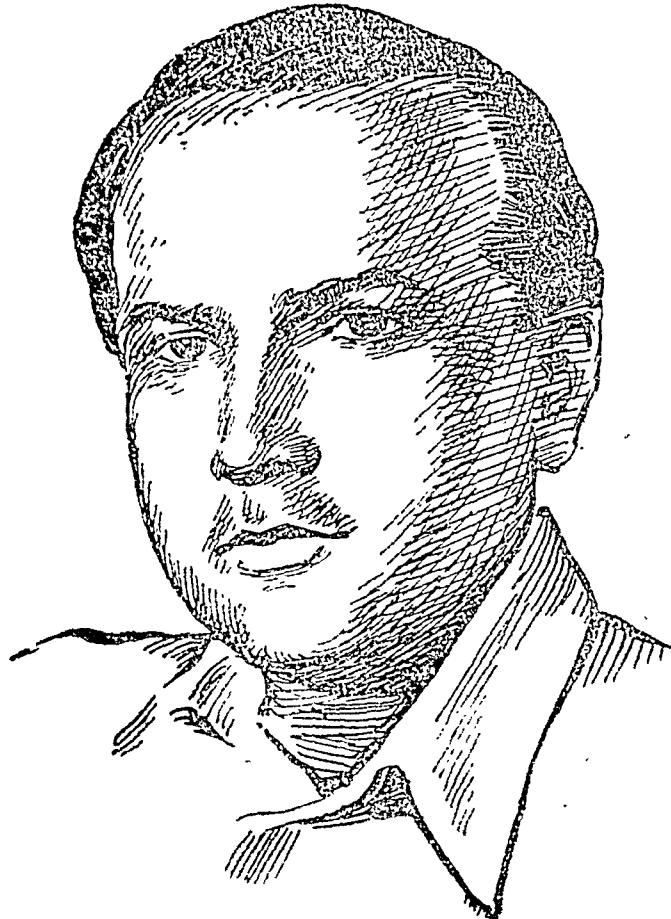
अबदुलहमीद 'अदम'

मैं मैकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का काफ़ी तवील था

अदम

मेरी तलाश से मायूस लौटने वाले।
तेरी हुदूद में[1] आकर तुझे पुकारूँगा ॥

'अदम' का यह शेर उन समालोचकों के लिए एक चैलेंज है जो शायर की सीमाओं को जाने बिना कुछ बंधे-टिके नियमों की टोपी उसके सिर पर रखकर देखते हैं कि ठीक बैठती है या नहीं। उदाहरणतः स्वयं 'अदम' के सम्बन्ध में यदि समालोचक को यह मालूम न हो कि वह बुरी तरह शराब पीता है और आठों पहर इस कोशिश में रहता है कि उसका नशा उतरने न पाये तो प्रत्यक्ष है कि वह उसके :

कौन कौसर[2] तक मुसाफ़त[3] तै करे।
मैकदा[4] फ़िर्दौस[5] से नज़दीक है ॥

इस प्रकार के शेरों को उस नखशिख के साथ नहीं देख सकता, जिन्हें शायर ने संवारने और जिलाने ही का नहीं अपनी आत्मा की आवाज़ बनाने का प्रयत्न किया है। इस 'मैकदे' के प्रेम ने 'अदम' को कहीं का नहीं रखा। उसकी पत्नी जिसे दूसरे महायुद्ध के दिनों में वह तेहरान से ब्याह कर लाया था उसके इसी 'मैकदे' के प्रेम के हाथों तंग आकर उसे छोड़ गई। आपने विशेष रूप से उसी से मिलाने और उसके शेर सुनवाने के लिए अपने यहाँ कुछ मित्रों को निमंत्रित

---

१. सीमाओं में २. जन्नत में बहने वाली शराब की एक नहर ३. सफ़र ४. शराबखाना ५. जन्नत

किया है। उसने आप से वायदा किया है कि वह ठीक सात बजे आपके यहाँ पहुँच जायेगा लेकिन सात के साढ़े सात, फिर आठ और फिर नौ बज गये लेकिन आपके माननीय अतिथि का कोई पता नहीं। आप परेशान हैं, आपके मित्र परेशान हैं, महफ़िल बर्खास्त हुआ चाहती है कि एक दोहरे बदन का व्यक्ति लड़खड़ाता-संभलता कमरे में प्रवेश करता है और महफ़िल के वातावरण में चारों ओर 'प्रश्नचिह्न' लटकता देखकर बड़ी उदासीनता से केवल इतना कहता है :

"आख़िर पीना तो शराब ही थी। यहाँ क्या और वहाँ क्या ? मेरे कुछ दोस्त मिल गये थे और रास्ते में शराबख़ाना था......"

यह 'मैकदा' या शराबख़ाना, जो हर स्थान पर उसके रास्ते की बाधा बन जाता है, उसका पूरा जीवन और पूरी शायरी है। यहीं से शुरू होती है और यहीं ख़त्म हो जाती है। और यही कारण है कि उसकी शायरी में विविध विषयों का लगभग अभाव है और उसकी कुछ एक ग़ज़लें तो एक-दूसरी की प्रतिध्वनि-सी मालूम होती हैं। वही शराब और साक़ी की स्तुति, संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति उदासीनता और शराब के प्याले को संसार की प्रत्येक वस्तु पर प्रधानता देने के सुन्दर बहाने। शब्द "सुन्दर बहाने" का प्रयोग मैंने किसी प्रकार के व्यंग्य के लिये नहीं किया क्योंकि उसके बहाने सचमुच बहुत सुन्दर हैं। आज का शायर यदि चाहे भी तो इस सामाजिक वास्तविकता से इन्कार नहीं कर सकता कि 'ग़मे-रोज़गार' (जीविका आदि जुटाने की सांसारिक चिंताओं) के आगे संसार की समस्त चिन्तायें हथियार डाल देती हैं; लेकिन ज़रा 'अदम' के तेवर देखिये कि मदिरा-पान में शरण लेने के लिये वह ग़मे-रोज़गार ही को दोषी ठहराता है :

दी जिसनें अहले-होश को[1] तरग़ीबे-मैकशी[2]।
मेरा ख़याल है कि ग़मे-रोज़गार था॥

यही नहीं, वह तो उसकी यहाँ तक लाज रखता है :

ग़रूरे-मैकशी[3] की कौन-सी मंज़िल है ये साक़ी ?
खनक साग़र[4] की आवाज़े-ख़ुदा[5] मालूम होती है॥

आधुनिक काल के इस मस्त-अलस्त शायर का जन्म जून १९०९ में तलवंडी

---

१. होश वालों को २. मदिरा-पान की प्रेरणा ३. मदिरा-पान के अभिमान ४. प्याला ५. ख़ुदा की आवाज़

मूसाखां (सरहद प्रान्त, पाकिस्तान) में हुआ। बचपन, शिक्षा आदि के जानने की बहुत कोशिश करने पर भी मुझे केवल इतना मालूम हो सका है कि उसकी शिक्षा बी० ए० तक की है। पिछले दिनों एक इंडो-पाकिस्तान मुशायरे के सिल-सिले में वह दिल्ली आया था और मेरा इरादा था कि उससे जी खोलकर बातें करूँगा और वह सब कुछ पूछ लूँगा जिसकी मुझे इस पुस्तक के लिए आव-श्यकता थी, लेकिन जब मुशायरे में तो क्या लाख ढूंढ़ने पर वह पूरी दिल्ली में भी कहीं नज़र न आया और केवल उस समय उसकी खबर मिली जब वह वापस कराची पहुँच चुका था तो प्रत्यक्ष है कि मुझे सुनी-सुनाई बातों का सहारा लेना पड़ा। इस प्रसंग में मुझे उसके एक मित्र और उर्दू के तरुण शायर नरेशकुमार 'शाद' से पर्याप्त सहायता मिली क्योंकि दिल्ली में एक 'शाद' ही था जिसे मालूम था कि 'अदम' सचमुच दिल्ली में है। 'शाद' से मुझे मालूम हुआ कि अपनी नौकरी के बारे में ('अदम' पाकिस्तान सरकार के आडिट एण्ड अकाउँट्स विभाग में गज़ेटिड आफीसर है) बहुत होशियार और ज़िम्मेदार है। हाँ, यह अलग बात है कि किसी दिन यदि उसका दफ्तर जाने को जी न चाहे तो दफ्तर के अन्य कर्मचारी श्रद्धावश या न जाने किस कारण से उसका सारा काम स्वयं ही कर देते हैं। कराची में नियुक्त होने से पहले वह काफ़ी समय तक रावलपिण्डी और लाहौर में भी रह चुका है और स्वर्गीय 'अख्तर' शीरानी से उसकी गाढ़ी छनती थी (शायद मदिरापान की साँझ के कारण)। अस्तु, उस 'अदम' में जो अपनी शायरी में नज़र आता है और उस 'अदम' में जिसे उसके घनिष्ट मित्र जानते हैं, रत्ती बराबर फ़र्क नहीं है। अतः उसके व्यक्तित्व और शायरी की इस प्रवृत्ति का यह समन्वय अपनी समस्त त्रुटियों और हीनताओं के बावजूद उस विशेष लक्षण का साधन बना जिसे आम परिभाषा में "कवि की शुद्धहृदयता अथवा निर्मलता" कहा जाता है—अर्थात् कवि का वही बात कहना जो माँगे तांगे की न होकर उसकी अपनी अनुभूतियों में से उत्पन्न होती है और सैद्धांतिक मतभेद के बावजूद अपने में अपनी महानता मनवाने की क्षमता रखती है। एक शेर देखिये :—

साक़ी मेरे खुलूस[1] की शिद्दत[2] को देखना।
फिर आगया हूँ गर्दिशे-दौरां[3] को टालकर॥

---

१. शुद्धहृदयता २. आधिक्य ३. संसारचक्र।

लेकिन शुद्धहृदयता-मात्र से भी बात नहीं बनती। शायरी में बात बनाने के लिए शुद्धहृदयता के साथ-साथ और भी बहुत कुछ आवश्यक है। इस बोध की आवश्यकता होती है कि 'गर्दिशे-दौरां' को टालना उतना ही कठिन है जितना शायर ने उसे इस शेर में सहल बताया है। अतएव क्रियात्मक जीवन के प्रति अवहेलना तथा चिन्तन की कमी ने उसे अवसन्नतावादी शायर बना दिया और उसने अपने इर्द-गिर्द एक चारदीवारी खड़ी कर ली जिससे न वह स्वयं बाहर निकलना चाहता है और न यह चाहता है कि बाहर की गर्म हवा उसे लगे। लेकिन यहाँ फिर किसी व्यक्ति के चाहने या न चाहने का प्रश्न आ खड़ा होता है। और चूँकि कोई चाहे कितना ही बड़ा अवसन्नतावादी क्यों न हो आखिर को मनुष्य होता है और मनुष्य चाहे अपने गिर्द कितनी ऊँची और मजबूत दीवारें खड़ी कर ले बाहर की गर्मी-सर्दी उसे ढूँढ़ ही लेती है, अतः जब 'अदम' ढूँढ लिया जाता है तो बेबसी के साथ ही सही, चौंकने पर वह अवश्य विवश हो जाता है :

कभी-कभी तो मुझे भी खयाल आता है।
कि अपनी सूरते-हालात[1] पर निगाह करूँ॥

और इस प्रकार जब वह उसी शुद्धहृदयता के साथ 'सूरते-हालात पर निगाह' करता है तो उसके क़लम से :

ये अक़्ल के सहमे हुए बीमार इरादे।
क्या चारा-ए-नासाजिये-हालात करेंगे[2] ?

ऐसे शेर निकलने लगते हैं और कभी-कभी तो वह 'सूरते-हालात' और 'नासाज़ियें-हालात' पर सोचते-सोचते मदिरा-स्तुति की सीमा से निकलकर एक दम विचारक और दार्शनिक बन जाता है :

दूसरों से बहुत आसान है मिलना साक़ी।
अपनी हस्ती से मुलाक़ात बड़ी मुश्किल है॥

और

ज़हने-फ़ितरत में थीं जितनी नाकशूदा उलझनें[3]।
एक मरकज़[4] पर सिमट आईं तो इन्सां बन गईं॥

---

१. स्थिति २. दुखपूर्ण परिस्थितियों का उपाय ३. प्रकृति के मस्तिष्क में कभी न सुलझने वाली जितनी उलझनें थीं ४. केन्द्र

सर रह गया है दोश पर औ दिल नहीं रहा।
क्या इस जहान में कोई क़ातिल नहीं रहा ?
ऐ चश्मे - यार[1] अब न तग़ाफ़ुल[2] न इल्तफ़ात[3]।
क्या मैं किसी सलूक के क़ाबिल नहीं रहा ?
ऐ नाख़ुदा[4] ! सफ़ीने[5] का अब कोई ग़म न कर।
हम फ़र्ज़ कर चुके हैं कि साहिल नहीं रहा ॥
पर्दा उठा कि अब मेरी मस्ती है मैं नहीं।
जिस से तुझे हया[6] थी वो हायल[7] नहीं रहा ॥
कुछ तो तेरे ख़ुलूस की ताज़ीम[8] थी 'अदम'।
वरना वो जान - बूझ कर ग़ाफ़िल नहीं रहा ॥

◇ ◇ ◇

दिल है बड़ी ख़ुशी से इसे पायमाल कर।
लेकिन तेरे निसार[9] ज़रा देख-भाल कर ॥
इतना तो दिलफ़रेब न था दामे-ज़िन्दगी[10]।
ले आए एतबार के सांचे में ढाल कर ॥
साक़ी मेरे ख़ुलूस की शिद्दत[11] को देखना।
फिर आगया हूँ गर्दिशे-दौरां[12] को टाल कर ॥
ऐ दोस्त तेरी ज़ुल्फ़े-परीशां[13] की खैर हो।
मेरी तबाहियों का न इतना खयाल कर ॥
लाया हूँ यूं बचा के हवादिस से[14] ज़ीस्त[15] को।
लाते हैं जैसे कोह[16] से चश्मा निकाल कर ॥
थोड़े से फ़ासले में भी हायल[17] हैं लग़ज़िशें[18]।
साक़ी संभाल कर, मेरे साक़ी संभाल कर ॥
हम से 'अदम' छुपाओ तो ख़ुद भी न पी सको।
रक्खा है तुमने कुछ तो सुराही में डालकर ॥

---

१. मित्र की दृष्टि २. बेपरवाही ३. कृपादृष्टि (प्रेम) ४. मांझी ५. नाव ६. लाज ७. बाधक ८. आदर, सम्मान ९. बलिहारी १०. जीवन का जाल ११. आधिक्य १२. संसार-चक्र १३. बिखरे केश १४. दुर्घटनाओं से १५. जीवन १६. पहाड़ १७. बाधक १८. लड़खड़ाहटें

जो लोग जान-बूझकर नादान बन गये।
मेरा ख़याल है कि वो इन्सान बन गये॥
हम हश्र[1] में गए थे मगर कुछ न पूछिये।
वो जान-बूझकर वहां अनजान बन गये॥
हंसते हैं हमको देखकर अरबाबे-आगही[2]।
हम आपके मिज़ाज[3] की पहचान बन गये॥
मंझधार तक पहुंचना तो हिम्मत की बात थी।
साहिल के आस-पास ही तूफ़ान बन गये॥
इन्सानियत की बात तो इतनी है शैख़जी!
बदक़िस्मती से आप भी इन्सान बन गये॥
कांटे थे चंद दामने-फ़ितरत में[4] ऐ 'अदम'।
कुछ फूल और कुछ मेरे अरमान बन गये॥

◇ ◇ ◇

मैख़ाना-ए-हस्ती में अक्सर हम अपना ठिकाना भूल गये।
या होश से जाना भूल गये या होश में आना भूल गये॥
असबाब[5] तो बन ही जाते हैं तक़दीर की ज़िद को क्या कहिये?
इक जाम तो पहुंचा था हम तक, हम जाम उठाना भूल गये॥
आये थे बिखेरे जुल्फ़ों को इक रोज़ हमारे मरक़द[6] पर।
दो अश्क[7] तो टपके आंखों से, दो फूल चढ़ाना भूल गये॥
चाहा था कि उनकी आंखों से कुछ रंगे-बहारां[8] ले लीजे।
तक़रीब[9] तो अच्छी थी लेकिन, वो आंख मिलाना भूल गये॥
मालूम नहीं आईने में चुपके से हंसा था कौन 'अदम'?
हम जाम उठाना भूल गये, वो साज़ बजाना भूल गये॥

◇ ◇ ◇

---

१. वह स्थान जहां प्रलय के बाद मनुष्य भगवान को अपने कर्मों का उत्तर देगा। २. होश वाले (बुद्धिमान्) ३. स्वभाव ४. प्रकृति की झोली में ५. कारण ६. क़ब्र ७. आंसू ८. बहारों का रंग ९. शुभ अवसर

इक सितारा, इक कली, इक मै का क़तरा, एक ज़ुल्फ़।
जब इकट्ठे हो गये तामीरे-जन्नत[1] हो गई॥

◇ ◇ ◇

फ़ुर्सत का वक़्त ढूंढ के मिलना कभी अजल[2]।
मुझको भी काम है, अभी तुझको भी काम है॥

◇ ◇ ◇

महशर का ख़ैर कुछ भी नतीजा हो ऐ 'अदम'!
कुछ गुफ़्तगू तो हम भी करेंगे ख़ुदा के साथ॥

◇ ◇ ◇

इश्क़ ने सौंपा है काम अपना, अब तो निभाना ही होगा।
मैं भी कुछ कोशिश करता हूं, आप भी कुछ इमदाद करें॥

◇ ◇ ◇

तख़लीक़े-कायनात[3] के दिलचस्प जुर्म पर।
हँसता तो होगा आप भी यज़दाँ[4] कभी-कभी॥

◇ ◇ ◇

पहुंच सका न मैं बरवक़्त अपनी मंज़िल पर।
कि रास्ते में मुझे रहबरों ने घेर लिया॥

◇ ◇ ◇

सिर्फ़ इक क़दम उठा था ग़लत राहे-शौक़[5] में।
मंज़िल तमाम उम्र मुझे ढूंढती रही॥

---

१. स्वर्ग का निर्माण २. मृत्यु ३. विश्व-निर्माण ४. भगवान
५. प्रेम-मार्ग

'साग़र' निज़ामी

आसान नहीं इस दुनिया में ख़्वाबों के सहारे जी सकना
संगीन हक़ीक़त है दुनिया ये कोई सुनहरी ख़्वाब नहीं

परिचय

'साग़र' की शायरी और उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यदि केवल एक वाक्य ही पर्याप्त समझना हो तो यह कहकर चुप हुआ जा सकता है कि 'साग़र' हर मुशायरा लूट लेता है। लेकिन यहाँ चूंकि उसके सम्बन्ध में एक से अधिक वाक्यों की आवश्यकता है, इसलिए अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूँगा कि मुशायरे के अतिरिक्त वह अपने प्रत्येक मित्र और परिचित का दिल भी लूट लेता है। सुकण्ठ और सुभाषी तो वह है ही, आयु के लिहाज़ से आधी सदी पार कर चुकने के बावजूद अभी तक वह सजीला भी है। इसके अतिरिक्त पहली मुलाक़ात में ही जिस तरह वह आप से बेतकल्लुफ़ हो जाएगा; जिस तरह अपने व्यक्तिगत जीवन की प्रिय, अप्रिय घटनाओं की सविस्तार चर्चा करेगा और अनुरोध-पूर्वक आपसे आपकी आत्मकथा सुनेगा; अपनी डिबिया से पान निकाल कर आप को पेश करेगा और बड़ी बेतकल्लुफ़ी से आप का पेश किया हुआ सिगरेट क़बूल करेगा, उससे उसके व्यक्तित्व से तो आप प्रभावित होंगे ही, उसे अपना घनिष्ट मित्र भी समझने लगेंगे।

'साग़र' से यों तो मैं एक समय से परिचित था और एक राष्ट्रवादी शायर के नाते कौन उससे परिचित नहीं है? सरोजनी नायडू और 'जोश' मलीहाबादी की तरह स्वतन्त्रता-आंदोलन के दिनों में उसके नग़मे भी घर-घर गूंज चुके हैं और बहुत कम मुशायरे ऐसे होंगे जिनमें उसका योग अनिवार्य न समझा गया हो, लेकिन व्यक्तिगत रूप से पहली बार उससे मेरा परिचय १९४९ में 'जोश'

साहब के यहां हुआ था जब काश्मीर के एक मुशायरे में भाग लेने वह बम्बई से आया था और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। उन परिस्थितियों में भी, जबकि उसके कथनानुसार कई बार उसकी जेब में ट्राम का टिकट खरीदने के लिए एक इकन्नी न होती थी कि वह काम ढूंढ़ने के लिए घर से निकल सके, मैंने उसके होंटों पर वही मधुर मुस्कराहट देखी जो आजकल देखता हूँ—आजकल, जबकि वह आल-इंडिया रेडियो दिल्ली में छः सौ से ऊपर वेतन पा रहा है।

"आदमी को हर हाल में हालात का मुक़ाबला करना चाहिये।" अपनी उन दिनों की दुरवस्था का ज़िक्र करने के बाद उसने कहा, "हालात के आगे हथियार डाल देना बुज़दिली है। इन्सान अगर ख़ुद-एतमादी और ख़ुद्दारी (आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान) को हाथ से न जाने दे और बराबर हालात का मुक़ाबला करता रहे तो एक दिन हालात उसके आगे हथियार डाल देते हैं।"

हालात ने उसके आगे हथियार डाल दिये हों, यह बात नहीं, और वह अपनी इस नौकरी से सन्तुष्ट होकर बैठ गया हो, यह बात भी नहीं। हालात की टेढ़ी-मेढ़ी सड़क पर, जिसकी शायद कोई मंज़िल नहीं, वह बराबर आगे बढ़ रहा है। यह नौकरी और इस प्रकार की दूसरी नौकरियां जो उसने जीवन में अपनाईं, उसके लिए एक पड़ाव-मात्र है, क्योंकि कभी-कभी मनुष्य को विश्राम की भी आवश्यकता होती है।

उर्दू शायरी का यह मुसाफ़िर जो मुशायरों और जीविका जुटाने के सम्बंध में नगरी-नगरी घूम चुका है, सन् १९०५ में अपने नहिाल अलीगढ़ में पैदा हुआ। वहीं प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और वहीं शायर के रूप में अपने पर-पुर्ज़े निकाले। मामा आबिद 'रज़ा' स्वयं शायर थे, इसलिए जब भी अलीगढ़ में कोई मुशायरा होता था, बाहर से आने वाले शायर अधिकतर उन्हीं के यहां ठहरते थे। शाम को मुशायरे में पढ़ने के लिए दिन भर पढ़ने का (गलेबाज़ी का) अभ्यास होता था, अतएव जिस तरह बच्चे बड़ों की नक़ल करते हैं, तेरह वर्ष के नन्हे 'साग़र' ने भी देखा-देखी तुक-बंदी और गलेबाज़ी शुरू कर दी। उस समय उसकी आयु सोलह वर्ष की थी जब अलीगढ़ में एक अखिल भारतीय मुशायरा हुआ और किसी तरह 'साग़र' को भी उसमें पढ़ने का अवसर मिल गया और वहां उसने बड़े सुरीले तरन्नुम के साथ ये शेर पढ़े:

बचपन ही में किया मुझे ग़म ने शिकस्तापा[१]।
तै होंगी कैसे मंज़िलें या रब शबाब की[२] ?
गर्दिश रही नसीब में या रब तमाम उम्र।
'साग़र' बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की॥

उस मुशायरे में तो 'साग़र' की मिट्टी ख़राब होने की बजाय उसे ख़ूब-ख़ूब दाद मिली, अलबत्ता घर पहुँचने पर उसकी मिट्टी ज़रूर ख़राब हुई। पिता डाक्टर थे और उन्हें बेटे की शायरी सुनने का नहीं, शायरी के कारण बेटे को पीटने का शौक़ था, अतएव 'साग़र' की ख़ूब पिटाई हुई। लेकिन ज्यों-ज्यों 'साग़र' की पिटाई होने लगी त्यों-त्यों शायरी से 'साग़र' का सम्बन्ध और भी गहरा होता गया और उसके बाद कुछ वर्षों में ही अलीगढ़ से निकलकर उसका नाम पूरे भारत में फैल गया और हर मुशायरे के लिए बुलावे आने लगे।

स्वभाव में उद्दण्डता का तत्व तो बचपन ही से था, अतएव होश सम्भालने पर जब अपने कुल का इतिहास* सामने आया तो खून के आँसू रुला गया। अंग्रेज़ी शासन और देश की परतन्त्रता के प्रति घृणा-भाव तीव्रतर हो उठा और न केवल उसकी क़लम ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया बल्कि शिक्षा को नमस्कार कर वह क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता-आंदोलन में शामिल हो गया। देश की स्वतन्त्रता और देश-प्रेम के सम्बन्ध में उसका यह फैसला :

"जहाँ तक हिन्दोस्तान की आज़ादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य) और एक मुत्तहद (अखंड) आज़ाद मुल्क का सवाल है, मैं इनके मुक़ाबले में दुनिया की बादशाहत को ठुकरा दूंगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी, अपने माँ-बाप, अपने भाई, अपनी बीवी और अपनी जान से भी ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) हैं। मैं मर जाना पसंद करूँगा लेकिन उन तबक़ों (वर्गों) का साथ न दूँगा जो हिन्दोस्तान की आज़ादी के दुश्मन हैं। यह मेरा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और मज़बूत (सुदृढ़) ईमान है, जो कभी मुतज़लज़ल (प्रकम्पित) नहीं हुआ और कभी नहीं होगा।"

उस समय भी अटल रहा जब उसके कथनानुसार उसके 'बुरे दिन' थे और

---

१. पांव तोड़ डाले (थका दिया)। २. जवानी की।

* परदादा सरदार शहबाज़ खां 'झज्झर के नवाब की सेना में सेनापति थे और चूंकि मुग़ल बादशाह के पक्ष में अंग्रेजों से लड़े थे इसलिए उनके पूरे खानदान को सूली पर लटका दिया गया था। उनके केवल एक पुत्र जो उन दिनों बहुत छोटे थे किसी प्रकार बच गये और उन्हीं से यह कुल आगे चला।

यदि वह चाहता तो पलक झपकने की देर में 'बुरे दिन' बहुत अच्छे दिनों में परिवर्तित हो सकते थे। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और विभिन्न स्थानों से विभिन्न पत्र-पत्रिकायें निकालकर (जिनमें 'एशिया' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ), कभी किसी प्रेस में नौकरी करके, कभी फ़िल्म जगत में जाकर और कभी केवल मुशायरों की थोड़ी-सी आय पर निर्वाह करते हुए उन बुरे दिनों को धक्के दिये और हर क़दम और हर मोड़ पर इस प्रतिज्ञा को छाती से लगाता रहा कि :

जब तिलाई[1] रंग सिक्कों को नचाया जायेगा।
जब मेरी ग़ैरत[2] को दौलत से लड़ाया जायेगा॥
जब रगे-इफ़लास[3] को मेरी दबाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
और अपने पांव से अंबारे-ज़र[4] ठुकराऊँगा॥
जब मुझे पेड़ों से उरियां[5] करके बांधा जायेगा।
गर्म आहन[6] से मिरे होंटों को दाग़ा जायेगा॥
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
तेरे नग़मे गाऊँगा और आग पर सो जाऊँगा॥
हुक्म आख़िर क़त्लगह[7] में जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फांसी के तख़्ते पर चढ़ाया जायेगा॥
जब यकायक तख़्ता-ए-ख़ूनी[8] हटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक़्त भी मैं तेरे नग़मे गाऊँगा॥
अहद[9] करता हूँ कि मैं तुझ पर फ़िदा[10] हो जाऊँगा॥

आज देश स्वतन्त्र है। आज उसकी यह प्रतिज्ञा इतिहास का अंग बन चुकी है। मुशायरों में भी आज गलेबाज़ी का वह पहले ऐसा ज़ोर-शोर नहीं रहा, लेकिन 'साग़र' को अपनी इस प्रतिज्ञा और इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञाओं पर आज भी गौरव है और यथोचित गौरव है। अतएव पिछले दिनों जब दिल्ली के एक मुशायरे में वह भाग लेने आया तो उपस्थित जनों में से किसी मसखरे ने उस पर यह वाक्य कसा कि "लीजिये एक भांड भी तशरीफ़ ला रहे हैं" तो लज्जित होने की बजाय 'साग़र' ने तुरन्त इसका उत्तर यों दिया, "हां, मैं भांड़ हूँ और मुझे फ़ख्र है कि मैं क़ौम का भांड़ हूँ।"

---

१. सुनहरी २. स्वाभिमान ३. दरिद्रता की नस ४. धन का ढेर ५. नग्न ६. लोहे ७. वध-स्थान ८. फाँसी का तख़्ता ९. प्रतिज्ञा १०. न्यौछावर

नया पुजारी

कोई है बहारे - चमन का[1] पुजारी
कोई है गुलो-यासमन[2] का पुजारी,
बुते - मौलवी को[3] कोई पूजता है
कोई क़शक़ा-ए-बरह्मन का[4] पुजारी,
ग़ुलामे-ग़ुलामाने-ज़मज़म[5] है कोई
कोई मौजे-गंगो-जमन का[6] पुजारी,
मगर मेरा ज़ौक़े-परस्तिश[7] जुदा है।
मैं 'साग़र' हूं अपने वतन का पुजारी।।

ऋषिकेश में कोई बैठा हुआ है
कोई हर की पौड़ी के गुन गा रहा है,
बनारस की गलियों में फिरता है कोई
मज़ारों पे जाकर कोई नाचता है,
कलीसा[8] में है महवे-तसलीम[9] कोई
कोई दैर[10] में मूर्ती पूजता है,
मगर मेरा ज़ौक़े-परस्तिश जुदा है।
मैं 'साग़र' हूं अपने वतन का पुजारी।।

हर इक क़ैदे-फ़र्ज़ी[11] से आज़ाद हूं मैं
तरक़्क़ी दहे-बज़्मे-ईजाद[12] हूं मैं,
अक़ीदे[13] मेरे सामने कांपते हैं
उसूले-मुहब्बत की बुनियाद हूं मैं,
न ज़ुन्नार[14] का ग़म न तसबीह[15] का ग़म।
दिमाग़ी ग़ुलामी से आज़ाद हूं मैं।।

---

१. बाग़ की बहार का २. फूलों ३. मौलवी के बुत को ४. ब्रह्मन के तिलक का ५. ज़मज़म (काबे का एक कुआँ) के ग़ुलामों का ग़ुलाम ६. गंगा, जमना की लहरों का ७. उपासना की अभिरुचि ८. गिरजाघर ९. उपासना में निमग्न १०. मन्दिर ११. मनघड़ंत क़ैद १२. संसार को उन्नत करने वाला १३. मान्यतायें १४. जनेऊ १५. माला

नाग

मस्ती का लहराता पैकर[1] सर से पा तक[2] काले।
मौत की वादी के रखवाले, ऐ क़हरों[3] के पाले॥
अब्रे-सियाह[4] उतरा है ज़मीं पर ताज़ा शबनम पीने।
हब्शी कोई लूट रहा है या मोती के खज़ीने[5]॥
मैं भी इक मोती को उठा लूँ ?
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
अपनी ही मस्ती की धुन में झूम रहे हो ऐसे।
जैसे कोई दखनी कंवारी मदिरा पीकर झूमे॥
अंधियारी दर्पन है तुम्हारा नूर[6] तुम्हारा हाला[7]।
रात की देवी क्या जंगल में भूल गई है माला ?
अपने गले में तुमको डालूं ?
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
कुसुम की टहनी पर भौंरे ने या डाला है डेरा।
बिन पत्तों की शाख पे या कोयल ने रैन-बसेरा॥
बिजली से मामूर[8] घटायें उमड़ रही हों जैसे।
या सावन की काली रातें सिमट गई हों जैसे॥
आओ तुमको बीन बना लूँ !
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
या कोई मग़रूर जवानी झूम रही हो पीकर।
या तूफ़ानों में लहराये जैसे काला सागर॥

---

१. शरीर (मूर्ति) २. सिर से पैरों तक ३. आफ़तों ४. काला बादल
५. खज़ाने ६. प्रकाश ७. कुण्डल ८. परिपूर्ण

पाप की मीठी अंधियारी हो या मस्ती सवेरा।
मौत की रौशन-तारीकी[1] हो या जीवन का अंधेरा॥
उम्मीदों का दीप जला लूं !
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
ऐ बाम्बी के बसने वाले तुम क्या हो ज़हरीले।
लाखों नाग हैं इन्सानों में गोरे, काले, पीले॥
मुल्ला, नेता, पीर और पण्डित, राजे, पांडे, लाले।
बस्ते हैं दुनिया में तुमसे बढ़कर डसने वाले॥
तुमसे मैं क्या मन को डसा लूं ?
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
बिष है तुम्हारा बूँद बराबर, इनका ज़हर समन्दर।
डँक तुम्हारा वीरानों तक, इनका डसना घर-घर॥
तेरा काटा एक दिन जीवे, इनका काटा पल भर।
सहर[2] तुम्हारा सर पर बोले, इनका जादू मन पर॥
मन से इनका ज़हर हटा लूं !
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥
इन्सानी नागों के बयां[3] हों क्या ज़हरी अफ़साने।
तेरा डसना छुप-छुपकर है, इनका खुले-खज़ाने॥
डसते हैं और फिर कहते हैं मौत न आने पाये।
तेरा बिष तो रखता है हर ज़ख्मी दिल पर फाये॥
दारू-ए-आलाम[4] चुरा लूं !
ऐ बाम्बी के बासी !
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के बासी॥

---

१. प्रकाशमान अन्धकार २. जादू ३. वर्णन ४. दुखनाशक औषधि

बुझा हुआ दीपक

जीवन की कुटिया में हूँ मैं बुझा हुआ सा दीपक ।
आशा के मन्दिर में हूं मैं बुझा हुआ सा दीपक ।।
बुझा हुआ सा दीपक हूं मैं, बुझा हुआ सा दीपक ।

कजराये - दीवट पे धरा हूं यूँ कुटिया में हाए ।
जैसे कोयल सीस नवाकर अम्बुआ पर सो जाए ।।
जैसे श्यामा गाते - गाते कुहरे में खो जाए ।
जैसे दीपक आग में अपनी आप भस्म हो जाए ।।
बिरह में जैसे आंख किसी क्वांरी की पथरा जाए ।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ।।

आतम, हिरदय, जीवन, मृत्यु, सतयुग, कलियुग, माया ।
हर रिश्ते पर मैंने अपने नूर[1] का जाल बिछाया ।।
चारों ओर चमक कर अपनी किरनों को दौड़ाया ।
जितना ढूँढ़ा उतना खोया, खोकर खाक न पाया ।।
बीत गये जुग लेकिन 'साग़र' मुझ तक कोई न आया ।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ।।

आखिर बिल्कुल बुझ जाने की हो ली जब तैयारी ।
आकर मेरे कान में बोली इक शब[2] यूँ अंधियारी ।।
जग में जिसको कोई न पूछे वो क़िस्मत की मारी ।
मन-मन्दिर में मुझ को बिठा लो ऐ ज्योति के रसिया ।।

---

१. प्रकाश २. रात

रोकती ही रह गई मासूम दूर-अंदेशियां[१] ।
उन के लब[२] पर मेरा ज़िक्रे-नातमाम[३] आ ही गया ॥
है जहां इश्क़ो-हविस[४] को एतराफ़े-बेकसी[५] ।
तलख़ी-ए-हस्ती के[६] क़ुर्बां वो मुक़ाम आ ही गया ॥
जैसे साग़र से छलक जाये मचलती मौजे-मै[७] ।
कांपते होंटों पे उनके मेरा नाम आ ही गया ॥

◇ ◇ ◇

ये तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाएं ।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाये है ॥
जिस सिम्त[८] न दुनिया है, ऐ दोस्त न उक़बा[९] है ।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाये है ॥

◇ ◇ ◇

तेरे सर की क़सम गर तू न हो मेरे तसव्वुर[१०] में ।
मेरी नाज़ुक तबीयत पर ये दुनिया बार[११] हो जाये ॥

◇ ◇ ◇

ख़िरद[१२] को ये ज़िद भी न लुटती ये दौलत ।
इसी ज़िद पे हमने जवानी लुटा दी ॥

◇ ◇ ◇

कैफ़े-ख़ुदी[१३] ने मौज को कश्ती बना दिया ।
फ़िक्रे-ख़ुदा है अब न ग़मे-नाख़ुदा[१४] मुझे ॥

---

१. दूरदर्शितायें २. होंठ ३. समाप्त न होने वाली चर्चा ४. प्रेम तथा कामवासना ५. विवशता का स्वीकरण ६. जीवन की कटुता के ७. शराब की लहर ८. ओर ९. परलोक १०. कल्पना ११. भार १२. ज्ञान १३. अहम्मन्यता के उन्माद १४. मल्लाह की चिंता

'मजाज़' लखनवी

ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

परिचय

"एक ऐसा वक्त भी गुजरा है जब 'मजाज़' के नाम पर गर्ल्ज़ कालेज, अलीगढ़ में लाट्रियां डाली जाती थीं कि 'मजाज़' किस के हिस्से में पड़ता है और उस की नज़्में तकियों के नीचे छुपा कर आंसुओं से सींची जाती थीं और जब कंवारियां अपने भावी बेटों के नाम उसके नाम पर रखने की क़समें खाती थीं और अपने क़हक़हों, चूड़ियों की खनखनाहट और उड़ते हुए दोपट्टों की लहरों में 'मजाज़' के शेर गुनगुनाती थीं..."

'मजाज़' के सम्बन्ध में इस्मत चुग़ताई (प्रसिद्ध उर्दू लेखिका) के ये शब्द पढ़ने के बाद जब मैं आज के मजाज़ की ओर देखता हूँ, विशेष रूप से इस समय जबकि मैं उसके जीवन और उसकी शायरी के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखने जा रहा हूँ और मैंने नये सिरे से उसकी समूची शायरी का अध्ययन किया है और मुझे उससे अपनी तमाम मुलाक़ातें याद आ रही हैं तो मुझे बड़े दुख से कहना पड़ता है कि आज नौजवान और सुन्दर से सुन्दर लड़कियों के इतने प्रिय शायर के जीवन की सबसे बड़ी रिक्तता औरत है।

खाइयेगा इक निगाहे-लुत्फ़ का कब तक फ़रेब ?
कोई अफ़साना बनाकर बदगुमां हो जाइये[1]।

यह शेर 'मजाज़' ही का है। सोचता हूँ, किस भावना के वशीभूत 'मजाज़' ने यह शेर कहा होगा ! 'मजाज़' के नाम पर लाट्रियां डालने वाली लड़कियों ने

१. प्रेमिका की एकमात्र कृपा-दृष्टि (लगाव) का कब तक धोखा खायें ?
कोई प्रेम-कथा गढ़ कर क्यों न मन बहला लिया जाए ?

'मजाज़' को बदगुमानी तो नहीं हाँ खुशफ़हमी (आत्मप्रवंचना) में ज़रूर डाले रखा और यह उसके जीवन की ट्रेजिडी है कि वह सब कुछ समझते हुए भी उस आत्मप्रवंचना में ग्रस्त रहा।

मुझको अहसासे-फ़रेबे-रंगो-बू[१] होता रहा।
मैं मगर फिर भी फ़रेबे-रंगो-बू खाता रहा।।

जान-बूझकर 'रंगो-बू' का फ़रेब खाने का परिणाम यह हुआ कि 'मजाज़' ने अपनी कल्पित नायिकाओं की परछाइयां शराब के प्याले में तलाश करनी शुरू कर दीं और अपनी 'सुशीलता' के सहारे शराब को शिकस्त देते स्वयं शराब का शिकार हो गया और फिर शराब ने उससे बुरी तरह बदला लिया। उसने गिर-गिरकर सँभलने की लाख कोशिश की, लेकिन हुआ यही कि उसके दिल का लोच और उसकी चिंतनशीलता शराब से हार गई और उसे अपनी पराजय का अनुभव भी हो गया :

क्या सुनोगी मेरी मजरूह[२] जवानी की पुकार,
मेरी फ़र्य्यादे-जिगरदोज़,[३] मेरा नाला-ए-ज़ार[४],
शिद्दते-क़र्ब में[५] डूबी हुई मेरी गुफ़्तार[६],
मैं कि खुद अपने मज़ाक़े-तरब-आगीं[७] का शिकार,
वो गुदाज़े-दिले-मरहूम[८] कहाँ से लाऊँ?
अब मैं वो जज़्बा-ए-मासूम[९] कहाँ से लाऊँ?

और

मेरी बर्बादियों का, हमनशीनो[१०],
तुम्हें क्या, खुद मुझे भी ग़म नहीं है।

लेकिन यह केवल शायर के स्वाभिमान की बात है। अन्यथा 'मजाज़' को अपनी बर्बादियों का ग़म है और बहुत अधिक ग़म है। जानने वाले जानते हैं कि हर तूफ़ान के बाद मजाज़ की मूकता और दीर्घ मूकता कितनी सार्थक होकर सामने आती रही है और हर 'पाप' के बाद वह किस प्रकार उसका 'प्रायश्चित्त' करता रहा है। जब अपने प्रेम में विफल होने के बाद उसे देहली छोड़नी पड़ी

---

१. रंग तथा सुगंधि (सौन्दर्य) के धोखे की अनुभूति २. घायल ३. दिल दुखाने वाली फ़र्याद ४. आर्त्तनाद ५. तीव्र वेदना में ६. बातचीत ७. प्रसन्न स्वभाव ८. मरे हुए (बुझे हुए) दिल का लोच ९. अबोध भावना १०. साथियो

तो उसकी क्या हालत हुई ? जब शराब की अधिकता के कारण पहली बार उसका मानसिक संतुलन बिगड़ा तो स्वस्थ होने के बाद उसकी क्या हालत थी ? जब उसे आल-इंडिया रेडियो उर्दू मासिक-पत्रिका 'आवाज़' (यह नाम 'मजाज़' ही का दिया हुआ है) का सम्पादन छोड़ना पड़ा तो उसकी क्या हालत थी ? और दोबारा शराब की अधिकता के कारण राँची मैंटल हस्पताल में रहने के बाद, जब पिछले दिनों वह बाहर निकला है तो इन दिनों उसकी क्या हालत है ?—जानने वाले जानते हैं कि उसको अपनी बर्बादी का कितना ग़म है और यही ग़म प्रकाश की वह हल्की-सी किरन है जो हम से कहती है कि "इन्तज़ार करो, 'मजाज़' अब भी सँभल सकता है।"

'मजाज़' से मेरी पहली मुलाक़ात बड़े नाटकीय ढँग से हुई। यह १९४८ की एक रात के दस-ग्यारह बजे की बात है कि महीनों की दौड़धूप के बाद किसी प्रकार मैंने और 'साहिर' लुध्यानवी ने नया मोहल्ला, पुल बंगश (दिल्ली) में एक खाली मकान ढूंढ़ निकाला था। मोहल्ला मुसलमानों का था और उन दिनों शहर का वातावरण मुसलमानों के पक्ष में अच्छा न था। अर्थात् एक चीज़ 'साहिर' के पक्ष में थी और दूसरी मेरे; अतएव हम दोनों विचित्र प्रकार का डर तथा झिझक महसूस कर रहे थे और चाहते थे कि हमारे मकान में प्रवेश करने की किसी को कानों-कान खबर न हो। 'साहिर' सामान ढो रहा था और मैं गली के बाहर सामान की रखवाली कर रहा था कि एक ओर से एक दुबला-पतला, तीखे नैन-नक़्श का व्यक्ति बुरी तरह लड़खड़ाता और बुड़बुड़ाता हुआ मेरे निकट आ खड़ा हुआ।

" 'अख़्तर' शीरानी मर गया—"

"—हाय 'अख़्तर' शीरानी तू उर्दू का बहुत बड़ा शायर था—बहुत बड़ा।"

वह बार-बार यही वाक्य दोहरा रहा था और हाथों से शून्य में टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें बना रहा था और न जाने किसे कोसने दे रहा था कि मैं घबरा गया और अपनी उस समय की घबराहट में मैं न जाने उससे क्या कुछ कह डालता कि ठीक उसी समय कहीं से 'जोश' मलीहाबादी निकल आये (उन दिनों वे उसी मोहल्ले में रहते थे) और मुझे पहचान कर बोले "इन्हें संभालो प्रकाश ! ये 'मजाज़' हैं।"

'मजाज़' की शायरी का प्रशंसक और उससे मिलने का इच्छुक होने पर भी उस समय 'मजाज़' को संभालने की बजाय अपने-आपको संभालना अधिक आवश्यक था। फिर भी 'साहिर' के लौटने तक मैं 'मजाज़' के अनुरोध पर उसी की

तरह शून्य में टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींचता रहा और उसके उस मेज़वान को उसी तरह बुरा-भला कहता रहा, जिसने घर में शराब होने पर भी उसे और शराब न पीने दी थी और अपनी मोटर में बिठा कर रेलवे पुल के पास छोड़ दिया था।

[ये पंक्तियाँ लिखते समय मुझे 'मजाज़' की वह क्रुद्धता याद आ रही है जिसका उल्लेख उसने 'साहिर' लुध्यानवी के नाम अपने एक पत्र में किया था और अपनी निष्कपटता के बावजूद मैं डरता हूँ कि कहीं 'मजाज़' पर मेरे इस लेख की प्रतिक्रिया भी वही न हो। 'सवेरा' (लाहौर) के सम्पादन काल में 'साहिर' ने 'मजाज़' का परिचय कराते हुए यह लिख दिया था कि 'मजाज़' पर दो बार दीवानगी का दौरा पड़ चुका है और वह दिन-रात शराब पीता है और गली-कूचों में मारा-मारा फिरता है—'मजाज़' ने इस परिचय के उत्तर में गिला किया था कि :

कुछ तो होते हैं मुहब्बत में जनूँ[1] के आसार[2]।
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं॥

मेरी अभिलाषा है कि 'मजाज़' को मेरे इस लेख से इस प्रकार का आभास न हो।]

'मजाज़' से अपनी इस मुलाक़ात का ज़िक्र करने की आवश्यकता मुझे इस लिए हुई क्योंकि इससे मुझे उसकी शायरी की पृष्ठभूमि को समझने में बड़ी सहायता मिली है। उसके बाद भी मैं प्रायः मजाज़ से मिलता रहा हूँ और मुझे दो-तीन मास तक उसका मेज़बान होने का सौभाग्य भी प्राप्त हो चुका है और होश में भी और नशे में भी मैं उसकी ज़बान से तरह-तरह की बातें सुन चुका हूँ, लेकिन उसकी वह पहली मुलाक़ात मुझे कभी नहीं भूलती जब वह नशे में धुत होने पर भी 'अख़्तर शीरानी', 'अख़्तर शीरानी' पुकार रहा था और उसे उर्दू का बहुत बड़ा शायर कह रहा था।

वास्तविकता यह है कि 'अख़्तर' शीरानी और 'मजाज़' की शायरी की पृष्ठ-भूमि एक है अर्थात् मौलिक रूप से दोनों रोमांटिक शायर हैं। वहाँ भी बेकार जीवन की उदासी का निखार है और यहाँ भी। वहाँ भी शराब है और यहाँ भी। वहाँ भी कोई न कोई 'सलमा' और 'अज़रा' है (अख़्तर शीरानी की काल्पनिक प्रियतमाएं) और यहाँ भी कोई 'ज़ोहरा जबीं'। वहाँ भी ग़ालिब,

---

१. उन्माद २. लक्षण

मोमिन, हाफ़िज़ और ख़्य्याम का नखशिख है और यहाँ भी। लेकिन आगे चल कर जो चीज़ 'मजाज़' को 'अख़्तर' शीरानी से अलग करती है, वह है 'मजाज़' की प्रगतिशील प्रवृत्ति। खालिस रूप-रस की शायरी करते हुए भी वह अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के प्रभावों तथा परिवर्तनों से पहलू नहीं बचाता। हुस्न और इश्क़ का एक अलग संसार बसाने की इच्छा के प्रतिकूल वह हुस्न और इश्क़ पर लगे प्रतिबन्धों तथा समाज के अन्यायों के विरुद्ध अपना दुख तथा क्रोध प्रकट करता है।

दैवीय अप्सराओं की ओर देखने की बजाय उसकी नज़र रास्ते के गन्दे लेकिन ललित सौंदर्य पर पड़ती है और इन दृश्यों के निरीक्षण के बाद वह जन-साधारण की तरह जीवन के दुख-दर्द के बारे में सोचता है और फिर अपनी सोच को जिस कविता में ढालता है उसमें किसी 'ज़ोहरा जबीं' से प्रेम-मात्र ही नहीं होता, एक विद्रोह की भावना भी होती है। यह विद्रोह वह कभी जीवन-व्यवस्था के विरुद्ध करता है, कभी साम्राज्य के विरुद्ध और कभी जीवन की निराशाओं और असफलताओं के वशीभूत इतना कठोर तथा उत्तेजित हो जाता है कि अपनी 'ज़ोहरा जबीनों' के 'सुन्दर महल' तक फूंक डालना चाहता है।

कदाचित् इसीलिए 'मजाज़' की शायरी पर आलोचना करते हुए उर्दू के एक बुज़ुर्ग शायर तथा आलोचक ने एक बार लिखा था कि "उर्दू में एक कीट्स (Keats) पैदा हुआ था लेकिन इन्क़लाबी भेड़िये उसे उठा ले गये।"

'मजाज़' को इन्क़लाबी भेड़िये उठा ले गये या वह स्वयं भोली-भाली भेड़ों के रेवड़ से निकल आया, इस लम्बे तर्क की यहाँ गुंजाइश नहीं है, हाँ इस वास्तविकता से उर्दू का कोई पाठक इन्कार नहीं कर सकता कि 'मजाज़' ने जिस प्रकार व्यक्तिगत दुखों को सामाजिक पृष्ठभूमि में जाँचा है और यथार्थवाद तथा रोमांसवाद का संगम तलाश किया है और उसके यहाँ जो लोच तथा विमलता, प्रेम तथा राजनीति, शृंगार तथा चिन्तन का सुन्दर समन्वय मिलता है, वह उस की कला-सम्पन्नता के अतिरिक्त इस बात का सूचक भी है कि कोई लेखक या कवि केवल शून्य में जीवन व्यतीत नहीं कर सकता और न ही अपनी कल्पना के पंखों पर उड़कर अधिक देर तक किसी कृत्रिम स्वर्ग में जीवित रह सकता है।

सन् १९३५ में, जब 'मजाज़' को शायरी करते अभी केवल पाँच वर्ष ही हुए थे और भारत में अभी प्रगतिशील लेखक-संघ की नींव भी नहीं पड़ी थी; 'मजाज़' ने अपना परिचय इन शब्दों में कराया था :

खूब पहचान लो असरार[1] हूँ मैं।
जिन्से-उल्फ़त[2] का तलबगार हूँ मैं ।।
ख्वाबे-इशरत में हैं अरबावे-ख़िरद[3]।
और इक शायरे-बेदार[4] हूँ मैं ।।
ऐब जो हाफ़िज़ो-ख़य्याम में था ।
हां कुछ उसका भी गुनहगार हूँ मैं ।।
हूरो-ग़िलमां का यहाँ ज़िक्र नहीं ।
नौ-ए-इन्सां का परस्तार हूँ मैं ।।

बेशक वह 'हाफ़िज़' और 'ख़य्याम' (प्रसिद्ध फ़ारसी कवि जो रूप और मदिरा के उपासक थे) के 'ऐब' का गुनहगार है लेकिन नौ-ए-इन्साँ (मानव) की परस्तिश (उपासना) की यही भावना हर अवसर पर उसकी सहायता करती रही है। यह कोई साधारण बात नहीं है कि अपनी मस्ती तथा सौंदर्य-प्रेम में डूबे रहने तथा मौलिक रूप से रोमांसवादी शायर होते हुए भी यदि हर क़दम पर नहीं तो हर मोड़ पर वह प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहा है। मेरे इस दावे के प्रमाण में 'मजाज़' के निम्नलिखित शेर देखिये जिन्हें मैं तिथिवार प्रस्तुत कर रहा हूँ :

हदें वो खैंच रक्खी हैं हरम[5] के पासवानों ने।
कि बिन मुजरिम बने पैग़ाम भी पहुँचा नहीं सकता ।। (१६३६)

जवानी की अँधेरी रात है, ज़ुलमत[6] का तूफ़ां है।
मेरी राहों में नूरे-माहो-अंजुम[7] तक गुरेज़ां[8] है ।।
खुदा सोया हुआ है अहरमन[9] महशर-ब्दामां[10] है।
मगर मैं अपनी मंज़िल की तरफ़ बढ़ता ही जाता हूँ ।। (१६३७)

मुफ़लिसी और ये मज़ाहिर[11] हैं नज़र के सामने।
सैंकड़ों सुलताने-जाबिर[12] हैं नज़र के सामने ।।

---

१. मजाज़ का असल नाम असरारुलहक़ है २. वह वस्तु जिसे प्रेम कहते हैं ३. बुद्धिजीवी ऐश की नींद में डूबे हुए हैं ४. जागरूक कवि ५. काबे की चारदीवारी ६. अंधकार ७. चाँद-सितारों का प्रकाश ८. कन्नी कतराये हुए ९. शैतान १०. प्रलय मचा रहा है ११. दृश्य १२. अत्याचारी बादशाह

सैंकड़ों चंगेज़ो-नादिर[1] हैं नज़र के सामने।
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ[2] ? (१९३७)

ज़हने-इन्सानी[3] ने अब औहाम[4] की ज़ुलमात[5] में,
ज़िन्दगी की सख्त, तूफ़ानी, अंधेरी रात में,
कुछ नहीं तो कम से कम ख्वाबे-सहर[6] देखा तो है,
जिस तरफ़ देखा न था अब तक, उधर देखा तो है। (१९३९)

बोल री ओ धरती बोल।
राज सिंहासन डांवांडोल॥ (१९४५)

ये इंक़लाब का मुज़दा[7] है इंक़लाब नहीं।
ये आफ़ताब[8] का परतौ[9] है आफ़ताब नहीं॥ (१९४७)

सब्ज़ा-ओ-बर्गो-लाला-ओ-सर्वो-समन[10] को क्या हुआ ?
सारा चमन उदास है हाए चमन को क्या हुआ ?
कोई बताए अज़मते-ख़ाके-वतन[11] को क्या हुआ ?
कोई बताए ग़ैरते-अहले-वतन को[12] को क्या हुआ ? (१९५०)

इन शेरों में आपको जन-चेतना, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, जन-आन्दोलन में कलाकारों की ज़िम्मेदारी, स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्रता की प्रतिक्रिया इत्यादि हर चीज़ की झलकियां मिल जाएँगी। 'झलकियां' मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि 'मजाज़' कितना ही बड़ा और कैसा ही सामयिक विषय क्यों न प्रस्तुत कर रहा हो कविता के मूल्यों को कभी हाथ से नहीं जाने देता; और चूंकि उसका दृष्टिकोण मूलरूप से रोमांसवादी है, और इसलिए उसकी सौंदर्य-प्रियता हर समय उसके साथ रहती है और उसने क्लासिकल शायरी से विमुख होने की बजाय पुरानी उपमाओं, संकेतों तथा शब्दों को नये अर्थ पहनाना ही उचित समझा है, इसलिए कुछ-एक स्थानों को छोड़कर, जहाँ सामाजिक तथा राजनीतिक त्रुटियों के प्रति उत्तेजित हो वह कुछ भावुक तथा ध्वंसात्मक हो गया है, सामूहिक रूप

---

१. आक्रमणकारी बादशाह जिन्होंने भारत में लूट-मार मचाई थी
२. ऐ मेरे हृदय की व्यथा तथा ऐ मेरे हृदय के उन्माद ! मैं क्या करूँ ?
३. मानव-मस्तिष्क ४. भ्रम ५. अंधकार ६. सुबह होने का सपना
७. शुभ समाचार ८. सूरज ९. प्रतिबिम्ब १०. हरियाली, फूल, पत्ते, सर्व तथा चमेली ११. देश की मिट्टी की महानता १२. देशवासियों के आत्म-गौरव को

से वह सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति के लिए गरजता नहीं, गाता है। और मेरे लिए यही उसकी शायरी का सबसे बड़ा गुण है।

'मजाज़' के कविता-संग्रह 'आहंग' की भूमिका में फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' ने भी उसे क्रांति के ढंढोरची की बजाय क्रांति के गायक की उपाधि देते हुए बिल्कुल ठीक लिखा था कि :

" 'मजाज़' की इंक़िलाबियत आम इंक़िलाबी शायरों से मुख़्तलिफ़ है। आम इंक़िलाबी शायर इंक़िलाब के बारे में गजरते हैं, ललकारते हैं, सीना कूटते हैं, इंक़िलाब के मुतअल्लिक़ गा नहीं सकते···वे सिर्फ़ इंक़िलाब की हौलनाकी (भयानकता) देखते हैं, उसके हुस्न को नहीं पहचानते। यह इंक़िलाब का तरक़्क़ी-पसंद (प्रगतिशील) नहीं रजअ्त-पसंद (प्रतिक्रियावादी) तसव्वुर (दृष्टिकोण) है।"

" 'मजाज़' उर्दू शायरी का कीट्स (Keats) है।"

" 'मजाज़' सही अर्थों में प्रगतिशील शायर है।"

" 'मजाज़' श्रृंगार रस तथा मदिरा का शायर है।"

" 'मजाज़' नीम-पागल लेकिन निष्कपट व्यक्ति है।"

" 'मजाज़' बड़ा हाज़िरजवाब और लतीफ़ागो है।"

" 'मजाज़' शराबी है।"

" 'मजाज़' केवल शायर है।"

'मजाज़' को पढ़ने वाले, 'मजाज़' से मिलने वाले, 'मजाज़' को जानने वाले घूम-फिरकर 'मजाज़' के सम्बन्ध में इन्हीं बिन्दुओं पर पहुँचते हैं, लेकिन यही बिन्दु मिल-जुलकर एक ऐसे उज्ज्वल केन्द्र पर अवश्य मिल जाते हैं जहाँ 'मजाज़' और केवल 'मजाज़' लिखा हुआ है।

अपनी शायरी तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का मालिक यह शायर २ फ़रवरी १९०९ के दिन लखनऊ में पैदा हुआ। बी० ए० तक की शिक्षा लखनऊ, आगरा और अलीगढ़ में प्राप्त की और आगरा निवास के दिनों में उसने उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय 'फ़ानी' बदायूनी के नेतृत्व में अपनी उस प्रकाशमान शायरी का प्रारम्भ किया जिसकी चमक आगरा, अलीगढ़, दिल्ली और फिर पूरे भारत में फैल गई।

आज 'मजाज़' चुप है। काश कि उसकी यह चुप्पी तूफ़ान से पहले का उमस सिद्ध हो और वह एक बार फिर नये रंग-रूप के साथ हमारी महफ़िल पर छाने के लिए इधर आ निकले।

◇ ◇ ◇

लेकिन नहीं !

उर्दू का यह अलबेला शायर ६ दिसम्बर १९५५ को हमेशा-हमेशा के लिए वहाँ चला गया जहाँ से कोई कभी लौटकर नहीं आता।

छुप गये वो साज़े-हस्ती छेड़कर।
अब तो बस आवाज़ ही आवाज़ है॥

आवारा

शहर की रात और मैं नाशादो-नाकारा[1] फिरूँ,
जगमगाती - जागती सड़कों पे आवारा फिरूँ,
ग़ैर की बस्ती है कब तक दरबदर मारा फिरूँ ?
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

झिलमिलाते क़ुमक़ुमों की राह में ज़ंजीर सी,
रात के हाथों में दिन की मोहनी तस्वीर सी,
मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर सी[2],
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ; ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

ये रुपहली छांव ये आकाश पर तारों का जाल,
जैसे सूफ़ी का तसव्वुर जैसे आशिक़ का खयाल[3],
आह लेकिन कौन जाने, कौन समझे जी का हाल,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

रात हँस हँस के ये कहती है कि मैख़ाने में चल,
फिर किसी शहनाज़े-लालारुख़[4] के काशाने में[5] चल,
ये नहीं मुमकिन तो फिर ऐ दोस्त वीराने में चल,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

---

१. उदास, बेकार २. कवि रात तथा अपनी मनःस्थिति का सुन्दर वर्णन करते हुए कहता है : (सड़क पर) बिजली के हंडों की ज़ंजीर-सी बनी हुई है, मानो रात के हाथों में दिन की मोहनी सूरत हो, परन्तु मेरी छाती पर दहकती हुई तलवार पड़ रही है। ३. तसव्वुर तथा खयाल अर्थात् कल्पना तथा विचार। संत तथा प्रेमी के विचार तथा कल्पनाएँ सदैव उलझी हुई होती हैं। ४. लाला के फूल ऐसे मुखड़े वाली सुन्दरी ५. सुन्दर-सुसज्जित घर में

रास्ते में रुक के दम ले लूं मेरी आदत नहीं,
लौटकर वापस चला जाऊं मेरी फ़ितरत नहीं,
और कोई हम-नवा[1] मिल जाये ये क़िस्मत नहीं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

मुन्तज़िर है एक तूफ़ाने-बला[2] मेरे लिए,
अब भी जाने कितने दरवाज़े हैं वा[3] मेरे लिए,
पर मुसीबत है, मेरा अहदे-वफ़ा[4] मेरे लिए,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

जी में आता है कि अब अहदे-वफ़ा भी तोड़ दूं,
उनको पा सकता हूं मैं, ये आसरा भी तोड़ दूं,
हां मुनासिब है, ये ज़ंजीरे-हवा[5] भी तोड़ दूं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब[6],
जैसे मुल्ला का अमामा[7], जैसे बनिये की किताब,
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब[8],
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

दिल में एक शोला भड़क उट्ठा है, आख़िर क्या करूँ ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आख़िर क्या करूं ?
ज़ख्म सीने का महक उट्ठा है, आख़िर क्या करूं ?
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

---

१. साथी २. विपत्तियों का तूफ़ान ३. खुले ४. प्रेम निभाने की प्रतिज्ञा ५. हवा की ज़ंजीर (कभी न निभने वाली बात) ६. चाँद ७. पगड़ी ८. विधवा का यौवन। इस पद्य में चाँद की तुलना सभी ऐसी चीज़ों से की गई है, जो जर्जर तथा बुझी-बुझी-सी हैं क्योंकि कवि की मनःस्थिति इस समय ऐसी है कि उसे चाँद तक अप्रिय लग रहा है।

जी में आता है ये मुर्दा चाँद तारे नोच लूं,
इस किनारे नोच लूं और उस किनारे नोच लूं,
एक दो का ज़िक्र क्या, सारे के सारे नोच लूं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

मुफ़लिसी और ये मज़ाहिर[1] हैं नज़र के सामने,
सैंकड़ों सुलताने - जाबिर[2] हैं नज़र के सामने,
सैंकड़ों चंगेज़ो - नादिर हैं नज़र के सामने,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

ले के इक चंगेज़ के हाथों से ख़ंजर तोड़ दूं,
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूं,
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

बढ़ के इस इन्दरसभा का साज़ो-सामां फूंक दूं,
इसका गुलशन[3] फूंक दूं उसका शबिस्तां[4] फूंक दूं,
तख़्ते-सुल्तां[5] क्या, मैं सारा क़सरे-सुलतां[6] फूंक दूं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

---

१. दृश्य २. अत्याचारी बादशाह ३. फुलवाड़ी ४. शयनागार
५. बादशाह का तख़्त ६. बादशाह का महल

एतराफ़

अब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो !
मैंने माना कि तुम इक पैकरे-रानाई[1] हो,
चमने-दहर[2] में रूहे-चमन-आराई[3] हो,
तलअ़ते-मेहर[4] हो फ़िर्दौस[5] की बरनाई[6] हो,
बिन्ते-महताब[7] हो गर्दूं[8] से उतर आई हो,
मुझसे मिलने में अब अंदेशा-ए-रुसवाई[9] है।
मैंने खुद अपने किये की ये सज़ा पाई है॥

ख़ाक में आह मिलाई है जवानी मैंने,
शोला-ज़ारों[10] में जलाई है जवानी मैंने,
शहरे-खूबां[11] में गंवाई है जवानी मैंने,
ख्वाबगाहों में जगाई है जवानी मैंने,
हुस्न ने जब भी इनायत की नज़र डाली है।
मेरे पैमाने-मुहब्बत[12] ने सिपर[13] डाली है॥

उन दिनों मुझ पे क़यामत का जुनूं[14] तारी था,
सर पे सरशारी-ए-इशरत का[15] जुनूं तारी था,
माहपारों[16] से मुहब्बत का जुनूं तारी थी,
शहरयारों[17] से रक़ाबत[18] का जुनूं तारी थी,
बिस्तरे-मख़मलो-संजाब[19] थी दुनिया मेरी।
एक रंगीनो-हसीं ख्वाब थी दुनिया मेरी॥

---

१. लावण्यता की प्रतिमा २. संसार-रूपी वाटिका ३. वाटिका को सँवारने वाली ४. सूर्य्यमुखी ५. स्वर्ग ६. जवानी ७. चांद की बेटी ८. आकाश ९. बदनामी का भय १०. अग्नि-स्थानों ११. परिस्तान १२. प्रेम की प्रतिज्ञा १३. हार मानना १४. उन्माद १५. सुख-विलास की पूर्ति १६. चांद के टुकड़े (सुन्दरियाँ) १७. अधिकारी वर्ग १८. प्रतिद्वन्द्विता १९. संसार मेरी दृष्टि में रेशम के बिस्तर ऐसा सुखप्रद था।

संग[1] को गौहरे-नायाबो-गिरां[2] जाना था,
दश्ते-पुरख़ार को[3] फ़िर्दौसे-जवां[4] जाना था,
रेग[5] को सिलसिला-ए-आबे-रवां[6] जाना था,
आह, ये राज़ अभी मैंने कहां जाना था ?
मेरी हर फ़तह में है एक हज़ीमत[7] पिनहां[8] ।
हर मुसर्रत में है राज़े-ग़मो-हसरत[9] पिनहां ।।
क्या सुनोगी मेरी मजरूह[10] जवानी की पुकार,
मेरी फ़र्यादे-जिगरदोज़, मेरा नाला-ए-ज़ार[11],
शिद्दते-कर्ब में[12] डूबी हुई मेरी गुफ़्तार[13],
मैं कि खुद अपने मज़ाक़े-तरब-आगीं का[14] शिकार,
वो गुदाज़े-दिले-मरहूम[15] कहां से लाऊं ?
अब मैं वो जज़्बा-ए-मासूम कहां से लाऊं ?
मेरे साये से डरो तुम मेरी क़ुरबत[16] से डरो,
अपनी जुर्रत की क़सम अब मेरी जुर्रत से डरो,
तुम लताफ़त[17] हो अगर मेरी लताफ़त से डरो,
मेरे वादों से डरो मेरी मुहब्बत से डरो,
अब मैं अलताफ़ो-इनायत का[18] सज़ावार नहीं,
मैं वफ़ादार नहीं, हां मैं वफ़ादार नहीं,
अब मेरे पास तुम आई हो तो क्या आई हो ?

---

१. पत्थर २. अमूल्य मोती ३. कंटीले जंगल को ४. जवान स्वर्ग ५. रेत ६. बहते जल का सिलसिला ७. पराजय ८. निहित ९. ग़म और हसरत का भेद १०. घायल ११. दिल दुखाने वाली फ़र्याद १२. तीव्र वेदना में १३. बातचीत १४. सुन्दर स्वभाव का १५. मृत (बुझे हुए) दिल का लोच १६. सामीप्य १६. समीपता १७. कोमलता (सूक्ष्मता) १८. कृपाओं का

ग़ज़ल

ख़ातिरे-अह्ले-नज़र[1] हुस्न को मन्ज़ूर नहीं।
इसमें कुछ तेरी ख़ता दीदा-ए-महजूर[2] नहीं॥

लाख छुपते हो मगर छुप के भी मसतूर[3] नहीं।
तुम अजब चीज़ हो नज़दीक नहीं, दूर नहीं॥

जुर्रते-अर्ज़ पे[4] वो कुछ नहीं कहते लेकिन।
हर अदा से ये टपकता है कि मन्ज़ूर नहीं॥

दिल धड़क उठता है ख़ुद अपनी ही हर आहट पर।
अब क़दम मंज़िले-जानां से[5] बहुत दूर नहीं।

हाय वो वक़्त कि जब बे-पिये मदहोशी थी।
हाय ये वक़्त कि अब पी के भी मख़मूर नहीं॥

देख सकता हूं जो आंखों से वो काफ़ी है 'मजाज़'।
अह्ले-इरफ़ां की[6] नवाज़िश मुझे मन्ज़ूर नहीं॥

◇ ◇ ◇

---

१. नज़र रखने वालों (प्रेमियों) की ख़ातिर २. विछोह की मारी हुई आंखें ३. छुपे हुए ४. निवेदन के दुःसाहस पर ५. प्रेमिका के निवास-स्थान से ६. महात्मा लोगों की।

कुछ तुझको खबर है हम क्या क्या, ऐ शोरिशे-दौरां[1] भूल गये।
वो जुल्फ़े-परीशां[2] भूल गये, वो दीदा-ए-गिरयां[3] भूल गये॥

ऐ शौक़े-नज़ारा क्या कहिये, नज़रों में कोई सूरत ही नहीं।
ऐ ज़ौक़े-तसव्वुर[4] क्या कीजे, हम सूरते-जानां भूल गये॥

अब गुल से नज़र मिलती ही नहीं, अब दिल की कली खिलती ही नहीं।
ऐ फ़सले - बहारां[5] रुखसत हो, हम लुत्फ़े-बहारां भूल गये॥

सब का तो मुदावा[6] कर डाला, अपना ही मुदावा कर न सके।
सब के तो गरेबां सी डाले, अपना ही गरेबां भूल गये॥

ये अपनी वफ़ा का आलम[7] है, अब उनकी जफ़ा को क्या कहिये।
इक नश्तरे-ज़हर-आगीं[8] रख कर नज़दीके-रगे-जां[9] भूल गये॥

---

१. कालचक्र २. बिखरे केश ३. आँसू बहाने वाली आँखें ४. कल्पना करने की अभिरुचि ५. वसन्त ऋतु ६. इलाज ७. हालत ८. विष में बुझा हुआ एक नश्तर ९. गले के निकट।

फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'

मुक़ाम 'फ़ैज़' कोई राह में जँचा ही नहीं
जो कू-ए-यार से निकले तो सू-ए-दार चले

अपने कोमल तथा मृदु स्वर में हम से सरगोशियाँ करता है और उसकी सरगोशी इतनी अर्थपूर्ण होती है कि कुछ-एक शब्द कान में पड़ते ही हम उसकी पूरी बात समझ जाते हैं। ज़रा 'नक़्शे-फ़र्यादी' का पहला पन्ना उलटिये :

रात यूं दिल में तेरी खोई हुई याद आई।
जैसे वीराने में चुपके से बहार आजाए॥
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम[1]।
जैसे बीमार को बेवजह क़रार[2] आ जाए॥

प्रेमिका की याद आना कोई नया विषय नहीं है लेकिन इन सुन्दर उपमाओं और अपनी भावाभिव्यक्ति द्वारा उसने इसे बिल्कुल नया और अनूठा बना दिया है। इस एक 'क़तए' ही की नहीं, यह उसकी सारी रचनाओं की विशेषता है कि वे नई भी हैं और पुरानी भी। आधुनिक काल की उत्पत्ति हैं लेकिन अतीत की उपज हैं। नये विषय पुराने नख-शिख में और पुराने विषय नई शैली में प्रस्तुत करने की जो क्षमता 'फ़ैज़' को प्राप्त है आधुनिक काल के बहुत कम उर्दू शायर उस तक पहुँचते हैं। ज़रा 'ग़ालिब' का यह शेर देखिये :

दिया है दिल अगर उसको बशर[3] है क्या कहिये ?
हुआ रक़ीब तो हो, नामाबर है क्या कहिये ?

और अब इसी विषय को 'फ़ैज़' की कविता 'रक़ीब' के दो शेरों में देखिए :

तू ने देखी है वो पेशानी, वो रुख़्सार, वो होंट,
ज़िन्दगी जिनके तसव्वुर में मिटा दी हमने।
हमने इस इश्क़ में क्या खोया है क्या पाया है ?
जुज़[4] तेरे और को समझाऊँ तो समझा भी न सकूँ।

महबूब, आशिक़, रक़ीब तक ही सीमित नहीं, 'फ़ैज़' ने हर समय नई और पुरानी बात और नई और पुरानी शैली का बड़ा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। 'ग़ालिब' का एक और शेर देखिये :

लिखते रहे जुनूं की हिकायाते-ख़ूंचकां[5]।
हरचन्द इसमें हाथ हमारे क़लम हुए[6]॥

और 'फ़ैज़' का शेर है :

---

१. प्रभात समीर २. चैन ३. मनुष्य ४. सिवा ५. खून-भरी गाथा ६. कट गये

हम परवरिशे-लौहो-क़लम[1] करते रहेंगे।
जो दिल पे गुज़रती है रक़म करते रहेंगे[2] ॥

इन उदाहरणों से मेरा अभिप्राय 'फ़ैज़' और 'ग़ालिब' की शायरी के समान मूल्यों को दिखाना नहीं है और मेरा मन्तव्य यह भी नहीं है कि हमें समस्त प्रचीन परम्पराओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये। कुछ परम्पराएँ, चाहे वे साहित्य की हों, संस्कृति की या अन्य सामाजिक बातों की, अपना ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा करने के बाद अपनी मौत आप मर जाती हैं। उन्हें नये सिरे से जिलाने का मतलब गड़े मुर्दे उखाड़ना और ऐतिहासिक विकास से अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण देना है। लेकिन इससे भी खतरनाक क्रम यह है कि नयेपन की दौड़ में पुरानी चीज़ों को केवल इसलिये घृणित समझ लिया जाए कि वे पुरानी हैं। धरती, आकाश, चाँद-सितारे, सूरज, समुद्र, पहाड़ सब पुराने हैं लेकिन ये सब हमें पसन्द हैं और इसलिये पसन्द हैं क्योंकि प्रतिक्षण हम इन्हें बदलते रहते हैं अर्थात् इनके बारे में हमारा दृष्टिकोण बदलता रहता है। हम इनके बारे में नई बातें मालूम कर लेते हैं और इस प्रकार ये समस्त चीज़ें सदैव नई बनी रहती हैं।

यह एक बड़ी विचित्र लेकिन प्रशंसनीय वास्तविकता है कि प्राचीन और आधुनिक उर्दू शायरी की महफ़िल में खपकर भी 'फ़ैज़' अपना एक अलग व्यक्तिगत् चरित्र (Individuality) रखता है। उसने तुक, छन्द, पिंगल आदि में कोई उल्लेखनीय प्रयोग नहीं किया और न कभी अपना व्यक्तिगत चरित्र प्रकट करने के लिये स्वर्गीय 'मीरा जी' (उर्दू के प्रयोगवादी शायर) की तरह यह कहा है कि "बहुसंख्यक शायरों की नज़्में अलग हैं और मेरी नज़्में अलग; और चूंकि दुनिया की हर बात हर किसी के लिये नहीं होती, इसलिये मेरी नज़्में भी सिर्फ़ उनके लिये हैं जो उन्हें समझने के योग्य हों।" (यह व्यक्तिगत-चरित्र शायर का व्यक्तिगत-चरित्र है उसकी शायरी का नहीं।) 'फ़ैज़' की शायरी के व्यक्तिगत चरित्र का भेद निहित है उसकी शैली के लोच और सरसता में, कोमल, मृदुल, लेकिन सौ-सौ जादू जगाने वाले शब्दों के चुनाव में; 'बेख्वाब किवाड़', 'तरसी हुई निगाहें' और 'आवाज़ में सोई हुई शीरीनी' ऐसे वर्णनों और विशेषणों में, और इन समस्त गुणों के साथ गहरी से गहरी बात कहने के सुन्दर सलीक़े में।

अपनी शायरी की तरह अपने जीवन में भी किसी ने उसे ऊँचा बोलते

---

१. लोह (तलवार) और क़लम का पोषण २. लिखते रहेंगे

१९३६ में एम० ए० ओ० कालेज में लैक्चरर हो गया। १९४२ से ४७ तक भारत के सूचना विभाग में रहा और कर्नल के पद तक पहुँचा। पाकिस्तान बनने के बाद उसने अपना सैनिक-जीवन त्याग दिया और 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादक हो गया। उस काल में साहित्यिक कामों के अतिरिक्त मज़दूर आन्दोलन से भी उसका गहरा सम्बंध रहा। १९५१ में 'रावलपिंडी साज़िश केस' में गिरफ़्तार होकर लगभग पांच वर्ष के बाद रिहा हुआ और फिर से 'पाकिस्तान टाइम्ज़' का सम्पादन कर रहा है। शायरी के अलावा उसने आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं।

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मैंने समझा था कि तू है तो दरख़्शां[1] है हयात,
तेरा ग़म है तो ग़मे-दहर का[2] झगड़ा क्या है ?
तेरी सूरत से है आलम[3] में बहारों को सबात[4] ,
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है ?
तू जो मिल जाये तो तक़दीर नगूं[5] हो जाये ।

यूं न था मैंने फ़क़त[6] चाहा था यूं हो जाये,
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म[7] ,
रेशमो - अतलसो - कमख़्वाब में बुनवाये हुए,
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ-बाज़ार में जिस्म,
ख़ाक में लिथड़े हुए, खून में नहलाये हुए,
जिस्म निकले हुए अमराज़ के[8] तन्नूरों से,
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से,
लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?
और भी दुख हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

---

१. दीप्तिमान २. संसार के ग़म का ३. संसार ४. स्थायित्व
५. बदल जाये ६. केवल ७. अंधकारमय जादू ८. रोगों के

तनहाई

फिर कोई आया दिले-ज़ार ! नहीं कोई नहीं,
राहरौ[1] होगा, कहीं और चला जायेगा,
टल चुकी रात, बिखरने लगा तारों का ग़ुबार,
लड़खड़ाने लगे ऐवानों में[2] ख़्वाबीदा चिराग़[3] ,
सो गई रास्ता तक-तक के हर इक राहगुज़ार,
अजनबी खाक ने धुँदला दिये क़दमों के सुराग़,
गुल करो शम्मएं,बढ़ा दो मै-ओ-मीना-ओ-अयाग़[4],
अपने बेख़्वाब किवाड़ों को मुक़फ़्फ़ल कर लो[5],
अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं आयेगा।

◇ ◇ ◇

१. पथिक २. भवनों में ३. सोये हुए चिराग ४. शराब, सुराही, प्याला ५. ताले लगा लो

चन्द रोज़ और मेरी जान !

चन्द रोज़ और मेरी जान ! फ़क़त चन्द ही रोज़ !
ज़ुल्म की छांव में दम लेने पे मजबूर हैं हम,
और कुछ देर सितम सह लें, तड़प लें, रो लें,
अपने अजदाद[1] की मीरास है माज़ूर[2] हैं हम,
जिस्म पर क़ैद है, जज़बात पे ज़ंजीरें हैं,
फ़िक्र[3] महबूस[4] है, गुफ़्तार[5] पे ताज़ीरें[6] हैं,
अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते हैं,
ज़िन्दगी क्या किसी मुफ़लिस की क़बा[7] है जिसमें,
हर घड़ी दर्द के पेवंद लगे जाते हैं,
लेकिन इस ज़ुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं,
इक ज़रा सब्र कि फ़र्य्याद के दिन थोड़े हैं,
अर्सा-ए-दहर की[8] झुलसी हुई वीरानी में,
हम को रहना है, मगर यूंही तो नहीं रहना है,
अजनबी हाथों का बेनाम गिरांबार[9] सितम[10],
आज सहना है हमेशा तो नहीं सहना है,
ये तेरे हुस्न से लिपटी हुई आलाम की[11] गर्द,
अपनी दो रोज़ा जवानी की शिकस्तों का शुमार,
चाँदनी रातों का बेकार दहकता हुआ दर्द,
दिल की बेसूद तड़प, जिस्म की मायूस पुकार,
चन्द रोज़ और मेरी जान ! फ़क़त चन्द ही रोज़ !

---

१. पितृगण २. विवश ३. सोच ४. बन्दी ५. बोलने पर
६. दण्ड ७. चुग़ा ८. संसार-क्षेत्र की ९. बोझल (असह्य)
१०. अत्याचार ११. दुखों की

मौज़ू-ए-सुख़न*

गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा, सुलगती हुई शाम,
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब[1] से रात,
और—मुश्ताक़[2] निगाहों की सुनी जायेगी,
और—उन हाथों से मस होंगे ये तरसे हुए हात।

उन का आंचल है, कि रुख़सार, कि पैराहन[3] है?
कुछ तो है जिस से हुई जाती है चिलमन रंगीं,
जाने उस ज़ुल्फ़ की मौहूम[4] घनी छांओं में,
टमटमाता है वो आवेज़ा अभी तक कि नहीं?

आज फिर हुस्ने-दिलआरा की वही धज होगी,
वही ख़्वाबीदा[5] सी आँखें, वही काजल की लकीर,
रंगे-रुख़सार पे हल्का-सा वो ग़ाज़े का गुबार,
संदली हाथ पे धुंदली-सी हिना[6] की तहरीर[7]।

अपने अफ़कार[8] की अशआर की दुनिया है यही,
जाने-मज़मूं[9] है यही, शाहिदे-मानी[10] है यही!

आज तक सुर्ख़ो-सियाह सदियों के साये के तले,
आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है?
मौत और ज़ीस्त[11] की रोज़ाना सफ़-आराई[12] में,
हम पे क्या गुज़रेगी, अजदाद[13] पे क्या गुज़री है?

---

* काव्य का विषय

१. चाँद का चश्मा २. उत्सुक ३. लिबास ४. कल्पित ५. निद्रित ६. महंदी ७. लिखावट, चित्रण ८. चिन्तन ९. विषय की जान १०. अर्थों की साक्षी ११. जीवन १२. मुक़ाबले १३. पितृगण

इन दमकते हुए शहरों की फ़रावां[1] मखलूक़[2] ,
क्यों फ़क़त मरने की हसरत में जिया करती है ?
ये हसीं खेत, फटा पड़ता है जोबन जिन का,
किस लिए इन में फ़क़त भूख उगा करती है ?
ये हर इक सिम्त[3] पुर-असरार[4] कड़ी दीवारें,
जल बुझे जिन में हज़ारों की जवानी के चिराग़,
ये हर इक गाम[5] पे उन ख्वाबों की मक़तलगाहें[6] ,
जिन के परतौ[7] से चिराग़ां[8] हैं हज़ारों के दिमाग़,
ये भी हैं, ऐसे कई और भी मज़मूं होंगे,
लेकिन उस शोख़ के आहिस्ता से खुलते हुए होंट,
हाए उस जिस्म के कमबख़्त दिलावेज़[9] खतूत[10],
आप ही कहिये कहीं ऐसे भी अफ़सूं[11] होंगे ?
अपना मौज़ू-ए-सुख़न इन के सिवा और नहीं,
तबअ्-ए-शायर का[12] वतन इनके सिवा और नहीं !

---

१. असंख्य २. जनता ३. ओर ४. भेदपूर्ण ५. क़दम ६. क़त्ल-घर ७. प्रतिविम्ब ८. प्रकाशमान ९. आकर्षक १०. रेखायें ११. जादू १२. कवि की प्रकृति का

ग़ज़लें

दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार के।
वो जा रहा है कोई शबे-ग़म गुज़ार के॥

वीरां है मैकदा, खुमो-साग़र उदास हैं।
तुम क्या गये कि रूठ गये दिन बहार के॥

इक फ़ुसर्ते-गुनाह[1] मिली वो भी चार दिन।
देखें हैं हम ने हौसले परवरदिगार[2] के॥

दुनिया ने तेरी याद से बेगाना कर दिया।
तुझ से भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के॥

भूले से मुस्करा तो दिये थे वो आज 'फ़ैज़'।
मत पूछ वलवले दिले-नाकर्दाकार[3] के॥

◇ ◇ ◇

रंग पैराहन[4] का, खुशबू ज़ुल्फ़ लहराने का नाम।
मौसमे-गुल[5] है, तुम्हारे बाम पर आने का नाम॥

दोस्तो, उस चश्मो-लब की कुछ कहो जिसके वग़ैर।
गुलिस्तां की बात रंगीं है, न मैख़ाने का नाम॥

---

१. पाप करने का अवकाश २. भगवान् ३. जिस दिल ने गुनाह नहीं किया ४. लिबास ५. वसन्त ऋतु

फिर नज़र में फूल महके, दिल में फिर शम्मएं जलीं।
फिर तसव्वुर[1] ने लिया उस बज़्म[2] में जाने का नाम ॥
मोहतसिब[3] की खैर, ऊंचा है उसी के फ़ैज़[4] से।
रिंद का, साक़ी का, मै का, ख़ुम का पैमाने का नाम॥
हम से कहते हैं चमन वाले, ग़रीबाने-चमन[6]।
तुम कोई अच्छा-सा रख लो अपने वीराने का नाम ॥
'फ़ैज़' उनको है तक़ाज़ा-ए-वफ़ा[7] हम से जिन्हें।
आशना[8] के नाम से प्यारा है, बेगाने का नाम ॥

---

१. कल्पना २. महफ़िल ३. कोतवाल ४. कृपा (उदारता) ५. शराब का मटका ६. चमन (देश) से निकाले हुए ७. प्रेम निभाने की मांग ८. परिचित

नून० मीम० 'राशिद'

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले
ज़िन्दगी से भागकर आया हूँ मैं

परिचय

कितनी विचित्र बात है कि 'राशिद' की शायरी में एशिया और एशियाई देशों का काफ़ी से अधिक वर्णन होने पर भी उसकी शायरी--एशियाई नहीं, यूरोपियन है। और शायद इसीलिए १९४१ में उसके कविता-संग्रह 'मावरा' की भूमिका लिखते हुए कृष्णचन्द्र ने कहा था कि 'राशिद' ने अपनी शायरी का प्रारम्भ वहां से किया है जहाँ बहुत से शायर अपनी शायरी समाप्त कर देते हैं।

आज चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद कृष्णचन्द्र के इस वाक्य को दोहराने की आवश्यकता बाक़ी नहीं रह जाती क्योंकि नई पीढ़ी के बहुत से उर्दू शायर 'राशिद' की डगर पर चलते-चलते कहीं से कहीं पहुँच चुके हैं, लेकिन जहां तक मुक्तछन्द (Free verse) टैक्नीक का सम्बन्ध है 'मावरा' (दूसरा संस्करण) की कुल ४२ नज़्मों में से केवल २६ निर्बंध नज़्मों द्वारा (बल्कि मेरी तुच्छ राय में तो केवल 'दरीचे के क़रीब', 'इन्तक़ाम', 'बेकरां रात के सन्नाटे में' और 'पहली किरन' ऐसी नज़्मों द्वारा) वह सदैव उर्दू की 'प्रयोगवादी' शायरी का प्रवर्तक तथा अगुवा बना रहेगा।

'राशिद' से पहले 'इस्माइल' मेरठी और तसद्दुक हुसैन 'खालिद' ने निर्बंध तथा अतुकान्त छन्द के लिये भूमि समतल करने की कोशिशें की थीं, लेकिन उनकी कोशिशें अधूरी और असफल रहीं और यद्यपि उर्दू की नाज़ुक-मिज़ाज ग़ज़ल को 'हाली' और 'अकबर' इलाहाबादी ने काफ़ी सख्तजान बना दिया था और 'इक़बाल' और 'जोश' ने तो ग़ज़ल पर नज़्म को प्रधानता देकर उर्दू

शायरी में एक नई महानता और विशालता उत्पन्न कर दी थी लेकिन पिंगल तथा शैली में चौंका देने वाले प्रयोग का सेहरा 'राशिद' ही के सिर रहता है।

उर्दू शायरी में इस अपरिचित तथा बाहरी रूप को परिचित कराने से 'राशिद' का ध्येय उसके अपने कथनानुसार केवल 'नवीनता' नहीं था बल्कि :

"यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि न केवल एक जाति की मानसिक प्रवृत्तियां दूसरी जाति की मानसिक प्रवृत्तियों से भिन्न होती हैं बल्कि एक ही जाति विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रस्तुत करती है। अतः एक काल में जो शैली या काव्यधारा या जीवन-दर्शन पसन्द किया जाता रहा हो, आवश्यक नहीं कि किसी अन्य काल में भी वह इतनी ही सर्वप्रियता प्राप्त कर सके। समय के ज्वारभाटे से जातियों के सोच-विचार, रूप-उद्भावना तथा नैतिकता के नियमों में आप ही आप अन्तर पड़ता रहा है। यह परिवर्तन जातियों की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार उन की दिनचर्या पर। इन परिस्थितियों में कभी-कभी जाति अपने साहित्यकारों से विभिन्न प्रकार की कृतियों की आशा करने लगती है और जाति की इस मौन-मांग से साहित्य में परिवर्तन होने लगते हैं। लेकिन जब कोई जाति अपनी मानसिक हीनता के कारण यह माँग करने का साहस नहीं रखती तो कोई साहित्य-रत्न स्वयं ही प्रकट होकर इस गतिरोध को छिन्न-भिन्न कर देता है।

उर्दू शायरी का यह 'साहित्य-रत्न' जिसने स्वयं ही प्रकट होकर इस 'गतिरोध' को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया और सफल रहा, पहली अगस्त १९१० को पंजाब में पैदा हुआ और जब उसने होश संभाला तो प्रथम महायुद्ध के बाद भारत के सम्मुख नाना प्रकार की परिस्थितियाँ थीं। शताब्दियों की निद्रा तथा नैराश्य के बाद पराधीनता तथा अन्याय के विरुद्ध घोर घृणा जाग उठी थी और धर्म, नैतिकता तथा अंध-विश्वासों की गिरहें खुल रही थीं। अतएव मध्यवर्ग के निराशाग्रस्त युवकों की भाँति पंजाब के घुटे-घुटे वातावरण और रूढ़ि-परम्पराओं के पाले हुए, सामाजिक बंधनों में बेतरह जकड़े हुए, और काम के भूत से डराये तथा मनोदमन की शिक्षा पाये हुए युवक नूर मोहम्मद 'राशिद' को इन परिवर्तनशील परिस्थितियों में ज़िन्दगी 'एक ज़हर भरा जाम' नज़र आने लगी और ज़िन्दगी की हमाहमी से भागकर उसने काम की ठंडी छाया में सो जाना चाहा। विदेशी शासन-कर्ताओं के प्रति मन-मस्तिष्क में घृणा

का भाव उत्पन्न हुआ तो उसे कोई स्वस्थ रूप देने की बजाय उसने फ़िरंगी औरत के शरीर से खेलकर उसे फ़िरंगी जाति से 'इंतक़ाम' लेने का नाम दिया। औरतों के शरीरों से बार-बार लिपटने के बावजूद जब उसकी तृप्ति न हुई और अनगिनत चुम्बनों की मिठास भी उसे सन्तुष्ट न कर सकी तो उसे संसार की प्रत्येक वस्तु में कामवासना का पहलू नज़र आने लगा, यहाँ तक कि अपनी नज़्म 'अजनबी औरत' की नायिका भी उसे अपनी ही तरह कामग्रस्त नज़र आई, जो रोमांस की तलाश में हज़ारों मील दूर एशिया में आती है। और इस प्रकार उसकी ये मानसिक उलझनें इतनी कटु हो गईं कि वह 'खुदकशी' पर उतर आया।

नैराश्य, उद्वेग तथा अवसन्नता की ये घातक प्रवृत्तियाँ टी० एस० इलियट ऐसे पश्चिम के पतनशील कवियों की विशेषतायें हैं और जिस प्रकार काव्य मूल्यों से हटी होने के कारण इनके वर्णन के लिए इलियट को फ्रांस से निर्बन्ध तथा अतुकांत छन्द लेने पड़े थे, उसी प्रकार इस छन्द को उपयुक्त देख 'राशिद' ने इसे अंग्रेज़ी से उर्दू में खपाया। इसमें संदेह नहीं है कि किसी विशेष छंद के अनुसार शेर गढ़ लेना काफ़ी आसान काम है लेकिन विचारों की गति के अनुसार छंद का निर्माण करना, विचारों के उतार-चढ़ाव के अनुसार पंक्तियों की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित करना, ठीक स्थान पर तुक बिठाना और इन सब के सुन्दर समन्वय से एक सच्चा छंदबद्ध प्रभाव उत्पन्न करना इतना कठिन है कि यह हर किसी के बस की बात नहीं। इसके लिए 'राशिद' ऐसे कलाकार ही की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक पंक्ति बल्कि प्रत्येक शब्द को नगीने की तरह जड़ सके।

लेकिन मनःस्थिति को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने के लिए पुरानी शैली के खड़खड़ाते राग को किसी नई लय में बदल देने से ही कोई शायर महान् शायर नहीं बन सकता। महान् शायरी रूप तथा विषय-वस्तु के संतुलन के साथ-साथ रूप की सुन्दरता तथा विषय-वस्तु के स्वास्थ्य की पाबंद होती है। 'राशिद' के यहाँ एक चीज़ कमाल की सीमा पर है लेकिन दूसरी नहीं के बराबर।

आल-इंडिया रेडियो दिल्ली के बाद आजकल 'राशिद' पाकिस्तान रेडियो पेशावर में है और एक कविता-संग्रह देने के बाद लगभग सो गया है।

इंतक़ाम

उसका चेहरा, उसके ख़द्दोख़ाल[1] याद आते नहीं,
इक शबिस्ताँ[2] याद है,
इक बरहना[3] जिस्म आतिशदां के पास,
फ़र्श पर क़ालीन, क़ालीनों पे सेज,
धात और पत्थर के बुत,
गोशा-ए-दीवार में[4] हंसते हुए,
और आतिशदां में अंगारों का शोर,
उन बुतों की बेहिसी पर ख़श्मगीं[5] !
उजली-उजली ऊंची दीवारों पे अक्स[6] ,
उन फ़िरंगी हाकिमों की यादगार
जिनकी तलवारों ने रक्खा था यहां,
संगे-बुनियादे-फ़िरंग[7] ।

उसका चेहरा उसके ख़द्दोख़ाल याद आते नहीं,
एक बरहना जिस्म अब तक याद है,
अजनबी औरत का जिस्म,
मेरे 'होंटों' ने लिया था रात भर,
जिससे अरबाबे-वतन की[8] बेबसी का इंतक़ाम,
वो बरहना जिस्म अब तक याद है ।

---

१. नैन-नक्श २. शयनागार ३. नग्न ४. दीवार के कोने में ५. क्रोधित ६. प्रतिबिम्ब ७. अंग्रेज़ी राज्य की नींव-शिला ८. देशवासियों की

रक़्स

ऐ मेरी हम-रक़्स[1] मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी से भाग कर आया हूं मैं।
डर से लर्ज़ां[2] हूं कहीं ऐसा न हो,
रक़्सगह[3] के चोर-दरवाज़े से आकर ज़िन्दगी,
ढूंड ले मुझको, निशां पा ले मेरा,
और जुर्मे-ऐश करते देख ले !

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले,
रक़्स की ये गर्दिशें,
एक मुबहम[4] आसिया[5] के दौर में,
कैसी सरगर्मी से ग़म को रौंदता जाता हूं मैं।
जी में कहता हूं कि हां,
रक़्सगह में ज़िन्दगी के झांकने से पेशतर[6],
कुलफ़तों का[7] संगरेज़ा[8] एक भी रहने न पाये।

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी मेरे लिए,
एक ख़ूनी भेड़िये से कम नहीं,
ऐ हसीं-ओ-अजनबी औरत ! उसी के डर से मैं,
हो रहा हूं लम्हा-लम्हा और भी तेरे क़रीब,
जानता हूं तू मेरी जां भी नहीं,
तुझ से मिलने का फिर इमकां[9] भी नहीं,

---

१. नृत्य की साथी २. कम्पित ३. नाचघर ४. अस्पष्ट ५. चक्की
६. पूर्व ७. दुख-पीड़ाओं का ८. रोड़ा ९. संभावना

तू मेरी उन आरज़ूओं की मगर तमसील[1] है,
जो रहीं मुझसे गुरेज़ां[2] आज तक।

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले!
अहदे-पारीना[3] का मैं इन्सां नहीं,
बन्दगी से इस दरो-दीवार की,
हो चुकी हैं ख़्वाहिशें बेसाज़ो-रंगो-नातवां[4],
जिस्म से तेरे लिपट सकता तो हूं,
ज़िन्दगी पर मैं झपट सकता नहीं!
इसलिए अब थाम ले,
ऐ हसीनो-अजनबी औरत! मुझे अब थाम ले।

---

१. आकार २. दूर (पहलू बचाए हुए) ३. प्राचीन युग ४. राग-रंग-रहित तथा दुर्बल

रक़्स

ऐ मेरी हम-रक़्स[1] मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी से भाग कर आया हूं मैं।
डर से लर्ज़ां[2] हूं कहीं ऐसा न हो,
रक़्सगह[3] के चोर-दरवाज़े से आकर ज़िन्दगी,
ढूंड ले मुझको, निशां पा ले मेरा,
और जुर्म-ऐश करते देख ले !

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले,
रक़्स की ये गर्दिशें,
एक मुबहम[4] आसिया[5] के दौर में,
कैसी सरगर्मी से ग़म को रौंदता जाता हूं मैं।
जी में कहता हूं कि हां,
रक़्सगह में ज़िन्दगी के झांकने से पेशतर[6],
कुलफ़तों का[7] संगरेज़ा[8] एक भी रहने न पाये।

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले !
ज़िन्दगी मेरे लिए,
एक ख़ूनी भेड़िये से कम नहीं,
ऐ हसीं-ओ-अजनबी औरत ! उसी के डर से मैं,
हो रहा हूं लम्हा-लम्हा और भी तेरे क़रीब,
जानता हूं तू मेरी जां भी नहीं,
तुझ से मिलने का फिर इमकां[9] भी नहीं,

---

१. नृत्य की साथी २. कम्पित ३. नाचघर ४. अस्पष्ट ५. चक्की ६. पूर्व ७. दुख-पीड़ाओं का ८. रोड़ा ९. संभावना

तू मेरी उन आरज़ूओं की मगर तमसील[1] है,
जो रहीं मुझसे गुरेज़ां[2] आज तक।

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले !
अह्दे-पारीना[3] का मैं इन्सां नहीं,
बन्दगी से इस दरो-दीवार की,
हो चुकी हैं ख़्वाहिशें बेसाज़ो-रंगो-नातवां[4] ,
जिस्म से तेरे लिपट सकता तो हूं,
ज़िन्दगी पर मैं झपट सकता नहीं !
इसलिए अब थाम ले,
ऐ हसीनो-अजनबी औरत ! मुझे अब थाम ले।

---

१. आकार २. दूर (पहलू बचाए हुए) ३. प्राचीन युग ४. राग-रंग-रहित तथा दुर्बल

दरीचे के क़रीब

जाग ऐ शम्म-ए-शबिस्ताने-विसाल[1] ,
मख़मले-ख़्वाब के इस फ़र्शे-तरबनाक[2] से जाग !
लज़्ज़ते-शब से[3] तेरा जिस्म अभी चूर सही,
आ मेरी जान मेरे पास दरीचे के क़रीब,
देख किस प्यार से अनवारे-सहर[4] चूमते हैं,
मस्जिदे-शहर के मीनारों को,
जिनकी रफ़अ़त[5] से मुझे,
अपनी बरसों की तमन्ना का ख़याल आता है ।

सीमगूं[6] हाथों से ऐ जान ज़रा,
खोल मैं-रंग[7] जुनूंखेज़[8] आंखें,
इसी मीनार को देख,
सुबह के नूर से शादाब सही,
इसी मीनार के साये तले कुछ याद भी है ।
अपने बेकार ख़ुदा के मानिंद,
ऊंघता है किसी तारीक निहांख़ाने[9] में,
एक इफ़लास[10] का मारा हुआ मुल्ला-ए-हज़ीं[11],
एक इफ़रियत[12]—उदास,
तीन सौ साल की ज़िल्लत का निशां,
ऐसी ज़िल्लत कि नहीं जिसका मुदावा कोई ।

---

१. मिलन के शयनगृह के दीपक (प्रेमिका) २. आनन्द-दायक फ़र्श ३. रात के आनन्दों से ४. ऊषा की किरणें ५. ऊँचाई ६. चाँदी ऐसे (गोरे) ७. शराबी ८. उन्मादपूर्ण ९. अंधकारपूर्ण कोठरी १०. निर्धनता ११. ग़मगीन मुल्ला १२. भूत

देख बाज़ार में लोगों का हुजूम,
बेपनाह सेल[1] की मानिंद रवां,
जैसे जन्नात[2] बियाबानों में,
मशअ़लें लेके सरे-शाम निकल आते हैं।
इनमें हर शख़्श के सीने के किसी गोशे में,
एक दुल्हन सी बनी बैठी है,
टमटमाती हुई नन्ही सी ख़ुदी[3] की क़ंदील[4]।
लेकिन इतनी भी तवानाई[5] नहीं,
बढ़के इनमें से कोई शोला-ए-जव्वाला बने,
इनमें मुफ़लिस भी हैं बीमार भी हैं,
ज़ेरे-अफ़लाक[6] मगर जुल्म सहे जाते हैं।

एक बूढ़ा सा थकामांदा सा रहवार[7] हूं मैं
भूख का शाहसवार,
सख़्तगीर और तनोमंद भी है।
मैं भी इस शहर के लोगों की तरह,
हर शबे-ऐश गुज़र जाने पर,
बहरे-जमअ़ ख़सो-ख़ाशाक निकल जाता हूं[8],
चर्ख़े-गर्द है[9] जहां,
शाम को फिर उसी काशाने[10] में लौट आता हूं।
बेबसी मेरी ज़रा देख कि मैं,
मस्जिदे-शहर के मीनारों को,
इस दरीचे में से फिर झांकता हूं,
जब इन्हें आलमे-रुख़सत[11] में शफ़क़[12] चूमती है।

---

१. सेलाव २. भूत ३. स्वाभिमान ४. दीपक ५. वल ६. आकाश की छत्र-छाया में ७. घोड़ा ८. घोंसला वनाने के निमित्त तिनके इकट्ठे करने के लिए ९. घूमने वाला आकाश १०. घर ११. विदा होते समय १२. संध्या की लालिमा

मैं उसे वाक़िफ़े-उलफ़त न करूं !

सोचता हूं कि बहुत सादा-ओ-मासूम है वो,
मैं अभी उस को शनासा-ए-मुहब्बत[1] न करूं,
रूह को उस की असीरे-ग़मे-उलफ़त[2] न करूं,
उस को रुसवा न करूं वक़्फ़े-मुसीबत[3] न करूं।

सोचता हूं कि अभी रंज से आज़ाद है वो,
वाक़िफ़े - दर्द नहीं, ख़ूगरे - आलाम[4] नहीं,
सहरे - ऐश[5] में उसकी असरे - शाम[6] नहीं,
ज़िन्दगी उसके लिए ज़हर भरा जाम नहीं।

सोचता हूं कि मुहब्बत है जवानी की ख़िज़ां,
उसने देखा नहीं दुनियां में बहारों के सिवा,
नकहतो - नूर[7] से लबरेज़[8] नज़ारों के सिवा,
सब्ज़ाज़ारों के[9] सिवा और सितारों के सिवा।

सोचता हूं कि ग़मे-दिल न सुनाऊं उस को,
सामने उसके कभी राज़ को उरियां[10] न करूं,
ख़लिशे-दिल[11] से उसे दस्तो-गरेबां न करूं[12],
उसके जज़बात को मैं शोला-बदामां[13] न करूं।

---

१. प्रेम से परिचित २. प्रेम के दुखों में बन्दी ३. मुसीबतों के हवाले ४. दुखों-पीड़ाओं की अभ्यस्त ५. ऐश की सुबह ६. शाम का समय ७. सुगन्धि तथा प्रकाश ८. परिपूर्ण ९. फुलवाड़ियों के १०. प्रकट ११. हृदय की कसक १२. जूझने न दूं १३. शोले की तरह भड़कना

सोचता हूँ कि जला देगी मुहब्बत उसको,
वो मुहब्बत की भला ताब कहां लायेगी ?
खुद तो वो आतिशे-जज़बात में[1] जल जायेगी,
और दुनिया को इस अंजाम पे तड़पायेगी।

सोचता हूं कि बहुत सादा-ओ-मासूम है वो,
—मैं उसे वाक़िफ़े - उलफ़त न करूं।

---

१. जज़वात की आग में

बेकरां रात के सन्नाटे में !

तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरां[1] रात के सन्नाटे में,
जज़्बा-ए-शौक़ से हो जाते हैं ऐज़ा[2] मदहोश।
और लज़्ज़त की गिरांबारी[3] से,
ज़हन बन जाता है दलदल किसी वीराने की।
और कहीं उसके क़रीब,
नींद, आग़ाज़े-ज़मिस्तां[4] के परिंदे की तरह,
ख़ौफ़ दिल में किसी मौहूम[5] शिकारी का लिये,
अपने पर तोलती है, चीख़ती है।
बेकरां रात के सन्नाटे में !
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
आरज़ूएँ तेरे सीने के कुहिस्तानों में[6],
ज़ुल्म सहते हुए हब्शी की तरह रेंगती हैं !
एक लमहे के लिए दिल में ख़याल आता है,
तू मेरी जान नहीं,
बल्कि साहिल के किसी शहर की दोशीज़ा[7] है।
और तेरे मुल्क के दुश्मन का सिपाही हूं मैं,
एक मुद्दत से जिसे ऐसी कोई शब न मिली,
कि ज़रा रूह को अपनी वो सुबकबार[8] करे !
बेपनाह ऐश के हेजान[9] का अरमां लेकर,
अपने दस्ते से कई रोज़ से मफ़रूर हूं मैं !
ये मेरे दिल में ख़याल आता है,
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरां रात के सन्नाटे में !

---

१. अथाह २. अंग ३. बोझ ४. शरद ऋतु की शुरूआत ५. कल्पित
६. पहाड़ी स्थानों में ७. सुकुमारी ८. हल्का ९. आवेग
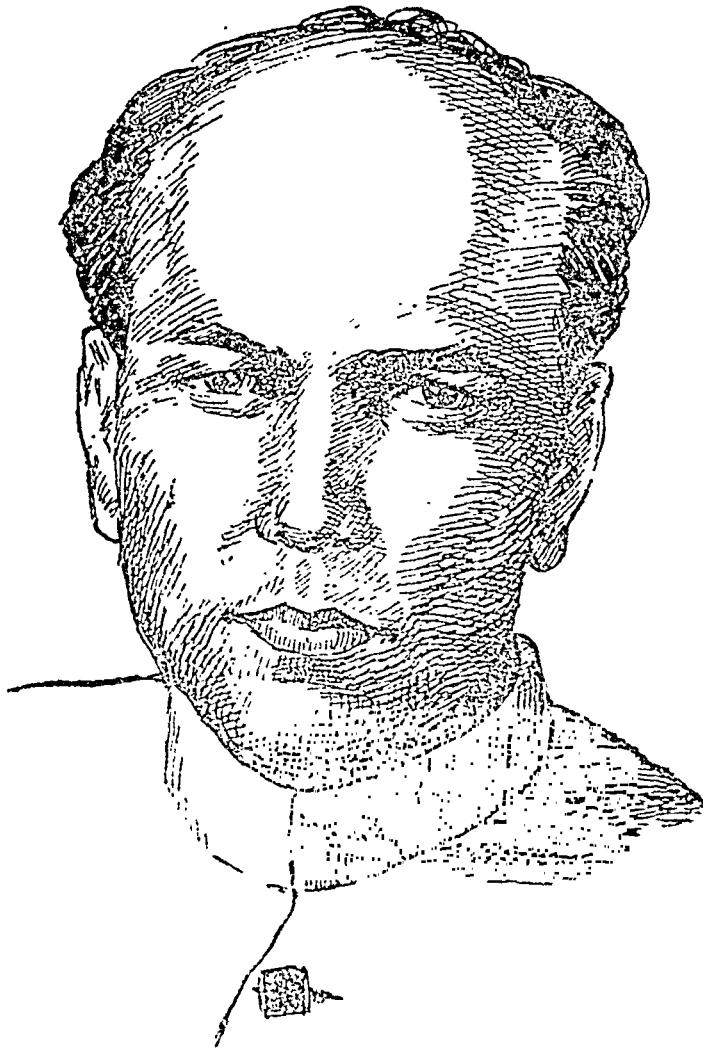
मुईन अहसन जज़्बी

इक तरफ़ लब तक नहीं खुलते हैं फ़र्ते-यास से
इक तरफ़ 'जज़्बी' मुझे शौक़े-ग़ज़ल-ख़्वानी भी है

केवल अनुचित नज़र आयेंगे बल्कि निराधार भी। हमें उसके यहां अन्तर्गति और कला का एक ऐसा सुन्दर समावेश मिलेगा जो उर्दू की नई पीढ़ी के बहुत कम शायरों के हिस्से में आया है और जिसके लिए एक दो दिन की नहीं वर्षों की तपस्या चाहिये। काव्य-रूप के साथ उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार (Friendly terms with the form), अतीत की उत्तम परम्पराओं को अपने सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्धित देखने का बोध और जीवन की परगत् प्रेरणाओं की भट्टी में से तप कर निकला हुआ आत्मानुभव और आत्मगत अनुभूतियां उसकी शायरी में इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उसका हर शेर हमें रुक जाने और सोचने पर विवश कर देता है और मेरे खयाल से यह दलील उसके एक सफल और बड़ा शायर होने के लिए काफ़ी है।

मुईन अहसन 'जज़्बी' का जन्म २१ अगस्त १६१२ को ज़िला आज़मगढ़ के एक गांव में हुआ। दादा डाक्टर अब्दुल ग़फ़ुर स्वयं शायर थे और 'मतीर' उपनाम से ग़ज़लें कहते थे। फूफी खातून अकरम उर्दू के प्रसिद्ध लेखक 'राज़िक़-उलखैरी' की पत्नी थी और स्वयं भी निबन्ध, कहानियाँ आदि लिखती थी। इस प्रकार बचपन में ही घर के साहित्यिक वातावरण ने 'जज़्बी' पर अपना प्रभाव डाला और नौ-दस वर्ष की अल्प आयु में ही उसने तुक-बन्दी शुरू कर दी और सोलह वर्ष की आयु में तो बाक़ायदा ग़ज़लें कहने लगा।

'जज़्बी' का जीवन असह्य परिस्थितियों की एक लम्बी दास्तान है। उसने अपने जीवन में ऐसे दिन भी देखे जब उसे सुबह की चाय तो किसी तरह प्राप्त हो गई लेकिन दोपहर के खाने के लिए उसे छः-छः मील पैदल चलकर किसी मित्र-मुलाक़ाती का मुँह देखना पड़ा और कभी-कभी तो फ़ाके तक की नौबत आई। ट्यूशनें कर-करके और पेट पर पत्थर बाँध कर उसने एम० ए० किया और नौकरी के सिलसिले में बरसों एक ज़िले से दूसरे ज़िले में, और एक शहर से दूसरे शहर में मारा-मारा फिरता रहा। प्रत्यक्ष है कि उसकी शायरी इस प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती थी और वह जो कुछ समालोचक उसे निराशावादी शायर सिद्ध करने के लिए उसके निम्न प्रकार के शेरों का उदाहरण देते हैं :

मरने की दुआयें क्यों मांगूं, जीने की तमन्ना कौन करे ?
ये दुनिया हो या वो दुनिया, अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे ?

जब कश्ती साबितो-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी ?
अब ऐसी शिकस्ता[1] कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?
दुनिया ने हमें छोड़ा 'जज़्बी', हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को ?
दुनिया को समझकर बैठे हैं, अब 'दुनिया-दुनिया' कौन करे ?

—तो एक तो वे शायर के पाँव पर खड़े होकर आलोचना करने का कष्ट नहीं करते और दूसरे उसके उसी काल के निम्न प्रकार के शेरों पर आँखें मींच लेते हैं :

किसी से हाले-दिले-बेक़रार कह न सका।
कि चश्मे-यास[2] में आँसू भी आ के बह न सका॥
न आये मौत खुदाया तबाह-हाली में।
ये नाम होगा ग़मे-रोज़गार[3] सह न सका॥

यों तो 'जज़्बी' १६२६ से शेर कह रहा था और :

अल्लाह री बेखुदी कि चला जा रहा हूँ मैं।
मंज़िल को देखता हुआ, कुछ सोचता हुआ॥

और

हुस्न हूँ मैं कि इश्क़ की तस्वीर।
बेखुदी ! तुझ से पूछता हूँ मैं॥

ऐसे सुन्दर शेर कह रहा था, लेकिन १६३४ तक उच्चकोटि के पत्रों के सम्पादक धन्यवाद सहित उसकी ग़ज़लें लौटाते रहे। फिर १६३४ में जब किसी प्रकार 'हुमायूँ' (प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका—लाहौर) में उसकी वही—'मरने की दुआयें क्यों मांगूँ' वाली ग़ज़ल प्रकाशित हो गई तो एकदम पाठक और लेखक सभी चौंक उठे और उस गज़ल के बाद से उसकी गणना आधुनिक काल के प्रथम श्रेणी के उर्दू शायरों में होने लगी। उस ज़माने में उसने 'एक दोस्त से' और 'ऐ दोस्त' ऐसी सुन्दर नज़्में भी लिखीं, लेकिन सही मानों में उसकी प्रगतिशीलता का प्रारम्भ १६३७ में हुआ। उसके करुणा-भाव में सर्वव्यापकता उत्पन्न हुई और उसने 'फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में' (इस संकलन में शामिल है) जैसी अर्थपूर्ण और जीवन्त नज़्म लिखी। और उसकी उस काल की ग़ज़लों में भी नई दिशायें और नई अदायें मिलने लगीं। दो शेर देखिये :

---

१. टूटी-फूटी २. शोक-पूर्ण आँख ३. संसार के ग़म।

फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में

फ़ितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारों में ?
है कौन-सी रअ़नाई[1] आख़िर, इन फूलों में, इन ख़ारों में[2] ?

वो ख्वाह[3] सुलगते हों शब भर, वो ख्वाह चमकते हों शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारों में ?

इस चांद की ठंडी किरनों से मुझको तो सुकूं[4] होता ही नहीं,
मुझको तो जुनूं[5] होता ही नहीं, जब फिरता हूं गुलज़ारों में।

ये चुप-चुप नर्गिस की कलियां, क्या जाने कैसी कलियां हैं ?
जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारों में।

ये लाल शफ़क़[6] ये लाला-ओ गुल[7] इक चिंगारी भी जिन में नहीं,
शोले भी नहीं गर्मी भी नहीं है तेरे आतिशज़ारों में[8] ॥

उस वक़्त कहां तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख़ की तपिश भर देता है, दरियाओं में कुहसारों में।

जाड़े की भयानक रातों में वो सर्द हवाओं की तेज़ी,
हां वो तेज़ी, वो बेमेहरी[9] जो होती है तलवारों में।

दरिया के तलातुम[10] का मंज़र[11] हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मंझधारों में।

---

१. सौन्दर्य २. कांटों में ३. चाहे ४. शान्ति ५. उन्माद
६. क्षितिज ७. फूल ८. अग्नि-स्थलों में ९. निर्दयता १०. तूफ़ान
११. दृश्य

कोयल के रसीले गीत सुने लेकिन ये कभी सोचा तू ने,
हैं उलझे हुए नग़मे कितने इक साज़ के टूटे तारों में ?

बादल की गरज बिजली की चमक बारिश में वो तेज़ी तीरों की,
मैं ठिठरा सिमटा सड़कों पर, तू जाम-बलब[1] मैख़ानों में

सब होशो-ख़िरद[2] के दुश्मन हैं, सब क़ल्बो[3] जिगर के रहज़न[4] हैं,
रक्खा है भला क्या इसके सिवा इन राहते-जां महपारों[5] में ?

वो लाख हिलालों[6] से भी हसीं, कैसी ज़ोहरा[7] कैसी परवीं[8] ?
इक रोटी का टुकड़ा जो कहीं मिल जाये मुझे बाज़ारों में।

जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है,
उस वक़्त ये ज़र्रा हीरा है, उस वक़्त ये शबनम मोती है।

१. शराब के भरे प्याले लिए हुए २. बुद्धि ३. हृदय ४. डाकू
५. आनन्ददायक चांद के टुकड़ों (सुन्दरियों) में ६. पहली रात के चांद
७, ८. सितारों तथा स्त्रियों के नाम

ग़ज़लें

इन्तहाए-ग़म में मुझको मुस्कराना आ गया।
हाथ इख़फ़ाए-मुहब्बत[1] का बहाना आ गया॥
इस तरफ़ इक आशियाने की हक़ीक़त खुल गई।
उस तरफ़ इक शोख़ को बिजली गिराना आ गया॥
रो दिये वो ख़ुद भी मेरे गिरया-ए-पैहम[2] पे आज।
अब हक़ीक़त में मुझे आंसू बहाना आ गया॥
मेरी ख़ाके-दिल भी आख़िर उनके काम आ ही गई।
कुछ नहीं तो उनको दामन ही बचाना आ गया॥
वो ख़राशे-दिल[3] जो ऐ 'जज़्बी' मेरी हमराज़ थी।
आज उसे भी ज़ख़्म बनकर मुस्कराना आ गया॥

◇ ◇ ◇

शरीके-महफ़िले-दारो-रसन[4] कुछ और भी हैं।
सितमगरो[5]! अभी अहले-कफ़न[6] कुछ और भी हैं॥
रवां-दवां यूँही ऐ नन्ही बूंदियों के अब्र[7]।
कि इस दियार[8] में उजड़े चमन कुछ और भी हैं॥
ख़ुदा करे न थकें हश्र तक जुनूं[9] के पांव।
अभी मनाज़िरे-दश्तो-दमन[10] कुछ और भी हैं।
ख़ुदा करे मेरी वामांदगी[11] को ग़ैरत आये।
अभी मनाज़िले-रंजो-मेहन[12] कुछ और भी हैं॥

---

१. छुपाना २. निरन्तर रुदन ३. दिल पर पड़ी हुई खरोंच ४. सूली पर चढ़ने वाली महफ़िल में शामिल ५. अत्याचार करने वालो ६. मरने को तैयार ७. बादल ८. देश ९. उन्माद १०. जंगल-बयावानों के दृश्य ११. थकन १२. दुखों-कष्टों की मंज़िलें

अभी समूम[1] ने मानी कहां नसीम[2] से हार।
अभी तो मारका-हाए-चमन[3] कुछ और भी हैं॥
अभी तो हैं दिले-शायर में[4] सैंकड़ों नासूर।
अभी तो मोजज़ा-हाए-सुख़न[5] कुछ और भी हैं॥
दिले-गुदाज़[6] ने आंखों को दे दिये आंसू।
ये जानते हुए ग़म के चलन कुछ और भी हैं॥

---

१. विषैला पवन २. सुगंधित पवन ३. बाग़ के मोर्चे ४. कवि के हृदय में ५. कविता के चमत्कार ६. कोमल हृदय

सरदार जाफ़री

वज्द में है बज़्मे-गेती, रक़्स में है कायनात
शायरी को जानते हैं, नारा-ए-मस्ताना हम

परिचय

ईसा से ३४७ वर्ष पूर्व यूनान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और दार्शनिक प्लैटो (Plato) ने अपने कल्पित जनतंत्र से कवियों को इसलिए निकाल दिया था क्योंकि उसके विचार में कविता यथार्थ की नक़ल भर थी और वह भी तीसरी श्रेणी की, क्योंकि वास्तविक यथार्थ की नक़ल तो यह संसार है और इस संसार की नक़ल कविता।

अठारहवीं शताब्दि के उर्दू के सर्वप्रथम जन-कवि 'नज़ीर' अकबराबादी को बाज़ारू, अशिष्ट और अश्लील शायर कहकर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार मोहम्मद-हुसैन 'आज़ाद' ने उसे 'शायरी के अमर सिंहासन' पर बिठाने से इन्कार कर दिया था।

और इस बीसवीं शताब्दी में भी आज से आठ-दस साल पहले उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर ने अपने एक लेख में स्वर्गीय 'हाली' को नये सिरे से जीवित दिखाकर उससे प्रगतिशील शायरों का परिचय कराते हुए लिखा था कि जब उस मजलिस में 'मजाज़' लखनवी और सरदार जाफ़री ने प्रवेश किया तो उनके कंधों पर लाल झंडे थे, वे बाक़ायदा मार्च करते और गाते हुए आ रहे थे : "मज़दूर हैं हम, मज़दूर हैं हम !"

कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार 'हाली' ने आश्चर्य से उन विचित्र प्रकार के नवागन्तुकों की ओर देखा और परेशान होकर कहा, "आप मज़दूर हैं तो जाइये कहीं जाकर मज़दूरी कीज़िये। यहाँ शायरों की महफ़िल में आपका क्या काम ?"

लेकिन होता यह है कि स्वयं प्लैटो का शिष्य अरिस्टॉटल (Aristotle) काव्य-सम्बन्धी अपने गुरु के सिद्धांतों का खंडन करता है और काव्य (साहित्य) को मानव-जीवन को समझने और उसे समृद्ध बनाने के लिए उपयोगी तथा अनिवार्य प्रमाणित करता है।

उन्नीसवीं शताब्दि में जिस शायर को मेलों, त्योहारों और घरेलू घटनाओं को सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत करने पर बाज़ारू, अशिष्ट और अश्लील कहा गया और यह भविष्यवाणी की गई कि साहित्य में उसे कभी स्थायी स्थान प्राप्त नहीं होगा, आज उसी 'नज़ीर' अकबराबादी की शायरी के बिना उर्दू साहित्य का इतिहास अपूर्ण नज़र आता है। यही नहीं, आज के उर्दू शायर उसे अपना अग्रगण्य कहकर बड़े गौरव का अनुभव करते हैं। यहां तक कि डाक्टर फ़ेलन ऐसा अंग्रेज़ समालोचक भी लिखता है कि "नज़ीर ही उर्दू का वह अकेला शायर है (अपने युग का) जिसकी शायरी यूरोप-निवासियों के मापदंड के अनुसार सच्ची शायरी है।"

और गुस्ताख़ी माफ़, कन्हैयालाल कपूर के जीवन में ही, बल्कि उसकी राय (व्यंग ही सही) के केवल आठ-दस साल बाद, सरदार जाफ़री किसी साहित्य सभा से निकाले जाने की बजाय उस सभा की जान बल्कि आत्मा नज़र आता है और उक्त उदाहरण इस सिद्धांत को पुष्टतर करने में हमारी सहायता करते हैं कि कवि कोई दैवीय प्राणी नहीं होता कि जिस पर जीवन के परिवर्तन-शील मूल्यों का कोई प्रभाव ही न हो और जो अपने युग की परिस्थितियों से दामन बचाकर जीवित रह सके, बल्कि कवि का हृदय तो अत्यन्त कोमल और उसकी दृष्टि बड़ी दूरगामी होती है। वह केवल अतीत तथा वर्तमान ही की ओर नहीं देखता, उसकी नज़र भविष्य पर भी पड़ती है और मानव-विकास का ज्ञान उसे मानव के भविष्य को उज्ज्वल तथा सुखद बनाने के लिए प्रयत्नशील बनाता है। लेकिन उसके पास समाज को बदलने का साधन चूंकि 'कविता' होता है इसलिए स्वयं सरदार जाफ़री के कथनानुसार "वह न ही कुल्हाड़ी की तरह वृक्ष काट सकता है और न मनुष्य के हाथों की तरह मिट्टी से प्याले बना सकता है। वह पत्थर से बुत नहीं तराशता बल्कि भावनाओं तथा अनुभूतियों के नये-नये चित्र बनाता है। वह पहले मनुष्य की भावनाओं पर प्रभावशील होता है और इस प्रकार उसमें आंतरिक परिवर्तन उत्पन्न करता है, और फिर उस मनुष्य के द्वारा वातावरण तथा समाज को बदलता है।"

मेरे विचार में कवि तथा कविता की इस परिभाषा पर सरदार जाफ़री

और उसकी शायरी बिल्कुल पूरे उतरते हैं। मानव-विकास के क्रम को समझने, जीवन के मिटते हुए मूल्यों का भेद पा लेने, प्रगतिशील शक्तियों से अपना नाता जोड़ने और अपने 'कवि के कर्तव्य' को पूर्ण रूप से समझने के बाद जब उसने काव्य-क्षेत्र में क़दम रखा और जो कुछ उसे कहना था, बड़े स्पष्ट रूप में कहने लगा तो उर्दू शायरी की परम्पराओं के उपासकों का बौखला जाना ठीक उसी तरह ज़रूरी था जिस तरह 'आज़ाद' को 'नज़ीर' के यहाँ बाज़ारूपन नज़र आया था। लेकिन आज चूँकि जीवन की गति अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दि से कहीं अधिक तेज़ है और मानव-बोध पहले से कहीं आगे निकल चुका है, इसलिए सरदार जाफ़री को और उसी की तरह सोचने और शायरी करने वाले उर्दू के अन्य प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी शायरों को अपनी बात के सही सिद्ध करने में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी; और चूँकि सरदार जाफ़री का राजनैतिक तथा कलात्मक बोध बड़े संतुलित ढंग से एक दूसरे में रच-बस चुके हैं और उसे घटनाओं तथा परिस्थितियों को कवित्व-शक्ति के साथ प्रस्तुत करने की सिद्धि प्राप्त है इसलिए हम देखते हैं कि अपने जिन विचारों को वह हम तक पहुँचाना चाहता है, वे विचार प्रत्यक्ष रूप में हमारे मस्तिष्क में उतर आते हैं और हमारे भीतर जो स्थायी चुभन और तड़प, उमंग और प्रेरणा उत्पन्न करते हैं उनसे हमें केवल जीवन को समझने में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि हमारे भीतर सुखप्रद भविष्य के लिए संग्रामशील होने की भावना भी जाग उठती है।

आधुनिक उर्दू शायरी का यह निडर और स्पष्टवक्ता शायर जो अपनी शायरी द्वारा स्वतन्त्रता, शान्ति तथा समानता का प्रचार और परतन्त्रता, युद्ध और साम्राज्य पर कुठाराघात करने के अपराध में पराधीन भारत में भी जेल भुगत चुका है और स्वाधीन भारत में भी, २९ नवम्बर १९१३ को बलरामपुर ज़िला गोंडा (अवध) में पैदा हुआ।

घर का वातावरण यू० पी० के साधारण मध्यवर्गीय मुसलमान घरानों की तरह खालिस धार्मिक था और चूंकि ऐसे घरानों में 'अनीस' के मर्सियों को वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू घरानों में महाभारत और रामायण को, इसलिए अली सरदार जाफ़री पर भी घर के वातावरण ने प्रभाव डाला और अपनी छोटी-सी आयु में ही उसने 'मर्सिये' लिखने शुरू कर दिए और १९३३ तक बराबर मर्सिये लिखता रहा। उसका उस ज़माने का एक शेर देखिये :

अर्श[1] तक ओस के क़तरों की चमक जाने लगी।
चली ठंडी जो हवा तारों को नींद आने लगी॥

लेकिन बलरामपुर से हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद जब वह उच्च शिक्षा के लिए मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ पहुँचा और वहाँ उसे अख़्तर हुसैन रायपुरी, सिब्ते-हसन, 'जज़्बी', 'मजाज़', जां निसार 'अख़्तर' और ख़्वाजा अहमद अब्बास ऐसे साथी मिले और वह विद्यार्थी आन्दोलनों में गहरा भाग लेने लगा और फिर विद्यार्थियों की एक हड़ताल कराने के सिलसिले में विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया तो उसकी शायरी की धारा आपही आप 'मर्सियों' से राजनीतिक नज़्मों की ओर मुड़ गई और ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज, दिल्ली से बी० ए० और लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० करने और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बनने के बाद तो उसकी शायरी पूर्णरूप से 'राजनीतिक' हो गई।

उसके समस्त कविता-संग्रह ('परवाज़', 'नई दुनिया को सलाम', 'ख़ून की लकीर', 'अमन का सितारा', 'एशिया जाग उठा' और 'पत्थर की दीवार') के अध्ययन से जो चीज़ बड़े स्पष्ट रूप में हमारे सामने आती है और जिससे हमें शायर की असाधारण विशेषता का पता चलता है, वह यह है कि उसके समस्त विचारों का केन्द्र मानव है और उसे मानवता के शानदार भविष्य पर पूरा भरोसा है। ऐतिहासिक बोध और सामाजिक अनुभवों द्वारा उसने इस भेद को पा लिया है कि संसार में व्यक्तियों तथा वर्गों की पराजय तो हो सकती है, और होगी, लेकिन मानव अजेय है। और चूँकि उसका परिश्रम उसके अपने ज्ञान ही का नहीं, बहुत हद तक उसके वातावरण का भी निर्माता होता है, अतएव वह सदैव विजयी और भाग्यशील रहेगा और यही कारण है कि हमें सरदार जाफ़री की शायरी में किसी प्रकार की निराशा तथा अवसन्नता का चित्रण नहीं मिलता, वरन् उसकी शायरी हमारे भीतर नई-नई उमंगें जगाती है। हम उसके सिद्धान्तों से भले ही सहमत न हों लेकिन उसकी निष्कपटता, उसकी सूझ-बूझ और उसके आशावाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। कुछ शेर देखिये :

गो मेरे सिर पे सियाह रात की परछाईं है,
मेरे हाथों में है सूरज का छलकता हुआ जाम,

---

१. आकाश

मेरे अफ़कार में[1] है तल्ख़ी-ए-इमरोज़[2], मगर,
मेरे अशआ़र में है इश्रते-फ़र्दा[3] का पयाम।

◇ ◇ ◇

सिर्फ़ इक मिटती हुई दुनिया का नज़्ज़ारा न कर,
आ़लमे-तख़लीक़ में[4] है इक जहाँ ये भी तो देख,
मैंने माना, मरहले हैं सख़्त, राहें हैं दराज़[5],
मिल गया है अपनी मंज़िल का निशां ये भी तो देख।

◇ ◇ ◇

नया चश्मा है पत्थर के शिगाफ़ों से उबलने को,
ज़माना किस क़दर बेताब है करवट बदलने को।

◇ ◇ ◇

यहाँ तक कि उसकी रोमांटिक नज़्में भी नैराश्य आदि भावों से नितान्त बची हुई हैं और उनमें भी संघर्ष की वही भावना क्रिया-शील है जो उसकी राजनीतिक नज़्मों में विद्यमान है। उसकी एक नज़्म 'इन्तज़ार न कर' का एक टुकड़ा देखिए :

मैं तुमको भूल गया इसका एतबार न कर;
मगर ख़ुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर।
अजब घड़ी है मैं इस वक़्त आ नहीं सकता,
सरूरे-इश्क़ की दुनिया बसा नहीं सकता,
मैं तेरे साज़े-मुहब्बत पे गा नहीं सकता,
मैं तेरे प्यार के क़ाबिल नहीं हूँ, प्यार न कर,
न कर ख़ुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर।

जाफ़री की शायरी की आयु लगभग वही है जो भारत में साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन की। बीस वर्ष का यह ज़माना भारत के अतिरिक्त पूरे संसार की उथल-पुथल का ज़माना रहा है। एक ओर भारत अँग्रेज़ी साम्राज्य की दासता से निकलने के लिए संघर्ष कर रहा था तो दूसरी ओर विरोधी शक्तियाँ अपने खूनी जबड़े खोले नये-नये देश हड़प कर रही थीं। एक ओर दूसरे महायुद्ध के भयानक परिणाम संसार को आर्थिक-संकट की लपेट में ले रहे थे और चारों ओर बेकारी, बेरोज़गारी का तांडव-नृत्य हो रहा था तो

---

१. रचनाओं में २. आज की कटुतायें ३. सुख-प्रद भविष्य ४. जन्म लेता हुआ ५. लम्बी

दूसरी ओर रूस की समाजवादी व्यवस्था मंज़िलों पर मंज़िलें तै कर रही थी और संसार के श्रमजीवी उस जीवन-व्यवस्था से प्रभावित हो रहे थे। फिर भारत का विभाजन हुआ और लाखों प्राणी धर्म के नाम पर कट मरे और आज फिर सारे संसार पर तीसरे महायुद्ध के भयंकर वादल मँडरा रहे हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में किसी जागरूक कवि या लेखक का मौन रहना या अपना कोई अलग संसार वसाना किसी प्रकार संभव नहीं था, अतएव सरदार जाफ़री ऐसे मानव-प्रेमी शायर ने हर स्थान पर न केवल अपने मानव-प्रेम की मशाल जलाई वल्कि मानव-शत्रुओं के विरुद्ध अपनी पवित्र घृणा को भी प्रकट किया। 'वग़ावत', 'अहदे-हाज़िर', 'सामराजी लड़ाई', इंक़िलावे-रूस', 'मल्लाहों की वग़ावत', 'फ़रेव', 'सैलावे-चीन', 'जशने वग़ावत' इत्यादि नज़्मों के शीर्षक भर देखने से ही यह वात सिद्ध हो जाती है कि शायर की उँगली वदलती हुई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की नव्ज़ पर रही है और इन नज़्मों के अध्ययन से यह वास्तविकता खुलकर सामने आ जाती है कि उसने केवल परिस्थितियों की नव्ज़ की गति देखने पर ही सन्तोष नहीं किया, उन धड़कनों के साथ उसके अपने हृदय की धड़कनें भी मिलती रही हैं। वह किसी एक जाति, किसी एक वर्ग या एक श्रेणी का शायर नहीं, पूरी मानवता का शायर है। उसकी शायरी इतिहास के परिवर्तनशील मूल्यों के साथ-साथ जा रही है और उसे शायर के शुभ उद्देश्य का पूरा-पूरा अनुभव है :

मैं हूँ सदियों का तफ़क्कुर[१], मैं हूँ क़रनों का[२] ख़याल।
मैं हूँ हम-आग़ोश अज़ल से, मैं अवद से हम-किनार[३]॥
मेरे नग़मे, क़ैदे-माहो-साल से[४] आज़ाद हैं।
मेरे हाथों में है लाफ़ानी तमन्ना का सितार।
नक़्शे-मायूसी में[५] भर देता हूँ उम्मीदों का रंग।
मैं अता[६] करता हूँ शाख़े-आरज़ू[७] को वर्गो-वार[८]॥
चुन लिए हैं वाग़े-इन्सानी से अरमानों के फूल।
जो महकते ही रहेंगे मैं ने गूँधे हैं वो हार॥

---

१. चिंतन २. कई ज़मानों का ३. आदि और अन्त से मिला हुआ ४. महीनों, साल (समय) की क़ैद से ५. निराशा के चित्रों में ६. प्रदान ७. अभिलाषा की शाखा ८. फूल-पत्ते

आर्ज़ी जलवों को दी है ताबिशे-हुस्नो-दवाम[1]।
मेरी नज़रों से है रौशन आदमी की रहगुज़ार[2]॥

[नज़्म 'शायर' में से]

और इसी अनुभव के वशीभूत वह बड़ी दयानतदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता रहा है। एक प्रगतिशील शायर के इन कर्तव्यों को देखते हुए उन आलोचकों का उत्तर देने की आवश्यकता बाक़ी नहीं रहती जो प्रगतिशील शायरी को खून, आग, तूफ़ान, सैलाब और मज़दूर-किसान आदि शब्दों तक सीमित समझते हैं।

सरदार जाफ़री की कुछ-एक शुरू की नज़्मों को छोड़कर जिनकी कुछ पंक्तियों का ढीलापन कानों को खटखकता है, और कुछ ऐसे स्थानों को छोड़कर जहाँ वह शायर कम और उपदेशक अधिक मालूम होता है ('इक़बाल' और 'जोश' से प्रभावित होने के कारण या विषय की आधीनता के कारण, क्योंकि सरदार जाफ़री के मतानुसार शैली और रूप विषय पर आधारित होते हैं)[3] सामूहिक रूप से उसकी शायरी कला के समस्त गुणों को अपने दामन में लिए हुए है। इस पर उसने उर्दू शायरी को जो नये शब्द और भाव दिए हैं और रूपकों को नये अर्थों में प्रस्तुत किया है और निर्बंध तथा अतुकांत शायरी को सँवारा निखारा है, उससे आधुनिक उर्दू शायरी को अपनी विभावना और सार्थकता पर गौरव करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो गया है।

एक बड़ा शायर होने के अतिरिक्त सरदार जाफ़री एक बड़ा समालोचक भी है। 'नया अदब' के सम्पादन-काल में उसने अपनी जिस समालोचनात्मक क्षमता का प्रमाण दिया और अब प्रगतिशील साहित्य का इतिहास लिखते हुए (चार भागों के इस इतिहास का पहला भाग अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू, अलीगढ़ से प्रकाशित हो चुका है) जिस वर्णनात्मक शक्ति और ज्ञान के जितने बड़े भंडार

---

१. सौंदर्य और स्थायित्व की चमक (गर्मी) २. पथ
३. "रूप का सौंदर्य बहुत आवश्यक है लेकिन रूप विषय का मुहताज है। इसलिए कि विषय के बिना रूप की कोई कल्पना नहीं की जा सकती; और चूंकि मनुष्य चित्रों और शब्दों के बिना कुछ सोच नहीं सकता इसलिए विषय अपना रूप साथ लेकर आता है। शायर का तजुर्बा और परिश्रम उस रूप को अपनी क्षमता से और अधिक सुन्दर बना सकता है।"

—सरदार जाफ़री

को लेकर वह हमारे सामने आया है, उससे यह अनुमान लगाने में कठिनाई होती है कि वह शायर बड़ा है या समालोचक। शायर और समालोचक के अतिरिक्त वह बहुत अच्छा भाषणकर्त्ता भी है। उसने कहानियाँ भी लिखी हैं और नाटक भी। लेकिन इतना कुछ कहने और लिखने पर भी उसका कहना यही है कि :

ये तो हैं चन्द ही जलवे जो झलक आये हैं।
रंग हैं और मेरे दिल के गुलिस्तां में अभी॥
मेरे आग़ोशे-तख़ैयुल[1] में हैं लाखों सुबहें।
आफ़ताब[2] और भी हैं मेरे गरेबां में अभी॥

---

१. कल्पना की गोदी में २. सूरज

झींगरों की आवाज़ें,
कह रही हैं अफ़साना,
दूर जेल के बाहर,
बज रही है शहनाई,
रेल अपने पहियों से
लोरियां सुनाती है।
रात ख़ूबसूरत है,
नींद क्यों नहीं आती ?
रोज़ रात को यूँही,
नींद मेरी आंखों से,
बेवफ़ाई करती है,
मुझ को छोड़कर तनहा,
जेल से निकलती है।
बम्बई की बसती में,
मेरे घर का दरवाज़ा,
जा के खटखटाती है।
एक नन्हे बच्चे की,
अंखड़ियों के बचपन में,
मीठे - मीठे ख़्वाबों के,
शहद घोल देती है।
नर्म - नर्म गालों को,
गर्म - गर्म आंखों को,
झुक के प्यार करती है।
इक हसीं परी बन कर,
लोरियां सुनाती है,
पालना हिलाती है।

[सेंट्रल-जेल नासिक, १९५०]

दक्कन की शहज़ादी

बम्बई ! ऐ दकन की शहज़ादी !
नीलगूं सुन्दरी अजन्ता की,
अपनी ऊंची चटान से नीचे,
अपने बालों को धोने आई है।
पिंडलियां मछलियां हैं सोने की,
पांव डूबे हुए समन्दर में,
उँगलियां खेलती हैं पानी से,
जलते हीरे की लाखों आंखों से,
पिघले नीलम के नीले होंटों से,
मेरे ख़्वाबों में मुस्कराती है।
दिल के तूफ़ान-खेज़ साहिल पर,
मौजें[1] गाती हैं रक़्स करती हैं,
झाग के आंचलों को लहराती,
चाँदनी की अंगूठियां पहने
भीगे तारों के फूल बरसाती।
तेरी क़ौसे-क़ज़ह [2] की गरदन में,
मौजे-बहरे-अरब की[3] बांहें हैं।
तेरे माथे को प्यार करती हैं,
तिरछी परछाइयां जहाज़ों की।
ख़ूं की गरदिश में है मशीं[4] का राज़,
नाचती उंगलियों में सूत के तार,
जिस्म पर सीपियों की नर्म चमक,
और नज़रों में मोतियों का ग़रूर।

---

१. लहरें २. इन्द्रधनुष ३. अरब महासागर की लहरों की ४. मशीन

मैं हिमालय के देस का वासी,
तू समन्दर के गोद की पाली,
क्या कहूँ कैसे याद आती है ?
ज़हन के मलगजी[1] उजाले में,
तेरी तस्वीर झिलमिलाती है,
चाँदनी रात में गुलाब का फूल।

मेरे ख्वाबों की शाहज़ादी है,
तू नहीं मारवाड़ियों की कनीज़[2] !
जो तेरा हुस्न बेच खाते हैं,
आह ये नफ़अ़-खोर ये दल्लाल !
मग़रबी मंडियों के चकलों में,
तुझको नीलाम पर चढ़ाते हैं।
और मैं गुस्से से कांप जाता हूँ,
मैं तेरे हुस्न का मुहाफ़िज़ हूं।
पांव हैं मेरे देवदार के पेड़,
मेरा सीना हिमालिया की चटान,
मेरे दिल, मेरे जहन में दिन-रात,
आंधियां बर्फ़ के लबादों में,
बिजलियों के क़दम से चलती हैं।
सुर्ख़ शहपर[3] बग़ावतों के उक़ाब[4],
फ़िक्र के आस्मां पे उड़ते है।
काले बनियों के चोर हाथों से,
मैं तुझे आन कर छुड़ा लूंगा।
ऐ समन्दर के हुस्न की बेटी !
मैं तुझे गोद में उठा लूंगा !
अपने शायर की दिलनवाज़ है तू।

---

१. धूमिल २. दासी ३. राजपक्षी ४. एक बहुत ऊँचा उड़ने वाला पक्षी

अनाज

मेरी आशिक़ हैं किसानों की हसीं कन्यायें !
जिनके आंचल ने मुहब्बत से उठाया मुझको।
खेत को साफ़ किया, नर्म किया मट्टी को,
और फिर कोख में धरती की सुलाया मुझको।
ख़ाक-दर-ख़ाक हर इक तह में टटोला लेकिन,
मौत के ढूँढते हाथों ने न पाया मुझको।
ख़ाक से लेके उठा मुझको मेरा ज़ौक़े-नमू[1],
सब्ज़ कोंपल ने हथेली में छुपाया मुझको।
मौत से दूर मगर मौत की इक नींद के बाद,
जुंबिशे-बादे - बहारी ने[2] जगाया मुझको।
बालियां फूलीं तो खेतों पे जवानी आई,
उन परीज़ादों ने बालों में सजाया मुझको।
मेरे सीने में भरा सुर्ख़ किरन ने सोना,
अपने झूले में हवाओं ने झुलाया मुझको।
मैं रकाबी में, पियालों में महक सकता हूं,
चाहिये बस लबो-रुख़सार का[3] साया मुझको।

मेरी आशिक़ हैं किसानों की हसीं कन्यायें !
गोद से उनकी कोई छीन के लाया मुझको।

---

१. पनपने की इच्छा २. बहार की हवा के झोंके ने ३. होंटों और गालों का

हविसे-ज़र ने मुझे आग में फूंका है कभी,
कभी बाज़ार में नीलाम चढ़ाया मुझको।
सी के बोरों में मुझे फैंका है तहख़ानों में,
चोर-बाज़ार कभी रास न आया मुझको।
वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हूं उन्हें,
जिनके हाथों की हरारत[1] ने उगाया मुझको।

क्या हुए आज मेरे नाज़ उठाने वाले ?
हैं कहां क़ैदे-ग़ुलामी से छुड़ाने वाले ?

---

१. गर्मी

पत्थर की दीवार

क्या कहूं भयानक है
या हसीं है ये मन्ज़र
ख़्वाब है कि वेदारी
कुछ पता नहीं चलता
फूल भी हैं, साये भी
ख़ाक भी है, पानी भी
आदमी भी, मेहनत भी
गीत भी हैं, आंसू भी
फिर भी एक ख़ामोशी
रूहो-दिल की तनहाई
इक तवील सन्नाटा
जैसे सांप लहराये
माहो-साल[1] आते हैं
और दिन निकलते हैं
जैसे दिल की वस्ती से
अजनबी गुज़र जाये

चीख़ती हुई घड़ियां
ज़ख्म-ख़ुर्दा तायर[2] हैं
नर्म-रौ सुवक लमहे[3]
मुंजमिद[4] सितारे हैं

---

१. महीने और साल २. घायल पक्षी ३. मन्द गति से चलने वाले हल्के-फुल्के क्षण ४. जमे हुए

रस्सियों की गांठों में
बाजुओं की गोलाई
नीम-जान क़दमों में
बेड़ियों की शहनाई
हथकड़ी के हल्क़ों में
हाथ कसमसाते हैं
फांसियों के फंदों में
गरदनें तड़पती हैं

पत्थरों की दीवारें !

जो कभी नहीं रोतीं
जो कभी नहीं हंसतीं
उनके सख़्त चेहरों पर
रंग है न ग़ाज़ा है
खुरदरे लबों पर सिर्फ़
बेहिसी की मोहरें हैं

पत्थरों की दीवारें !

पत्थरों के सीने हैं
जिनमें ख़ून के क़तरे
दूध बन नहीं सकते
पत्थरों के दफ़्तर हैं
पत्थरों की मिसलें हैं
पत्थरों के जेलर हैं
वार्डर हैं पत्थर के
पत्थरों के नम्बरदार

पत्थरों की दीवारें !

पत्थरों के फ़र्श और छत
पत्थरों की महराबें
पत्थरों के बाज़ू हैं
पत्थरों के दरवाज़े
पत्थरों की अंगड़ाई
पत्थरों के पंजों में
आहनी सलाख़ें हैं

और इन सलाख़ों में
हसरतें तमन्नायें
आरज़ूएँ, उम्मीदें
ख़्वाब और ताबीरें[1]
अश्क[2], फूल और शबनम
चाँद की जवां नज़रें
धूप की सुनहरी ज़ुल्फ़
बादलों की परछाईं
सुबहो-शाम की परियाँ
मौसमों की लैलायें
सूलियों पे चढ़ती हैं

और इस अंधेरे में
सूलियों के साये में
इंक़लाब पलता है
तीरगी के[3] कांटों पर
आफ़ताब चलता है
पत्थरों के सीने से

---

१. स्वप्न-फल २. आंसू ३. अन्धकार

सुर्ख़ हाथ उगते हैं
हाथ हैं कि तलवारें
रात की सियाही में
जैसे शम्मअ़ जलती है
उंगलियां फ़ुरोज़ां हैं[1]
बारकों के कोनों से
साज़िशें निकलती हैं
ख़ामशी की नब्ज़ों में
घंटियाँ सी बजती हैं

जाने कैसे क़ैदी हैं
किस जहां से आये हैं
नाख़ुनों में कीलें हैं
हड्डियां शिकस्ता[2] हैं
नौजवान जिस्मों पर
पैरहन[3] हैं ज़ख़्मों के
लैनिनी जबीनों पर[4]
ख़ून की लकीरें हैं
अश्क आग के क़तरे
सांस तुन्द आंधी है
बात है कि तूफ़ां है
अबरुओं को[5] जुंबिश में
अज़्म[6] मुस्कराते हैं
और निगह की लर्ज़िश में
हौसले मचलते हैं

---

१. चमक रही हैं २. जर्जर ३. वस्त्र ४. लेनिन के विचार रखने वाले माथे (मस्तिष्क) पर ५. भवों की ६. संकल्प

त्योरियों की शिकनों में
नक़्शे-पा[1] बग़ावत के

जितना ज़ुल्म सहते हैं
और मुस्कराते हैं
जितने दुख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
ज़हर और चढ़ता है
ज़ालिमों की शिद्दत पर
ज़ुल्म चीख़ उठता है
उनके लब नहीं हिलते
उनके सर नहीं झुकते
इक सदा निकलती है
"इंक़िलाब ज़िन्दाबाद!"

ख़ाके-पाक[2] के बेटे
खेतियों के रखवाले
हाथ कारख़ानों के
इंक़िलाब के शहपर
कार्ल मार्क्स के शाहीं[3]
पत्थरों की कोरों पर
आँधियों की राहों में
बिजलियों के तूफ़ां में
गोलियों की बारिश में
सर उठाये बैठे हैं

---

१. पद-चिह्न २. पवित्र धरती ३. बाज़ पक्षी

सुर्ख़ हाथ उगते हैं
हाथ हैं कि तलवारें
रात की सियाही में
जैसे शम्मअ़ जलती है
उंगलियां फ़ुरोज़ां हैं[1]
बारकों के कोनों से
साज़िशें निकलती हैं
ख़ामशी की नब्ज़ों में
घंटियाँ सी बजती हैं

जाने कैसे क़ैदी हैं
किस जहां से आये हैं
नाख़ुनों में कीलें हैं
हड्डियां शिकस्ता[2] हैं
नौजवान जिस्मों पर
पैरहन[3] हैं ज़ख्मों के
लैनिनी जबीनों पर[4]
ख़ून की लकीरें हैं
अश्क आग के क़तरे
सांस तुन्द आंधी है
बात है कि तूफ़ां है
अबरुओं को[5] जुंबिश में
अज़्म[6] मुस्कराते हैं
और निगह की लर्ज़िश में
हौसले मचलते हैं

---

१. चमक रही हैं २. जर्जर ३. वस्त्र ४. लेनिन के विचार रखने वाले माथे (मस्तिष्क) पर ५. भवों की ६. संकल्प

त्योरियों की शिकनों में
नक़्शे-पा[1] बग़ावत के

जितना ज़ुल्म सहते हैं
और मुस्कराते हैं
जितने दुख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
ज़हर और चढ़ता है
ज़ालिमों की शिद्दत पर
ज़ुल्म चीख़ उठता है
उनके लब नहीं हिलते
उनके सर नहीं झुकते
इक सदा निकलती है
"इंक़िलाब ज़िन्दाबाद!"

ख़ाके-पाक[2] के बेटे
खेतियों के रखवाले
हाथ कारख़ानों के
इंक़िलाब के शहपर
कार्ल मार्क्स के शाहीं[3]
पत्थरों की कोरों पर
आँधियों की राहों में
बिजलियों के तूफ़ां में
गोलियों की बारिश में
सर उठाये बैठे हैं

---

१. पद-चिह्न २. पवित्र धरती ३. बाज़ पक्षी

इंक़िलाब - सामां है
हिन्द की फ़ज़ा सारी
नज़अ् के है, आलम में[1]
ये नज़ामे - ज़रदारी[2]
वक़्त के महल में है
जश्ने - नौ[3] की तैयारी
जश्ने - आम जमहूरी[4]
इक़्तिदारे - मज़दूरी[5]
ग़र्क़-आतिशो - आहन[6]
बेकसी - ओ-मजबूरी
मुफ़्लिसी-ओ - नादारी

तीरगी के बादल से
जुगनुओं की बारिश से
रक़्स में शरारे हैं
हर तरफ़ अंधेरा है
और इस अंधेरे में
हर तरफ़ शरारे हैं
कोई कह नहीं सकता
कौन सा शरारा कब
बेक़रार हो जाये
शोलाबार हो जाये[7]
इंक़िलाब आ जाये।

---

१. दम तोड़ने की स्थिति में २. पूंजीवादी व्यवस्था ३. नया जश्न
४. जनतंत्र ५. मज़दूरों का शासन ६. लोहे और आग में डूब गई है
७. भड़क उठे

'मख्दूम' मुहीउद्दीन

बिखरी हुई रंगीं किरनों को आंखों से चुनकर लाता हूँ
फ़ितरत के परेशां नग़मों से फिर अपना गीत बनाता हूँ

एक क़ब्रिस्तान जिसमें नौहाख्वां[1] कोई नहीं,
एक भटकी रूह है जिसका मकां कोई नहीं,
इस ज़मीने-मौत-परवर्दा[2] को ढाया जाएगा।
इक नई दुनिया, नया आदम बनाया जाएग॥

तो उसके खेंचे हुए इन चित्रों से मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे और मैं नज़्म की पंक्तियों से नज़रें हटाकर जेल, फ़ाक़ा, भीख, गोली, खून आदि शब्दों के इस शायर के व्यक्तित्व के सम्बंध में विचित्र बातें सोचने लगता था। लेकिन १९५२ में जब पहली बार कलकत्ता में सांस्कृतिक समारोह के अवसर पर और फिर देहली में एक शान्ति-सम्मेलन में मेरी उससे भेंट हुई और मुझे काफ़ी समीप से उसे देखने का मौक़ा मिला तो मेरी कल्पना के नितांत विपरीत वह मुझे अत्यन्त आकर्षक तथा सरल-स्वभाव व्यक्ति दिखाई दिया। मैंने उसे बच्चों के साथ बच्चा बनते, उन्हीं की तरह तोतली ज़बान में उनसे बातें करते और उनके खिलौनों के लिए अपनी जेबें उलटते देखा। विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थियों की समस्याओं पर विद्यार्थियों ही की तरह भावुक ढंग से बातें करते और लतीफ़े सुनाते देखा। लेखकों तथा कवियों की बैठक में अपनी नज़्म पर दाद पाकर इस प्रकार प्रसन्न होते देखा जैसे उसे जीवन में पहली बार दाद मिल रही हो और वह उन सबको अपने से कहीं बड़ा और आदरणीय लेखक और कवि समझता हो, और मैं समझता हूँ कि 'मख्दूम' की प्रतिष्ठा में जहाँ उसके राजनीतिक काम तथा कलाकौशलता का हाथ है वहाँ उसकी लोकप्रियता में उसके इन स्वाभाविक गुणों का भी बहुत बड़ा योग है। बच्चे उसे बच्चा समझते हैं, विद्यार्थियों में वह विद्यार्थी नज़र आता है, मज़दूरों के जल्से में उसे एक पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी के रूप में पहचानना काफ़ी कठिन हो जाता है। किसान उसे किसान भैया समझते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्रियाँ भी उसे अपना सहजातीय समझ बैठती हैं और निःसंकोच उसे अपने मन का भेद बता देती हैं। इस प्रसंग में मुझे देहली की एक घटना कभी नहीं भूलती।

एक बार जब एक छोटी-सी बैठक में 'मख्दूम' अपनी प्रसिद्ध रोमान्टिक नज़्म 'इन्तज़ार' सुना चुका तो एक नौजवान लड़की ने, जो उसकी नज़्म से बहुत प्रभावित मालूम होती थी, उसे अलग लेजाकर कहा कि वह चाहती है कि उसका प्रेमी इस नज़्म को अवश्य सुने, लेकिन उसे यह पता न चले कि इसके पीछे उसकी प्रेमिका का हाथ है।

---

१. शोकालाप करने वाला २. मृत्यु द्वारा पाली हुई धरती

'मख़्दूम' के हामी भरने पर लड़की ने बताया कि उसका प्रेमी देहली में नहीं बल्कि देहली से तीन सौ मील दूर अमृतसर में रहता है। अतएव तै पाया कि दूसरे दिन प्रातः समय 'मख़्दूम' उसके प्रेमी को ट्रंक-काल करेगा और टेलीफ़ोन पर उसे वह नज़्म सुना देगा। और सचमुच दूसरे दिन अपने सौ काम छोड़कर 'मख़्दूम' टेलीफ़ोन पर उस लड़की के प्रेमी से कह रहा था :

रात भर दीदा-ए-नमनाक[1] में लहराते रहे।
सांस की तरह से आप आते रहे, जाते रहे॥

'मख़्दूम' की शायरी का प्रारंभ उस ज़माने में हुआ जब 'अंगारे' (सज्जाद ज़हीर, रशीदजहाँ, अहमद अली आदि प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं का एक संकलन—१९३४, जिसे अंग्रेज़ी सरकार ने ज़ब्त कर लिया था) के प्रकाशन द्वारा परम्परागत् साहित्य के विरुद्ध एक विद्रोह शुरू हुआ था। नये लेखक उर्दू साहित्य को नये से नया विषय दे रहे थे, नई से नई शैली से परिचित करा रहे थे लेकिन प्रयोगकाल होने के कारण साहित्य के लगभग प्रत्येक विद्रोही के यहाँ अभी कलात्मक निपुणता नहीं आई थी। 'मख़्दूम' की प्रारंभिक शायरी में भी कई जगह भाषा आदि की त्रुटियाँ मिलती हैं लेकिन यदि उसकी अन्तर्चेतना को देखा जाय तो वह एक स्वाभाविक शायर है और कला के उपनियमों से अलग रहकर वह अपने दिल के टुकड़े काग़ज़ पर रख देता है। उसकी शायरी में पहाड़ी झरनों ऐसा वेग भी है और मैदानी नालों ऐसी हंस की चाल भी। अपनी शायरी द्वारा वह जनता की सांस्कृतिक भूख भी मिटाता है और उन्हें नये जीवन तथा नये समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील होने पर भी उकसाता है। अपने समकालीन शायरों को सम्बोधन करते हुए एक बार उसने कहा था :

"तुम अपनी कला, कविता का प्रकाश लेकर जनता के अँधेरे दिलों में उतरते हो। अत्याचारी शासक वर्ग ने उन्हें विद्या, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति के सद्गुणों से वंचित कर रखा है। वे प्यासों की तरह तुम्हारे गिर्द एकत्र हो जाते हैं। उन्हें तुम्हारे शराब के भबकों की आवश्यकता नहीं; उनके जीवन में पहले ही बहुत-सी गन्दगियां मौजूद हैं।"

और उसका यह कथन ही उसकी शायरी का तात्विक गुण है। उसके समीप शायर अपनी शायरी और कला का सम्मान तभी कर सकता है जब वह अपने देश की जनता तथा उसकी स्वतंत्रता और समृद्धि का सम्मान करे। और जहाँ

१. सजल नेत्रों में

तक उसके अपने व्यक्तित्व का सम्बंध है वह न केवल जनता की स्वतंत्रता और समृद्धि के संग्राम का सम्मान करता है बल्कि तन, मन, धन हर तरह से उस संग्राम में अपना योग दे रहा है। हैदराबाद के तरुण शायरों के लिए तो वह एकदम पूजनीय है। वहाँ का कोई तरुण उर्दू लेखक अथवा शायर ऐसा नहीं जो 'मख्दूम' से और 'मख्दूम' की शायरी से प्रभावित न हुआ हो और जिसने 'मख्दूम' के ढंग में नज़्में लिखने का प्रयास न किया हो।

हैदराबाद के तरुण लेखक तथा शायर ही नहीं, हैदराबाद की जनता को भी उसके प्रति असीम स्नेह तथा श्रद्धा है। इस स्नेह तथा श्रद्धा का एक उदाहरण देखिये : वहाँ का एक व्यक्ति जिसने 'मख्दूम' को केवल दूर से देखा था, उस से इतना प्रभावित हुआ कि उसने 'मख्दूम' जैसी अपनी धज बना ली। उसी कोमल स्वर में बातचीत करने लगा, उसी जैसे वस्त्र पहनने लगा, यहाँ तक कि जब उसे मालूम हुआ कि 'मख्दूम' का वज़न उसके वज़न से कम है तो उपवास करके उसने अपना वज़न कम कर लिया। यह तो ख़ैर एक व्यक्ति का उदाहरण है, ज़रा इस स्नेह तथा श्रद्धा का अनुमान लगाइये : एक बार 'मख्दूम' हैदराबाद के एक दस हज़ार के जनसमूह में भाषण दे रहा था और शहर में उसकी गिरफ़्तारी की खबरें उड़ रही थीं। सभा समाप्त हो गई लेकिन लोग उसी प्रकार बैठे रहे। 'मख्दूम' ने इसका कारण पूछा तो लोगों ने बताया "हम आपको छोड़कर नहीं जा सकते, वरना हकूमत आपको गिरफ़्तार कर लेगी।" 'मख्दूम' के लाख समझाने पर भी लोग टस से मस न हुए। परेशान होकर उसने कहा "अच्छा आप लोग यहाँ बैठे रहिये मैं जाता हूँ।" लेकिन वहाँ बैठे रहने की बजाय वह पूरा ज़नसमूह 'मख्दूम' के साथ हो लिया और जब एक मित्र के मकान पर पहुँच कर 'मख्दूम' ने फिर कहा कि "मुझे तो आपने घर पहुँचा दिया, अब आप लोग भी अपने-अपने घर जाइये।" तो भी कोई वापस जाने को तैयार न हुआ और वे सब बाहर खड़े उसका प्रसिद्ध गीत :

> ये जंग है जंगे-आज़ादी !
> आज़ादी के परचम के ...

गाते रहे।

'मख्दूम' 'नौरस', 'अंधेरा', इंतज़ार', 'इंक़िलाब', 'मशरिक़', 'हवेली','क़ैद' इत्यादि बहुत-सी सुन्दर नज़्मों का रचयिता है, लेकिन जिस गीत या नज़्म ने उसे सबसे अधिक ख्याति प्रदान की और जनता का प्रिय शायर बनाया वह गीत या नज़्म यही 'जंगे-आज़ादी' है। यह गीत उसने १९४२ के आन्दोलन-काल में लिखा

था जब कांग्रेस पार्टी ग़ैरक़ानूनी पार्टी क़रार दे दी गई थी। समस्त नेता जेलों में डाल दिये गये थे और चारों ओर एक विचित्र प्रकार की विवशता-सी नज़र आती थी। ऐसे में साहित्यकारों की समझ में भी कुछ नहीं आ रहा था कि क्या करें। 'मख्दूम' ने यह गीत लिख कर उन्हें एक मार्ग सुझाया और केवल साहित्यकारों ही का नहीं स्वतंत्रता-प्रेमी जनता का भी पथ-प्रदर्शन किया। साहित्यिक दृष्टि से कुछ समालोचकों ने इस गीत के बारे में कहा था कि "यह प्रौपेगंडा है, इसका काव्य-विषय स्थायी नहीं। युद्ध समाप्त होते ही किसी को इसका एक शब्द तक याद नहीं रहेगा।" लेकिन 'मख्दूम' के इस गीत ने सिद्ध कर दिखाया कि यदि लेखक और कवि आत्मानुभव के आधार पर साहित्य की रचना करें तो साहित्य अपने समय के साथ कभी समाप्त नहीं होता। आज देश स्वतंत्र है, आज युद्ध समाप्त हो चुका है लेकिन 'मख्दूम' का यह गीत आज भी भारत के कोने-कोने में गाया जाता है और कई मज़दूरों और किसानों के जल्सों का तो श्रीगणेश ही इस गीत से होता है। मेरे समीप लोकप्रियता की यह उपाधि सैंकड़ों साहित्यिक समालोचनाओं पर भारी है और मैं समझता हूँ कि इसका एकमात्र कारण यही है कि 'मख्दूम' जो कुछ भी लिखता है महसूस करके लिखता है, उसमें उसके अपने दिल की धड़कनें विद्यमान होती हैं।

'मख्दूम', केवल एक कविता-संग्रह 'सुर्ख़ सवेरा' का रचयिता है और अपनी असाधारण राजनीतिक व्यस्तताओं के कारण एक समय से उसने शायरी छोड़ रखी है, लेकिन इन गिनती की कलाकृतियों के बावजूद आधुनिक उर्दू शायरी में उसका स्थान स्थायी रूप से बना रहेगा।

जंगे-आज़ादी

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालों की
आज़ादी के मतवालों की
महकूमों की मजबूरों की
दहक़ानों की[1] मज़दूरों की

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

सारा संसार हमारा है
हम अफ़रंगी हम अमरीकी
हम सुर्ख़ सिपाही ज़ुल्म-शिकन[2]
पूरब, पच्छम, उत्तर, दक्खन
हम चीनी जांबाज़े-वतन
आहन पैकर फ़ौलाद बदन[3]

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

वो जंग ही क्या वो अमन ही क्या
वो दुनिया, दुनिया क्या होगी
वो आज़ादी आज़ादी क्या
दुशमन जिसमें ताराज[4] न हो
जिस दुनिया में सौराज न हो
मज़दूर का जिसमें राज न हो

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

---

१. किसानों की २. अत्याचारों का उन्मूलन करने वाले ३. लोहे का शरीर रखने वाले ४. समाप्त

लो सुर्ख़ सवेरा आता है आज़ादी का आज़ादी का
गुलनार तराना गाता है आज़ादी का आज़ादी का
देखो परचम लहराता है आज़ादी का आज़ादी का

ये जंग है जंगे-आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालों की महक़ूमों की मजबूरों की
आज़ादी के मतवालों की दहक़ानों की मज़दूरों की

ये जंग है जंगे-आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले ॥

सालहा-साल की अफ़सुर्दा-ओ-मजबूर जवानी की उमंग
तौक़ो-ज़ंजीर से लिपटी हुई सो जाती है
करवटें लेने में ज़ंजीर की झनकार का शोर
ख्वाब में ज़ीस्त[1] की शोरिश का[2] पता देता है
मुझ को ग़म है कि मेरा गंजे-गिरांमाया-ए-उम्र[3]
नज्रे-ज़िन्दान[4] हुआ
नज्रे-आज़ादी-ए-ज़िन्दाने-वतन[5] क्यों न हुआ ?

---

१. जीवन २. हंगामे का [illegible] वहुमूल्य धन [illegible] कं
भेंट [illegible] जेलखाने का।

फुटकर शेर

गिरेबां चाक महफ़िल से निकल जाऊं तो क्या होगा ?
तेरी आंखों से आंसू बन के ढल जाऊं तो क्या होगा ?
जुनूं की लग़ज़िशें[1] ख़ुद पर्दा-दारे-राज़े-उलफ़त[2] हैं।
जो कहते हो संभल जाओ, संभल जाऊं तो क्या होगा ?

◇ ◇ ◇

तूने किस दिल को दुखाया है तुझे क्या मालूम ?
किस सनमख़ाने को ढाया है तुझे क्या मालूम ?
हम ने हँस-हँस के तेरी बज़्म[3] में ऐ पैकरे-नाज़ !
कितनी आहों को छुपाया है तुझे क्या मालूम ?

◇ ◇ ◇

कितने लब[4] कितनी जबीनें[5] कितने जलवे कितने नूर,
कितनी सुबहों का उजाला कितने नग़मों का सरूर।
कितनी नौ-आग़ाज़ कलियां[6], कितने ख़ुशबूदार फूल,
मेरी ठंडी सांस पर होते हैं रंजूरो - मलूल[7]।
कितने संगीं - दिल[8] हैं जो मेरे नशे में चूर हैं,
कितनी रातें हैं कि मेरे नाम से मशहूर हैं।

---

१. उन्माद की डगमगाहट २. प्रेम के भेद की पर्दादार ३. महफ़िल
४. होंट ५. माथे ६. नव कलियां ७. दुखी, उदास ८. पत्थर-दिल
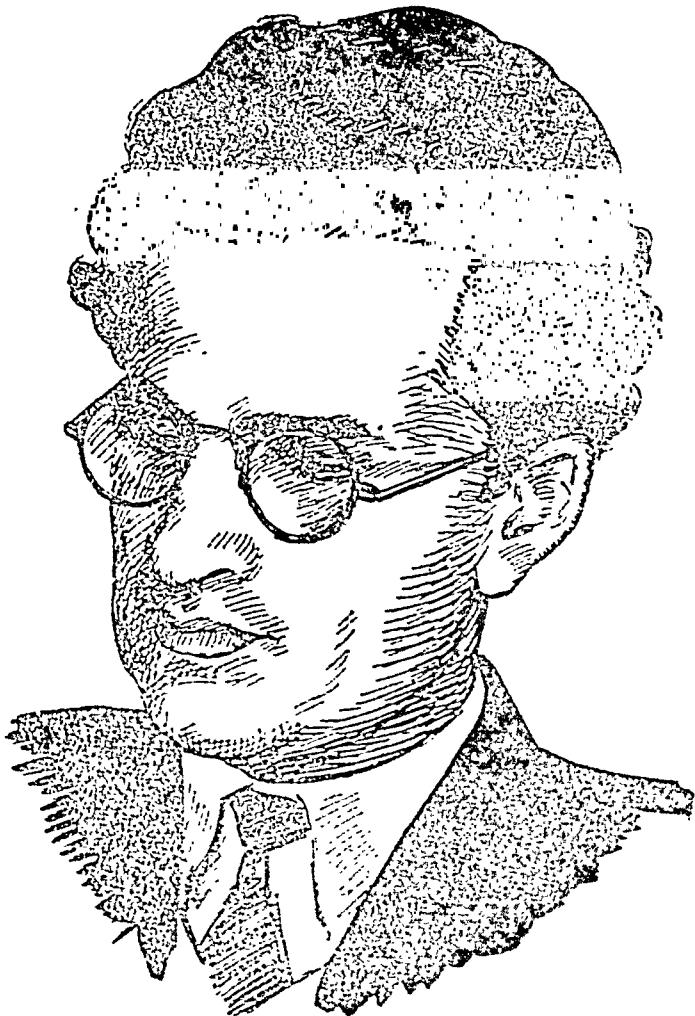
अहमद 'नदीम' क़ासमी

नौजवां सीनों में मुस्तक़बिल की करता हूँ तलाश
मक़बरों में ढूंडता हूँ, गुज़रे वक़्तों के कफ़न

परिचय

"आदर ! आदर ! आदर ! नदीम क़ासमी आ रहा है ।" और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है । यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो 'नदीम' क़ासमी के आते ही महफ़िल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय में लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं ।"

अहमद 'नदीम' क़ासमी के सम्बन्ध में उर्दू के एक लेखक 'फ़िक्र' तौन्सवी के इन शब्दों का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद 'नदीम' क़ासमी को जानते हों या जिन्होंने उसे किसी महफ़िल में आते हुए देखा हो । यह बड़ी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद 'नदीम' क़ासमी के बुज़ुर्ग रिश्तेदार और बुज़ुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वयं क़ासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति में उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव में भी ग्रस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं, यहां तक कि कभी-कभी स्वयं क़ासमी को इस पर उलझन होने लगती है ।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियों का सम्बन्ध है मेरे विचार में उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योंकि वह एक 'पीरज़ादा' है और स्वयं क़ासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतों को उन मुरीदों के समूह में इस प्रकार ग़ायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आंखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बड़े धार्मिक बुज़ुर्ग के सुपुत्र के जूतों को छूकर एक दैवी तेज छा गया । और चूंकि उसने अपने जीवन में कभी अपने बुज़ुर्गों

को किसी शिकायत का म । नहीं दिया और अपने सदाचार में कोई त्रुटि उत्पन्न नहीं होने दी, इसलिए उसके बुज़ुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं; लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यों इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यों उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद बिना उससे मिले या उसकी रचनाओं का अध्ययन किये समझ में नहीं आ सकता।

उससे मिलने और उसकी रचनाओं का अध्ययन करने से जो बात हमें सबसे पहले अपनी ओर खेंचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला में विमलता। एक बड़े कलाकार के लिए जहां कई और गुणों की आवश्यकता होती है वहां उसमें विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है। कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नहीं कर सकता जब तक कि अपने विचारों-भावनाओं और सिद्धांतों को बिना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की उसमें क्षमता और साहस न हो। अहमद 'नदीम' क़ासमी की शायरी का क्रमशः अध्ययन करने से हम उसके किसी काल के सिद्धांतों से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नहीं कर सकते। और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को ज़िला शाहपुर (पश्चिमी पंजाब) के एक छोटे से पहाड़ी गांव अंगा में पैदा हुआ। 'पीरज़ादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से बदतर थी। पिता के देहान्त के बाद चूंकि "पहनने को मोटा-झोटा, खाने को जंगली साग और आग तापने को अपने ही हाथों से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्बन्धियों के हाथों की ओर देखना पड़ा और १९३५ में बी० ए० करने के बाद तो परिस्थितियों ने उसके साथ और भी मज़ाक़ किये। अपने उन दिनों के बारे में वह स्वयं लिखता है कि :

"अपने एक सम्बन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर-मिटकर १९३५ में बी० ए० किया और अब यह परवाना हाथ में लेकर और कुछ खानदानी उपाधियों का पुलंदा कांधों पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय-रीति रटकर मैंने नौकरी की भीख मांगना शुरू की। १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पंजाब का चक्कर लगाया। खानदान के

है जब हम देखते हैं कि उसकी लिखी हुई नज़्मों, ग़ज़लों, रुबाइयों, क़तओं, कहानियों, ड्रामों और लेखों की गिनती करना न केवल कठिन बल्कि असम्भव है। मेरे सम्मुख इस समय उसके केवल तीन कविता-संग्रह 'रिमझिम', 'जलालो-जमाल' और 'शोला-ए-गुल' हैं और मैं इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या देखकर ही परेशान हो रहा हूँ कि अपनी इस संक्षिप्त-सी आयु में क़ासमी ने ये सब कैसे लिख लिया ?

क़तए

देख री, तू पनघट पर जाकर मेरा ज़िक्र न छेड़ा कर,
क्या मैं जानूँ, कैसे हैं वो, किस कूचे में रहते हैं,
मैंने कब तारीफ़ें की हैं, उन के बांके नैनों की,
"वो अच्छे खुशपोश जवां हैं" मेरे भय्या कहते हैं।

◇ ◇ ◇

शहनाइयों के शोर में डोली जूँही उठी,
इक नौजवां कहीं से पुकारा मुझे बचाओ,
डोली से सर निकाल के बोली हसीं दुल्हन,
"क्या देखते हो, जाओ भी लिल्लाह[1] ! जाओ जाओ।"

◇ ◇ ◇

ढोल बजते हैं, दनादन की सदा[2] आती है,
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है,
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत,
एक दोशीज़ा[3] ठिठक जाती है, शरमाती है।

◇ ◇ ◇

---

१. खुदा के लिए २. आवाज़ ३. कुमारी

फ़न*

एक रक़्क़ासा[1] थी—किस-किस से इशारे करती ?
आंखें पथराईं, अदाओं में तवाज़न[2] न रहा,
डगमगाई, तो सब अतराफ़[3] से आवाज़ आई—
"फ़न के इस ओज[4] पे इक तेरे सिवा कौन गया ?"
फ़र्शे-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी,
खुश्क होंटों पे ज़ुबां फेर के पानी मांगा,
ओक उठाई तो तमाशाई संभल कर बोले,
"रक़्स का ये भी इक अंदाज़ है—अल्ला ! अल्ला !"
हाथ फैले रहे, सिल-सी गई होंटों से ज़ुबां,
एक रक़्क़ास किसी सिम्त[5] से नागाह[6] बढ़ा,
पर्दा सरका, तो मअ़न[7] फ़न के पुजारी गरजे,
"रक़्स क्यों खत्म हुआ ? वक़्त अभी बाक़ी था !"

*कला

१. नर्तकी २. संतुलन ३. ओर ४. शिखर ५. ओर ६. एकाएक ७. एकदम

वक़्त

सरवर-आवुर्दा[1] सनोबर की घनी शाख़ों में
चांद बिल्लौर[2] की टूटी हुई चूड़ी की तरह अटका है
दामने-कोह की[3] इक बस्ती में
टिमटिमाते हैं मज़ारों पे चिराग़
आस्मां सुरमई फ़रग़ल में सितारे टांके
सिमटा जाता है—झुका जाता है
वक़्त बेदार[4] नज़र आता है।

सरवर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाख़ों में
सुबह की नुक़रई[5] तनवीर[6] रची जाती है
दामने-कोह में बिखरे हुए खेत
लहलहाते हैं तो धरती के तनफ़्फ़ुस[7] की सदा आती है
आस्मां कितनी बुलंदी पे है और कितना अज़ीम[8]
नये सूरज की शुआओं का मुसफ़्फ़ा[9] आंगन
वक़्त बेदार नज़र आता है!

सरवर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाख़ों में
आफ़ताब[10] एक अलाओ की तरह रौशन है
दामने-कोह में चलते हुए हल
सीना-ए-दहर[11] पे इन्सान की अज़मत[12] की तारीख़ रक़म[13] करते हैं
आस्मां तेज़ शुआओं से है इस दर्जा गुदाज़[14]

---

१. ऊंचा २. कांच ३. पहाड़ के दामन की ४. जाग्रत ५. रुपहली ६. प्रकाश ७. श्वास ८. महान ९. साफ़ १०. सूरज ११. संसार की छाती १२. महानता, बुज़ुर्गी १३. अंकित १४. नर्म

जैसे छूने से पिघल जायेगा
वक़्त तय्यार नज़र आता है

सरबर-आवुर्दा सनोबर की घनी शाख़ों में
ज़िन्दगी कितने हक़ायक़ को[1] जनम देती है
दामने-कोह में फैले हुए मैदानों पर
ज़ौक़े-तख़लीक़[2] ने ऐजाज़[3] दिखाये हैं लहू उगला है
आस्मां गर्दिशे-अय्याम[4] के रेले से हिरासां[5] तो नहीं
ख़ैर-मक़दम[6] के भी अंदाज़ हुआ करते हैं
वक़्त की राह पे मोड़ आते हैं, मंज़िल तो नहीं आ सकती।

---

१. वास्तविकताओं को २. रचना की रुचि ३. चमत्कार ४. समय (दिनों) का चक्र ५. भयभीत ६. स्वागत

सौज़

फ़न बड़ी चीज़ है तख़लीक़[1] बड़ी नेमत है
हुस्नकारी कोई इलज़ाम नहीं है ऐ दोस्त

है मेरे मद्दे-नज़र[2] आज भी तख़लीक़े-जमाल[3]
गेसू-ए-शब में[4] उलझते हुए तारों के ख़याल
वो जवानी के गुलाबों से महकते हुए जिस्म
फैलती बाँहों में मदहोश लहकते हुए जिस्म
कुंजे-गुलशन की ख़मोशी में उमंगों के हुजूम
प्यार की प्यास में खुलते हुए होंटों की पुकार
आंखों-आंखों में लगन का मुतरन्निम[5] इज़हार
फ़न की तामीर हुई है इन्हीं उनवानों से[6]
यही मक़बूल थे माज़ी के ग़ज़लख़्वानों में
इन्हीं कलियों से खिलाये गए गुलज़ार अब तक
इन्हीं झोंकों से रिवायात में[7] बाक़ी है हयात
मुनअ़कस[8] है इन्हीं आईनों में इन्सां का सबात[9]
मैं अगर इन से अलग बात करूं तो दरअसल
ये फ़क़त गर्दिशे-अय्याम नहीं है ऐ दोस्त

---

१. रचना २. सामने ३. सौन्दर्य की सृष्टि ४. रात के केशों में
५. संगीतमय ६. शीर्षकों से ७. परम्पराओं में ८. प्रतिबिम्बित
९. दृढ़ता (अस्तित्व)

हुस्न बैठा है सरे-राह भिखारी बनकर
मेरा अन्दाज़े-नज़र ख़ाम नहीं है ऐ दोस्त
चंद उड़ते हुए लम्हों की हसीं नक़्क़ाशी
मेरे फ़न का तो ये अंजाम नहीं है ऐ दोस्त
पहले मैं माहियते-हुस्न[1] तो पा लूं, वरना
हुस्नकारी कोई इल्ज़ाम नहीं है ऐ दोस्त
जिनकी तख़लीक़ से है हुस्न की क़दरों में[2] दवाम[3]
उनके हाथों की ख़राशें तो मिटा लूँ पहले

जिनकी मेहनत से इबारत है जमाले-आलम[4]
उनको आईना दिखाना भी तो फ़नकारी है
उनकी आंखों में जो शोला-सा लरज़ उठता है
उसका अहसास दिलाना भी तो फ़नकारी है
हुक्मरानों ने उक़ाबों का[5] भरा है बहरूप
भोली चिड़ियों को जगाना भी तो फ़नकारी है
खेत आबाद हैं, देहात हैं उजड़े-उजड़े
इस तफ़ावुत[6] को मिटाना भी तो फ़नकारी है
धान की फ़स्ल की तस्वीर है मेराजे-कमाल[7]
धान की फ़स्ल उठाना भी तो फ़नकारी है
कारख़ानों से उमड़ता हुआ, फ़ौलाद का शोर
तेरी तहज़ीब का इक गीत नहीं तो क्या है
चन्द सदियों के ग़ुलामों का मुकम्मिल एक्का
नौ-ए-इन्सां[8] की ये इक जीत नहीं तो क्या है

---

१. सौन्दर्य की वास्तविकता २. मूल्यों में ३. स्थायित्व ४. विश्व की सुन्दरता बनी है ५. बाज़ पक्षियों का ६. फ़र्क़, अन्तर ७. कला का शिखर ८. मानव

ज़र के ढेरों को उलटती है दरांती की ज़बां
इरतिक़ा[1] की यह इक रीत नहीं तो क्या है
लबो-रुख़सार को[2] मौज़ू-ए-सुख़न[3] ठहरा लूं
लेकिन इस रंग का माहौल[4] तो पा लूं पहले
ज़ुल्फ़ के पेच तो गिन सकता हूं लेकिन ऐ दोस्त
ज़ह्न से बारे-सलासिल[5] तो उठा लूं पहले
जिनकी तख़लीक़ से फ़नकार सबक़[6] लेता है
उनके हाथों की ख़राशें तो मिटा लूं पहले ।

---

१. विकास २. होठों और गालों को (प्रेमिका को) ३. काव्य-विषय
४. वातावरण ५. जेल की जंजीरों का बोझ ६. पाठ

फुटकर शेर

तारों का गो शुमार में आना मुहाल है।
लेकिन किसी को नींद न आये तो क्या करे ?

◇ ◇ ◇

उम्र भर रोने से रोने का सलीक़ा खो दिया।
हर नफ़स[1] के साथ ये दरिया-दिली अच्छी नहीं ॥

◇ ◇ ◇

मेरी बर्बादियों के राज़ न पूछ।
राज़ का इनकिशाफ़[2] भी है राज़ ॥

◇ ◇

रात को तारों से, दिन को ज़र्रा-हाए-ख़ाक से[3]।
कौन है, जिस से नहीं सुनते तेरा अफ़साना हम ?

◇ ◇ ◇

जकड़ी हुई है इनमें मेरी सारी कायनात।
गो देखने में नर्म हैं तेरी कलाइयां ॥

◇ ◇ ◇

तसव्वुर[4] आपका, अहसास अपना, हमरही[5] दिल की।
मुहब्बत की इस तक़सीम[6] ने मंज़िल से बहकाया ॥

◇ ◇ ◇

तू मेरी ज़िन्दगी से भी कतरा के चल दिया।
तुझ को तो मेरी मौत पे भी अख़्तियार था ॥

◇ ◇ ◇

---

१. प्राणी २. प्रकटीकरन ३. मिट्टी के ज़र्रों से ४. कल्पना ५. साथ
६. विभाजन

हंगामा मच रहा है खयालों की बज़्म में।
तू ने दबी ज़बान में जाने कहा है क्या ?

◇ ◇ ◇

भला ये कौन-सी मंज़िल है बेनियाज़ी की ?
कि आजकल मेरे होंटों पे तेरा नाम नहीं ॥

◇ ◇

नोके-मिज़गां से[1] अश्क[2] ढले और बह गये।
इक दास्तान चन्द इशारों में कह गये ॥
रुकने का नाम तक न लिया अहले-शौक़ ने।
दम लेने को जो बैठे वो बैठे ही रह गये ॥
आने का इतनी दूर से कुछ मुद्दआ तो था।
दीवाने खामशी में कोई बात कह गये ॥

◇ ◇ ◇

फिर मोड़ पे काबे के सनमखाना[3] बनेगा।
बतलाइये अब कौन न दीवाना बनेगा ॥
रहने दे अभी ताक़ पे शम्मएँ कि किसी रोज़।
खाकस्तरे - परवाना[4] से परवाना बनेगा ॥

१. पलकों की नोक से २. आंसू ३. मन्दिर ४. जले हुए परवाने की राख

जांनिसार 'अख्तर'

और दो-चार मराहिल से गुज़रना है तो क्या
अपनी मंज़िल की तरफ़ हम को चढ़े देर हुई

परिचय

बीयर का एक बड़ा-सा घूंट लेते हुए उसने कहा "प्रकाश ! मैं बम्बई से तंग आ चुका हूँ। अजीब मशीनी शहर है। दोस्त की दोस्ती पर तो क्या आदमी दुश्मन की दुश्मनी पर भी भरोसा नहीं कर सकता। तुम नहीं जानते मैं वहाँ कैसी ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ।"

अपनी पत्नी 'सफ़िया' (जो 'मजाज़' की बहिन और स्वयं एक लेखिका थी) का अचानक देहांत हो जाने और बच्चों की देख-रेख का कोई उचित प्रबंध न हो पाने से उन दिनों वह बहुत परेशान था, अतः बीयर का पहला घूंट लेते ही जब बम्बई की चर्चा छिड़ गई, जहाँ उसे बड़ी कटु परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ा था, तो वह और भी उदास हो गया।

उसकी उस उदासी को किंचित कम करने के लिए मैंने कहा "लेकिन खुद तुमने ही तो अच्छी-खासी प्रोफ़ेसर छोड़कर बम्बई का टिकट कटाया था। और फिर बम्बई में अपने बहुत से साथी हैं। इस्मत चुग़ताई हैं, कृष्णचन्द्र हैं, राजेन्द्रसिंह बेदी, सरदार जाफ़री, मजरूह सुलतानपुरी, साहिर........"

"हाँ, हाँ !" मेरी इस लम्बी सूची से बौखलाकर उसने कहा "यह सब तो ठीक है, लेकिन इससे क्या होता है ! हरेक अपने-अपने चक्कर में फँसा हुआ है—और फ़िल्म-लाइन का चक्कर तो तुम जानते हो आदमी को घनचक्कर बना देता है।" उसने बीयर का एक और लम्बा घूंट लिया और कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा "यार ! बीयर-बीयर से बात नहीं बनती, ह्विस्की चलनी चाहिये।"

ह्विस्की चलने लगी और दो-तीन पैगों के बाद कुछ सरूर में आकर उसने बम्बई के फ़िल्म-जगत की जो कहानियाँ जिस दर्द-भरे ढँग में सुनाईं वे नशा तो नशा होश तक उड़ा देने वाली थीं।

"और तो और" उसने फीकी-सी हँसी हँसते हुए कहा "फ़िल्म 'अनारकली' का सबसे मशहूर गाना 'ऐ जाने-वफ़ा आ' मेरा लिखा हुआ है, लेकिन दूसरी फ़िल्म-कम्पनियों के प्रोड्यूसर उसे किसी दूसरे शायर का कहकर मुझसे कहते हैं कि अख्तर साहब ! वैसा गाना लिखिये।"

"तुम उन्हें बताते क्यों नहीं ?"

"क्या फ़ायदा ? खाहम्खाह की झिक-झिक से क्या फ़ायदा ?"

इस "खाहम्खाह की झिक-झिक" से मुझे उसके जीवन की एक घटना याद आ गई।

एक बार वह दिन के दो बजे बम्बई के एक भरे बाज़ार में से गुज़र रहा था। कोई अपरिचित व्यक्ति उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया कि "जो कुछ तुम्हारी जेब में है मेरे हवाले कर दो, नहीं तो मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँगा।"

"वह क्यों ?" उसने सहम कर कहा।

"क्योंकि तुमने एक औरत को छेड़ा है।"

"औरत !" उसने आश्चर्य से चारों ओर देखा, क्योंकि औरत तो औरत वहाँ औरत की गंध तक न थी, और फिर वह यह भी जानता था कि औरत तो क्या वह बकरी तक को छेड़ने का साहस नहीं कर सकता। लेकिन उसने तुरंत जेब से पचास रुपये निकाल कर उस भद्र पुरुष को भेंट कर दिये और जब आगे से यह उत्तर मिला कि यह तो कम हैं, तो उसने घर से सौ रुपये और लाकर दिये और अपने कथनानुसार "खाहम्खाह की झिक-झिक" से बच गया।

◇ ◇ ◇

जांनिसार 'अख्तर' की पितृ-भूमि खैराबाद, जिला सीतापुर, (अवध) है, लेकिन जन्म उसका (१९१४ में) ग्वालियर में हुआ। प्रारंभ से ही घर का वातावरण साहित्यिक था। पिता 'मुज़तर' खैराबादी उर्दू के प्रसिद्ध शायरों में से थे, अतएव 'अख्तर' को बचपन ही से शेर कहने की धुन सवार हो गई और दस ग्यारह वर्ष की आयु में उसने नियमपूर्वक शेर लिखने शुरू कर दिये। १९३९ ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में एम० ए० करने के बाद १९४० में वह विक्टोरिया कालेज ग्वालियर में उर्दू का लैक्चरर नियुक्त हुआ, लेकिन

१९४७ के साम्प्रदायिक दंगों में त्यागपत्र देकर भोपाल चला गया और वहां हमीदिया कालेज के उर्दू-फ़ारसी विभाग का अध्यक्ष बन गया। फिर जनवरी १९५० में वहाँ से भी त्यागपत्र देकर वह बम्बई चला गया जहाँ वह अब तक है।

१९३५ तक जांनिसार की शायरी रोमांसवाद तक सीमित थी लेकिन १९३६ से उसकी शायरी की विषय-वस्तु में वैविध्यपूर्ण विशालता आने लगी, और उसी वर्ष जब साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन प्रारम्भ हुआ तो वह भी उसका समर्थक बन गया। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक एहतिशाम हुसैन ने जांनिसार 'अख्तर' की शायरी में हुए तत्कालीन परिवर्तन का विवेचन करते हुए लिखा है: "अख्तर की शायरी में प्रेम की रोमांटिक उद्भावना में धीरे-धीरे रोमांटिक क्रान्तिवाद का सम्मिश्रण होता गया, और जब सामाजिक यथार्थवाद ने शायर के दृष्टिकोण में अपना स्थान बना लिया तो उसकी दृष्टि एक यथार्थवादी की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ने लगी और जीवन और क्रान्ति की उद्भावना भी उसके लिए उसी प्रकार प्रिय बन गई जिस प्रकार नक्षत्रों की रोमांटिक उद्भावना।"

उस काल की अख्तर की क्रान्तिवादी शायरी में अंग्रेज़ साम्राज्य के विरुद्ध घोर घृणा और अपने देश की स्वाधीनता के प्रति गहरा प्रेम-भाव भरा हुआ है। उसकी शायरी ने हर क़दम और हर मोड़ पर स्वाधीनता-संग्राम का साथ दिया है। दूसरा महायुद्ध, भारतीय नेताओं के मतभेद, जनसाधारण की दुर्दशा, आर्थिक संकट, बंगाल का अकाल, मित्र राष्ट्रों की विजय, राजनीतिक स्वाधीनता, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक उपद्रव, अमरीकी और अंग्रेजी साम्राज्य के नेतृत्व में युद्ध की तैयारी और रूस के नेतृत्व में विश्व-शांति के लिए क्रियात्मक आंदोलन, चीन की क्रांति—इत्यादि समस्त राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का पूरा प्रतिबिम्ब उसकी शायरी में विद्यमान है। वह कभी भविष्य के प्रति निराश नहीं हुआ। उसकी शायरी इस भावना से संचारित हुई है कि आज का जीवन-संघर्ष चूंकि आने वाले कल के नव-निर्माण का सूचक है, इसलिए जीवन-संघर्ष की तीव्रता से घबराना नहीं चाहिये। आज उसकी शायरी में सामाजिक वास्तविकताओं का गहरा बोध है और अब उसकी विषय-वस्तु वह मानव है जो समाज और प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सुन्दर, सरस, सन्तुलित जीवन के निर्माण के लिए संघर्षशील है।

राजनीतिक-बोध की तरह जांनिसार 'अख्तर' का कलात्मक बोध भी बहुत

परिपक्व है। इसका कारण एक तो उसका काव्य-सम्बन्धी उत्तराधिकार है और दूसरे उसने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अतः कला के रचना-कौशल को पूरा महत्त्व देते हुए भी वह विषय की ऊष्णता को कम नहीं होने देता। रूप-विधान के नए प्रयोगों में भी उसने अपने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

अपने अधिकतर समकालीन शायरों की तरह 'अख़्तर' की प्रारंभिक शायरी पर भी 'जोश' मलीहाबादी का काफ़ी प्रभाव था, लेकिन धीरे-धीरे उसने स्वयं को इससे मुक्त कर लिया और रंग तथा रस के सुन्दर समन्वय से नये-नये रेखा-चित्र बनाये। 'जोश' के बाद शायरों की नई पीढ़ी में उसका नाम 'मजाज़', 'फ़ैज़', 'जज़्बी', 'मख़्दूम' आदि के साथ लिया जाता है। और संभवतः उसकी रचनाओं का भंडार अपने इन समकालीन शायरों में सबसे अधिक है।

◇ ◇ ◇

यह है जांनिसार अख़्तर ! जिसे यदि कुछ प्रदान कीजिये तो कोई धन्यवाद नहीं और यदि कुछ छीन लीजिये तो कोई निन्दा नहीं। उसके बाल उलझे हुए हैं, लेकिन वह खुश है। घिसते-घिसते चप्पल की एड़ी गायब हो चुकी है, लेकिन उसे चिन्ता नहीं। सुबह वह इसलिए उजले कपड़े पहनता है कि शाम को मैले चिकट हो जायें, और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करने की उसकी 'आकांक्षा' तो इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि अब वह किसी नियम का पालन नहीं कर सकता और आठों पहर अस्त-व्यस्त रहता है।

मराहिल[1]

एक लम्हे को कभी वक़्त की गर्दिश[2] न थमी।
रस्मे - दस्तूर[3] महो - साल[4] बदलते ही रहे॥
एक लौ, एक लगन, एक लहक दिल में लिये।
हम मुहब्बत की कठिन राह पे चलते ही रहे॥

कितने पुरपेच[5] मराहिल को किया तै हमने।
वादियां कितनी मिलीं बीच में दुशवार-गुज़ार[6]॥
सैंकड़ों संगे - राह[7], राह में हायल थे मगर।
एक लम्हे को भी टूटी न जुनूँ[8] की रफ़्तार॥

आज छाये हैं वो घनघोर अंधेरे लेकिन।
जिन में ढूंडे से भी मिलते नहीं राहों के सुराग़[9]॥
वो अंधेरे कि निकलते हुए डरती हो निगाह।
सामने हो तो नज़र आये न मंज़िल का चिराग़॥

मुझ से बदज़न[10] न हों ऐ दोस्त कि मेरी नज़रें।
क्या हुआ पेचो-ख़मे-राह में[11] उलझी हैं अगर॥
रोदे-कुहसार[12] की हर लम्हा भटकती मौजें[13]।
अपनी मंज़िल की तरफ़ ही तो रहीं गर्मे-सफ़र[14]॥

---

१. मंज़िलें २. चक्कर ३. नियमानुसार ४. महीने और वर्ष ५. पेचदार ६. कठिन ७. मार्ग के पत्थर (बाधायें) ८. उन्माद ९. चिन्ह १०. खफ़ा ११. मार्ग के पेचों में १२. पहाड़ी नदी १३. लहरें १४. गतिशील

मुझ से बरगश्ता[1] न हो तू कि मेरा दिल है वही।
क्या हुआ फ़िक्र[2] के छाये हैं जो गहरे बादल ॥
चश्मे-ज़ाहिर[3] से जो छुप जाये तो छुप जाने दे।
अब्र[4] में बुझ नहीं जाती है क़मर[5] की मशअ़ल ॥

मेरे चेहरे पे जो है वक़्त का शबगूँ परतौ[6]।
है उसी अक्स[7] से धुंदला तेरा आईना-ए-दिल[8] ॥
आ कि ये लम्हा-ए-हाज़िर[9] नहीं है अपना।
है परे आज की ज़ुल्मात से[10] अपनी मंज़िल ॥

इन धुआं-धार अंधेरों से गुज़रने के लिए।
ख़ूने-दिल से कोई मशअ़ल तो जलानी होगी ॥
इश्क़ के रफ़्ता-ओ-सरगश्ता जुनूँ[11] को ऐ दोस्त।
ज़िन्दगानी की अदा आज सिखानी होगी ॥

---

१. रुष्ट २. चिंता ३. प्रकट दृष्टि ४. बादल ५. चांद ६. अंधकारमय प्रतिबिम्ब ७. प्रतिबिम्ब ८. दिल का आईना अर्थात् निर्मल हृदय ९. वर्तमान क्षण १०. अंधेरों से ११. आवेश-पूर्ण और गतिशील उन्माद

अमन-नामा

(एक लम्बी नज़्म का कुछ भाग)

पिला साक़िया बादा-ए-ख़ानासाज़[1]
कि हिन्दुस्तां पर रहें हमको नाज़
मुहब्बत है ख़ाके-वतन[2] से हमें
मुहब्बत है अपने चमन से हमें
हमें अपनी सुबहों से शामों से प्यार
हमें अपने शहरों के नामों से प्यार
हमें प्यार अपने हर एक गांव से
घने बरगदों की घनी छांव से
हमें प्यार अपनी इमारात से[3]
हमें प्यार अपनी रिवायात से[4]
उठाये जो कोई नज़र क्या मजाल
तेरे रिंद[5] लें बढ़के आँखें निकाल
सलामत रहें अपने दश्तो-दमन[6]
रहे गुनगुनाता हमारा गगन
निगाहें हिमालय की ऊँची रहें
सदा चांद तारों को छूती रहें
रहे पाक[7] गंगोत्री की फबन
मचलती रहे ज़ुल्फ़े-गंगो-जमन[8]
रहे जगमगाता ये संगम का रूप
चमकती ख़ुनक[9] चांदनी, नर्म धूप

---

१. घर की खैंची हुई शराब (तेज़) २. देश की मट्टी ३. भवनों से ४. परम्पराओं से ५. पियक्कड़ ६. जंगल और टीले ७. पवित्र ८. गंगा-जमुना के केश ९. शीतल

झलकती रहे ये अशोका की लाट
ये गोकुल की गलियां, ये काशी के घाट
लुटाती रहें अपने नैनों का मद
ये सुबहे-बनारस, ये शामे-अवध
नहाता रहे नर्म किरनों में ताज
रहे ता-क़यामत मुहब्बत की लाज
अजनता के बुत रक़्स[1] करते रहें
हसीं ग़ार[2] तारों से भरते रहें
रहें मुस्कराती हसीं वादियां
रहें शाद[3] जंगल की शहज़ादियां
हरी खेतियाँ लहलहाती रहें
जवां लड़कियां गीत गाती रहें
लहकता रहे सब्ज़ मैदां में धान
ज़मीनों पे बिछते रहें आसमान
फ़ज़ा[4] में घटाएं गरजती रहें
जवां छागलें तट पे बजती रहें
उड़ाती रहे आंचलों को हवा
मल्हारों की बूँदों में गूँजे सदा
महकते रहें सब्ज़ आमों के बौर
बढ़ाती रहे पींग झूले की डोर
पपीहे की पी-पी तो|कोयल की कूक
उठाती रहे नर्म सीनों में हूक
दहकती रहे पाक होली की|आग
रहें खेलती नारियां पी से फाग
सदा गाये राधा कन्हैया के गुण
मचलती रहे बन में मुरली की धुन

---

१. नृत्य २. सुन्दर गुफायें ३. मगन ४. वातावरण

सलामत ये मथुरा की नगरी रहे
छलकती ये रंगों की गगरी रहे
रहे ये दिवाली की जगमग बहार
मंडेरों पे जलते दियों की क़तार
फ़ज़ा रोशनी में नहाती रहे
हमारी ज़मीं जगमगाती रहे
रहे ये बसन्तों के मेले की धूम
रहें शाद ये गीत गाते हुजूम
हसीनों के लहकें बसन्ती लिबास
रहे नर्म चेहरों पे हल्की मिठास
हसीं राखियां झलझलाती रहें
झमाझम सितारे लुटाती रहें
रहें अपने भाई पे बहनों को नाज़
ये मासूम नर्मी, ये मीठा गुदाज़[1]
घरों का तक़द्दुस[2] रहे बरक़रार
ये बेटों के माथे पे माओं का प्यार
रहे शादो-आबाद सहनों की धूम
रहें आंगनों में चहकते नजूम[3]
सलामत रहे दुल्हनों की फबन
सलामत रहें दिल में खिलते चमन
सलामत रहे अंखड़ियों की हया[4]
सलामत रहे घूंघटों की अदा
सलामत दोपट्टों की रंगीं वहार
सलामत जवां आंचलों का वक़ार[5]
सलामत रहे पाक अफ़शां[6] का नूर
सलामत रहे बींदियों का ग़रूर

१. नर्मी २. पवित्रता ३. सितारे (बच्चे) ४. लज्जा ५. शान (गौरव) ६. माथे का पवित्र सिंदूर ७. प्रकाश

सलामत रहे काजलों की लकीर
सलामत रहें नर्म नज़रों के तीर
सलामत रहे चूड़ियों की खनक
सलामत रहे कंगनों की चमक
सलामत हसीनों के सोलह सिंगार
ये जूड़े पे लिपटे चंवेली के हार
सलामत रहें मृग-नैनों के बान
सलामत रहे मरने वालों की शान
सलामत वफ़ाओं के अरमां रहें
सलामत मुहब्बत के पैमां[1] रहें
सलामत रहें हीर-रांझे के गीत
रहे हार में भी मुहब्बत की जीत
लजाना रहे, मुस्कराना रहे
मनाना रहे और रूठ जाना रहे
मुहब्बत के चश्मे उबलते रहें
जवां-साल[2] नग़मों में ढलते रहें
रहे 'जोश'[3] की शबनमी शायरी
मै-ओ-गुल की मौज़ूं हसीं साहरी[4]
दिलों पर रहे वज्द-आगीं सुकूत[5]
रहे गुनगुनाता हुआ 'मेघदूत'
रहे धूम 'टैगोरो - इक़बाल' की
रहे शान पंजाबो - बंगाल की
रहे नाम अपने अदब[6] का बुलंद[7]
दिलों में समाया रहे 'प्रेमचन्द'

---

१. प्रण २. नवीनतम ३. 'जोश' मलीहाबादी ४. शराब और फूलों की सुन्दर जादूगरी ५. नशीली चुप्पी ६. साहित्य ७. ऊंचा

कितने लम्हे कि ग़मे-ज़ीस्त के[1] तूफ़ानों में
ज़िन्दगानी की जलाये हुए बाग़ी मशअ़ल
तू मेरा अ़ज़्मे-जवां[2] बन के मेरे साथ रही

कितने लम्हे कि ग़मे-दिल से उभर कर हमने
इक नई सुबहे-मुहब्बत[3] की लगन अपनाई
सारी दुनिया के लिए, सारे ज़माने के लिए

इन्हीं लम्हों के गुलावेज़[4] शरारों का तुझे
गूंध कर आज कोई हार पहना दूं आजा
चूम कर मांग तेरी तुझ को सजा दूँ आजा।

[अख़तर ने यह नज़्म पत्नी के देहांत पर लिखी थी]

---

१. जीवन-संघर्ष (दुखों) के २. दृढ़ संकल्प ३. प्रेम के प्रभात ४. फूलों-ऐसे

क़तए

ये किस का ढलक गया है आंचल
तारों की निगाह झुक गई है,
ये किस की मचल गई हैं ज़ुल्फ़ें
जाती हुई रात रुक गई है।

◇ ◇ ◇

हुस्न का इत्र, जिस्म का संदल
आरिज़ों के[1] गुलाब, ज़ुल्फ़ का ऊद[2],
बाज़ औक़ात सोचता हूं मैं
एक ख़ुशबू है सिर्फ़ तेरा वुजूद[3]।

◇ ◇ ◇

अब्र[4] में छुप गया है आधा चांद,
चांदनी छन रही है शाख़ों से,
जैसे खिड़की का एक पट खोले,
झांकता हो कोई सलाख़ों से,

◇ ◇ ◇

यूं उसके हसीन आरिज़ों पर,
पलकों के लचक रहे हैं साये,
छिटकी हुई चांदनी में 'अख़्तर',
जैसे कोई आड़ में बुलाए।

◇ ◇ ◇

जीवन की ये छाई हुई अंधियारी रात,
क्या जानिये किस मोड़ पे छूटा तेरा साथ,
फिरता हूं डगर-डगर अकेला लेकिन,
शाने पे[5] मेरे आज तलक है तेरा हाथ।

---

१. कपोलों के २. एक सुगंधित काली लकड़ी ३. अस्तित्व ४. बादल
५. कंधे पर

चुके हैं और वह उर्दू पढ़े-लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर है।

'साहिर' लुध्यानवी को उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर कहते हुए जो मैंने शब्द 'युवक' का प्रयोग किया है तो इससे मेरा अभिप्राय एक तो यह है कि इस युवक वर्ग में अधिक संख्या मध्यवर्ग और ऊपर के मध्यवर्ग के कालेज के विद्यार्थियों की है और दूसरे यह कि उसकी शायरी का केन्द्रीय-बिन्दु 'प्रेम' है। और चूंकि इस सम्बंध में उसे आपबीती को जगबीती बनाने का बहुत अच्छा गुर आता है इसलिए हमारे युवक वर्ग को 'साहिर' की लगभग वे सब नज़्में ज़बानी याद हैं जिनमें एक असफल प्रेमी की दुखी आत्मा बेतरह छटपटाती है और टूटे हुए दिल की धड़कन बड़े कातर स्वर में गुनगुना उठती है :

जब भी राहों में नज़र आये हरीरी मलबूस[1]।
सर्द आहों में तुझे याद किया है मैंने ॥

या

तू किसी और के दामन की कली है लेकिन,
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं।
तू कहीं भी हो तेरे फूल-से आरिज़ की[2] क़सम,
तेरी पलकें मेरी आँखों पे झुकी रहती हैं।

और उसकी नज़्म 'ताजमहल' तो हर युवक-युवती के लिए 'किताबे-इश्क़' का सा दर्जा रखती है।

'साहिर' को मैंने बहुत निकट से देखा है। उससे मुलाक़ात से पहले भी मैंने 'तलखियाँ' की समस्त-नज़्मे ग़ज़लें पढ़ी थीं और कुछ अवसरों पर उसे अपने शेर सुनाते हुए भी सुना था, लेकिन उसके व्यक्तित्व के आधार पर उसकी शायरी को परखने का अवसर मुझे उस समय मिला जब १९४८ ई० में 'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाली दो मासिक पत्रिकायें) के सम्पादन के सिलसिले में हम दोनों एक साथ काम करने लगे और एक ही घर में रहने लगे।

'साहिर' अभी-अभी सोकर उठा है (सुबह दस-ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं उठता) और नियमानुसार घुटनों में सिर दिये चुपचाप किसी भी ओर निहारे चला जा रहा है (इस समय वह किसी प्रकार की गड़बड़ पसन्द नहीं करता; यहाँ तक कि उसकी अम्मी, जिसे वह बेहद चाहता है और अपने जागीर-

---

१ रेशमी लिबास २. कपोलों की

परिचय

क़द साढ़े पाँच फ़ुट, इकहरा बदन, लम्बी-लम्बी लचकीली टांगें, बड़े-बड़े सीधे बाल और चेचकी चेहरे पर उभरी हुई यह लम्बी नाक !

यह शायद १९४३-४४ की बात है कि उपरोक्त हुलिये का एक बीस-वर्षीय युवक, जिसका नाम अब्दुलहई था और जो अपने आपको उर्दू का शायर कहता था लेकिन शायर कम और किसी कालेज का विद्यार्थी अधिक मालूम होता था, सुबह दस-ग्यारह बजे से रात के दो-ढाई बजे तक लाहौर की सड़कें नापता नज़र आता था । अपनी जान-पहचान के लोगों से लेकर, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, राह चलते लोगों तक को चाय और सिग्रेट पिलाना उसकी आदत थी और इस बीच में अपनी समस्त नज़्में-ग़ज़लें, जो उसे ज़बानी याद थीं, लम्बी-चौड़ी भूमिकाओं के साथ सुनाते चले जाना शायद उसका पेशा था। लेकिन एक प्रकाशक से दूसरे प्रकाशक के यहाँ और एक मित्र से दूसरे मित्र के यहाँ सैंकड़ों चक्कर लगाने और चायपानी में सैंकड़ों रुपये लुटाने पर भी जब किसी भले-मानस ने उसका कविता-संग्रह प्रकाशित करने की हामी न भरी तो अपनी इस उत्कट अभिलाषा को मन में दबाये वह वापस लुध्याना चला गया और लोग-बाग बहुत शीघ्र उसे भूल गये ।

लुध्याने का यह विद्यार्थी आज का 'साहिर' लुध्यानवी है और उसके जिस कविता-संग्रह 'तलखियां'* को किसी प्रकाशक ने एक नज़र देखने तक का कष्ट न किया था, अब तक उसी कविता-संग्रह के नौ-दस संस्करण प्रकाशित हो

---

* प्रगति प्रकाशन (दिल्ली) से देवनागरी लिपि में भी छप चुका है ।

चुके हैं और वह उर्दू पढ़े-लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर है।

'साहिर' लुध्यानवी को उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर कहते हुए जो मैंने शब्द 'युवक' का प्रयोग किया है तो इससे मेरा अभिप्राय एक तो यह है कि इस युवक वर्ग में अधिक संख्या मध्यवर्ग और ऊपर के मध्यवर्ग के कालेज के विद्यार्थियों की है और दूसरे यह कि उसकी शायरी का केन्द्रीय-बिन्दु 'प्रेम' है। और चूंकि इस सम्बंध में उसे आपबीती को जगबीती बनाने का बहुत अच्छा गुर आता है इसलिए हमारे युवक वर्ग को 'साहिर' की लगभग वे सब नज़्में ज़बानी याद हैं जिनमें एक असफल प्रेमी की दुखी आत्मा बेतरह छटपटाती है और टूटे हुए दिल की धड़कन बड़े कातर स्वर में गुनगुना उठती है :

जब भी राहों में नज़र आये हरीरी मलबूस[1]।
सर्द आहों में तुझे याद किया है मैंने॥

या

तू किसी और के दामन की कली है लेकिन,
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं।
तू कहीं भी हो तेरे फूल-से आरिज़ की[2] क़सम,
तेरी पलकें मेरी आँखों पे झुकी रहती हैं।

और उसकी नज़्म 'ताजमहल' तो हर युवक-युवती के लिए 'किताबे-इश्क़' का सा दर्जा रखती है।

'साहिर' को मैंने बहुत निकट से देखा है। उससे मुलाक़ात से पहले भी मैंने 'तलखियाँ' की समस्त-नज़्मे ग़ज़लें पढ़ी थीं और कुछ अवसरों पर उसे अपने शेर सुनाते हुए भी सुना था, लेकिन उसके व्यक्तित्व के आधार पर उसकी शायरी को परखने का अवसर मुझे उस समय मिला जब १६४८ ई० में 'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाली दो मासिक पत्रिकायें) के सम्पादन के सिलसिले में हम दोनों एक साथ काम करने लगे और एक ही घर में रहने लगे।

'साहिर' अभी-अभी सोकर उठा है (सुबह दस-ग्यारह बजे से पहले वह कभी नहीं उठता) और नियमानुसार घुटनों में सिर दिये चुपचाप किसी भी ओर निहारे चला जा रहा है (इस समय वह किसी प्रकार की गड़बड़ पसन्द नहीं करता; यहाँ तक कि उसकी अम्मी, जिसे वह बेहद चाहता है और अपने जागीर-

---

१ रेशमी लिबास २. कपोलों की

प्रेम नारी से शुरू ज़रूर होता है, लेकिन यह प्रेम बढ़ते-बढ़ते अन्त में उस स्थान पर जा पहुँचता है जहां व्यक्तिगत प्रेम सामूहिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और शायर केवल अपनी प्रेमिका ही का नहीं, मनुष्य-मात्र का आशिक़ बन जाता है और :

तुमको खबर नहीं मगर इस सादा-लौह[१] को।
बर्बाद कर दिया तेरे दो दिन के प्यार ने॥

कहते-कहते पहले अपनी प्रेमिका से दबे स्वर में यह कहता है :

मैं और तुझ से तर्के-मुहब्बत की[२] आरज़ू ?
दीवाना कर दिया है ग़मे-रोज़गार ने[३]॥

और फिर बड़े स्पष्ट शब्दों में कह उठता है कि :

तुम्हारे ग़म के सिवा और भी तो गम हैं मुझे,
निजात[४] जिनसे मैं एक लहजा[५] पा नहीं सकता,
ये ऊंचे-ऊंचे मकानों की ड्योढ़ियों के तले,
हर एक गाम[६] पे भूखे भिखारियों की सदा,
ये कारखानों में लोहे का शोरो-गुल जिसमें,
है दफ़न लाखों ग़रीबों की रूह का नग़मा,
गली-गली में ये बिकते हुए जवां चेहरे,
हसीन आंखों में अफ़सुर्दगी[७] सी छाई हुई,
ये शोला-बार फ़ज़ाएँ[८] ये मेरे देस के लोग,
ख़रीदी जाती हैं उठती जवानियां जिनकी।

ये ग़म बहुत है मेरी ज़िन्दगी मिटाने को,
उदास रहके मेरे दिल को और रंज न दो॥

◇ ◇ ◇

"तुम्हारे ग़म के सिवा और भी तो ग़म हैं मुझे"—और यहीं पर बस नहीं, 'साहिर' की शायरी में एक ऐसा मोड़ भी आता है जब उसमें एक संघर्ष-शीलता उत्पन्न होती है। इस संघर्ष-शीलता की दबी-दबी चिंगारियां यद्यपि उसकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी मिलती हैं और जीवन की निराशाओं के साथ-साथ

१. सरल स्वभाव वाला २. प्रेम करना छोड़ देने की ३. सांसारिक चिन्ताओं ने ४. मुक्ति ५. क्षण ६. क़दम ७. उदासी ८. आग बरसाने वाला वातावरण

आशाओं और मौत के क़दमों की आहट के साथ-साथ[1] ज़िन्दगी की अंगड़ाई की झलक भी विद्यमान है लेकिन दो-टूक ढंग से वह केवल उस समय हमारे सामने आता है जब वह कहता है कि :

आज से ऐ मज़दूर किसानो ! मेरे राग तुम्हारे हैं।
फ़ाक़ाकश इन्सानो ! मेरे जोग विहाग तुम्हारे हैं ॥
जब तक तुम भूखे नंगे हो ये शोले ख़ामोश न होंगे।
जब तक बे-आराम हो तुम ये नग़मे राहतकोश[1] न होंगे ॥
तुम से क़ुव्वत[2] लेकर अब मैं तुम को राह दिखाऊँगा।
तुम परचम लहराना साथी, मैं बरबत पर गाऊँगा ॥
अब से मेरे फ़न[3] का मक़सद[4] ज़ंजीरें पिघलाना है।
आज से मैं शबनम के बदले अंगारे बरसाऊँगा ॥

लेकिन उसी 'तरक़्क़ी-पज़ीर क़ुव्वतों' (शायद इस से 'कैफ़ी' आज़मी का अभिप्राय 'मज़दूर किसान' से है) की दूरी ने उसके इस सङ्कल्प के बावजूद उसे मज़दूरों किसानों के लिये वैसी कोई रचना नहीं रचने दी जैसी रचनायें उसने मध्यवर्ग के लोगों के लिए रची हैं। मेरे विचार में 'साहिर' से इस प्रकार की कोई मांग करना उसकी सीमाओं को देखते हुए उस पर ज़्यादती करना होगा। फिर यह भी तो ज़रूरी नहीं है कि केवल मज़दूर और किसान के बारे में लिख कर ही कोई कवि या लेखक अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण दे सकता हो। यदि कोई कवि अथवा लेखक किसी कारण से अपनी सीमाओं से बाहर नहीं निकल सकता लेकिन वह सचेत तथा सूक्ष्मग्राही है तो अपनी सीमाओं में रहते हुए भी वह प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर सकता है। बल्कि इस के विपरीत यदि वह अपनी सीमाओं में रहते हुए अपनी सीमाओं से बाहर के किसी विषय पर क़लम उठायेगा, तो उसकी रचना में वह वास्तविकता और अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न नहीं हो सकेगा जो अनुभव तथा प्रेक्षण पर आधारित होता है और अनिवार्य रूप से श्रेष्ठ साहित्य का मूल।

'साहिर' का जन्म लुध्याने के एक जागीरदार घराने में ८ मार्च १९२२ को हुआ। उसकी माता के अतिरिक्त उसके पिता की कई पत्नियाँ और थीं लेकिन एकमात्र संतान होने के कारण उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार में हुआ। उस वातावरण के कारण उसमें अपनी हर उचित-अनुचित बात मनवाने, अपनी हठ पर अड़े रहने और बहुत ठाठदार जीवन व्यतीत करने की अभिरुचियाँ

---

१. सुखप्रद २. शक्ति ३. कला ४. उद्देश्य

सीना-ए-दहर के[1] नासूर हैं कुहना[2] नासूर
जज़्ब है इन में तेरे और मेरे अजदाद का[3] ख़ूं

मेरी महबूब! उन्हें भी तो मुहब्बत होगी
जिनकी सन्नाई[4] ने बख़्शी है इसे शक्ले-जमील[5]
उनके प्यारों के मक़ाबिर रहे बे-नामो-नमूद[6]
आज तक उन पे जलाई न किसी ने क़ंदील[7]

ये चमनज़ार[8], ये जमना का किनारा ये महल
ये मुनक़्क़श[9] दरो-दीवार, ये महराब, ये ताक़
इक शहनशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम ग़रीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मज़ाक़

मेरी महबूब! कहीं और मिलाकर मुझसे!

---

१. संसार की छाती के २. पुराने ३. पूर्वजों का ४. कारीगरी
५. सुन्दर रूप ६. गुमनाम ७. दिया ८. बाग़ ९. चित्रित

मता-ए-ग़ैर[1]

मेरे ख्वाबों के झरोकों को सजाने वाली।
तेरे ख्वाबों में कहीं मेरा गुज़र है कि नहीं ?
पूछ कर अपनी निगाहों से बतादे मुझको।
मेरी रातों के मुक़द्दर में[2] सहर[3] है कि नहीं ?

चार दिन की ये रफ़ाक़त[4] जो रफ़ाक़त भी नहीं।
उम्र भर के लिए आज़ार[5] हुई जाती है ॥
ज़िन्दगी यूँ तो हमेशा से परेशान सी थी।
अब तो हर सांस गिरांबार[6] हुई जाती है ॥

मेरी उजड़ी हुई नींदों के शबिस्तानों में[7]।
तू किसी ख्वाब के पैकर की तरह[8] आई है ॥
कभी अपनी सी, कभी ग़ैर नज़र आती है।
कभी इख़लास की[9] सूरत, कभी हरजाई है ॥

प्यार पर बस तो नहीं है मेरा, लेकिन फिर भी।
तू बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं ?
तूने खुद अपने तबस्सुम से जगाया है जिन्हें।
उन तमन्नाओं का इज़हार करूं या न करूं ?

तू किसी और के दामन की कली है, लेकिन।
मेरी रातें तेरी ख़ुशबू से बसी रहती हैं ॥

---

१. दूसरे की दौलत २. भाग्य में ३. प्रभात ४. साथ ५. मुसीबत
६. बोझल ७. शयनगृहों में ८. प्रतिरूप की तरह ९. सच्चे प्रेम की

तू बहुत दूर किसी अंजुमने-नाज़[1] में थी।
फिर भी महसूस किया मैंने कि तू आई है॥
और नग़मों में छुपाकर मेरे खोये हुए ख्वाब।
मेरी रूठी हुई नींदों को मना लाई है॥

रात की सतह[2] पे उभरे तेरे चेहरे के नुक़ूश[3]।
वही चुप-चाप-सी आंखें, वही सादा-सी नज़र॥
वही ढलका हुआ आंचल, वही रफ़्तार का खम[4]।
वही रह-रह के लचकता हुआ नाज़ुक पैकर[5]॥

तू मेरे पास न थी, फिर भी सहर[6] होने तक।
तेरा हर सांस, मेरे जिस्म को छूकर गुज़रा॥
क़तरा-क़तरा तेरे दीदार की शबनम टपकी।
लम्ह-लम्हा तेरी खुशबू से मुअत्तर[7] गुज़रा॥

अब यही है तुझे मंज़ूर तो ऐ जाने-बहार।
मैं तेरी राह न देखूँगा सियाह रातों में॥
ढूंढ लेंगी मेरी तरसी हुई नज़रें तुझ को।
नग़मा-ओ-शेर की उमड़ी हुई बरसातों में॥

अब तेरा प्यार सतायेगा तो मेरी हस्ती।
तेरी मस्ती भरी आवाज़ में ढल जायेगी॥
और ये रूह जो तेरे लिए बेचैन-सी है।
गीत बनकर तेरे होंटों पे मचल जायेगी।

तेरे नग़मात[8], तेरे हुस्न की ठंडक लेकर।
मेरे तपते हुए माहौल में आ जाएँगे॥
चन्द घड़ियों के लिए हो, कि हमेशा के लिए।
मेरी जागी हुई रातों को सुला जाएँगे॥

---

१. महफ़िल २. स्तर ३. नैन-नक्श ४. चाल की लचक ५. बदन
६. सुबह ७. सुगंधित ८. नग़मे

चकले

ये कूचे ये नीलाम - घर दिलकशी के,
ये लुटते हुए कारवां ज़िन्दगी के,
कहां हैं कहां हैं मुहाफ़िज़ ख़ुदी के,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहाँ हैं[1] ?

ये पुरपेच गलियां, ये बेख़्वाब बाज़ार,
ये गुमनाम राही, ये सिक्कों की झंकार,
ये अस्मत के सौदे, ये सौदों पे तकरार,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां - हैं ?

तअफ़्फ़ुन से[2] पुर नीम-रोशन ये गलियां,
ये मसली हुई अध - खिली ज़र्द कलियां,
ये बिकती हुई खोखली रंग - रलियां,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

वो उजले दरीचों में पायल की छन-छन,
तनफ़्फ़ुस की[3] उलझन पे तबले की धम-धम,
ये बेरूह कमरों में खांसी की ढन-ढन,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

ये गूंजे हुए क़हक़हे रास्तों पर,
ये चारों तरफ़ भीड़ - सी खिड़कियों पर,
ये आवाज़े खिंचते हुए आंचलों पर,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

---

१. पूर्वी देशों की पवित्रता के गुण गाने वाले कहां हैं ? २. दुर्गंध से
३. श्वासों की

ये फूलों के गजरे, ये पीकों के छींटे,
ये बेबाक नज़रें, ये 'गुस्ताख़ फ़िक़रे,
ये ढलके बदन और ये मदक़ूक़[1] चेहरे,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

ये भूखी निगाहें हसीनों की जानिब,
ये बढ़ते हुए हाथ सीनों की जानिब,
लपकते हुए पांव ज़ीनों की जानिब,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहाँ हैं ?

यहाँ पीर[2] भी आचुके हैं जवां भी,
तनूमंद[3] बेटे भी, अब्बा मियाँ भी,
ये बीवी भी है और बहिन भी है मां भी,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

मदद चाहती है ये हव्वा की बेटी,
यशोधा की हमजिंस[4], राधा की बेटी,
पयम्बर[5] की उम्मत[6], ज़ुलेख़ा की बेटी,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

बुलाओ ख़ुदायाने - दीं को[7] बुलाओ,
ये कूचे, ये गलियां, ये मन्ज़र दिखाओ,
सनाख़्वाने-तक़दीसे - मशरिक़ को लाओ,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

---

१. क्षय रोग के मारे हुए २. बूढ़े ३. कड़ियल ४. सह-जातीय ५. पैग़म्बर ६. अनुयायी समुदाय ७. धर्म के भगवानों को

फुटकर शेर

हयात[1] इक मुस्तक़िल ग़म[2] के सिवा कुछ भी नहीं।
ख़ुशी भी याद आती है, तो आंसू बन के आती है॥

◇ ◇ ◇

अपनी तबाहियों का मुझे कोई ग़म नहीं।
तुमने किसी के साथ मुहब्बत निभा तो दी॥

◇ ◇ ◇

फिर न कीजे मेरी गुस्ताख़-निगाहों[3] का गिला।
देखिये आपने फिर प्यार से देखा मुझ को॥

◇ ◇ ◇

गर ज़िन्दगी में मिल गये फिर इत्तफ़ाक़ से।
पूछेंगे अपना हाल तेरी बेबसी से हम॥

◇ ◇ ◇

अभी तक रास्ते के पेचो-ख़म से दिल धड़कता है।
मेरा ज़ौक़े-तलब शायद अभी तक ख़ाम[4] है साक़ी॥

◇ ◇ ◇

ऐ ग़मे-दुनिया तुझे क्या इल्म[5] तेरे वास्ते।
किन बहानों से तबीयत राह पर लाई गई॥

◇ ◇ ◇

अब ऐ दिले-तबाह तेरा क्या ख़याल है?
हम तो चले थे काकुले-गेती[7] सँवारने॥

---

१. जीवन २. स्थायी दुख ३. नज़रों ४. कच्चा ५. मालूम ६. संसार के केश (संसार)

'वामिक़' जौनपुरी

रबाबे-ज़िन्दगी में जितने टूटे तार होते हैं
उन्हीं को जोड़कर नग़मे मेरे तैयार होते हैं

परिचय

कहा जाता है कि एक सुहानी सुबह को जब 'बायरन' सोकर उठा तो उसे मालूम हुआ कि अपनी कविता 'Pilgrimage of Child Herold' द्वारा वह अंग्रेज़ी भाषा का एक विख्यात कवि बन चुका है। लगभग ऐसी ही एक घटना 'वामिक़' के साथ घटी। जनवरी १९४४ की एक संध्या को पूरे उर्दू जगत में उसका नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। उसका अमर गीत 'भूखा बंगाल' देश के कोनें-कोने में गाया जा रहा था। विभिन्न भाषाओं में उसका अनुवाद हो रहा था। गीत के एक-एक बोल पर बच्चे अपने खिलौने, स्त्रियाँ अपने आभूषण और पुरुष अपनी जेबों से नोट और सिक्के निकाल-निकाल कर गाने वालों के क़दमों पर डाल रहे थे। 'वामिक़' ने उसके बाद भी कई सुन्दर कलाकृतियाँ प्रस्तुत कीं जैसे 'मीना बाज़ार', 'ज़ोया तानिया', 'रात के दो बजे', 'मीरे-कारवां' (गांधी), 'तक़सीमे-पंजाब', 'ख़से-बिसमिल', 'ज़मीन' इत्यादि। लेकिन मुझे यह कहते हुए कोई संकोच नहीं हो रहा कि यदि 'वामिक़' 'भूखा बंगाल' के बाद और कुछ न लिखता तब भी आधुनिक उर्दू शायरी के इतिहास में उसका नाम मोटे अक्षरों में मौजूद रहता।

अहमद मुजतबा 'वामिक़' का जन्म १९१२ ई० में जौनपुर (यू० पी०) के एक गांव में हुआ। घर का वातावरण बिल्कुल सरकारी और जागीरदारी था। घर वाले या तो ज़मींदार-पेशा थे या अंग्रेज़ी सरकार के समर्थक तथा उच्चाधिकारी। 'वामिक़' की शिक्षा-दीक्षा उसी वातावरण में हुई और अपने बचपन में

ही उसे अपने इर्द-गिर्द होने वाले अत्याचार, अन्याय और वर्ग-संघर्ष का अनुभव होने लगा। उसके मस्तिष्क पर चोटें पड़तीं जिन्हें वह भीतर ही भीतर दबाने पर विवश होता, लेकिन इस प्रकार दबाने से उसके हृदय में विद्रोही भावनायें पनपती रहीं और आखिर प्रौढ़ होते ही पहले उसने अपना क़लम उठाया और फिर उसके क़दम भी उठ गये। उसके शायर बनने की कहानी भी काफ़ी रोचक है जिसे उसकी अपनी ज़बान से सुनिये :

"१९४० में मेरे एक मित्र ने मुझ से बड़े स्नेह से पूछा कि तुम्हें इतने ज्यादा शेर याद हैं और तुम मुश्किल से ही गद्य में बात करते हो तो फिर तुम स्वयं क्यों शेर नहीं कहते ? मैंने इस खयाल से कि कौन गद्य में जवाब देकर बात को लम्बा करे उन पर अपनी योग्यता का सिक्का जमाने के लिए वही पुराना फ़ारसी का शेर—'शेर गुफ़्तन गर्चे दुर सुफ़्तन बुअद' (शेर कहना यद्यपि मोती पिरोने से भी कठिन काम है लेकिन शेर समझना उससे भी कठिन काम है) पढ़ दिया। लेकिन महानुभाव इस आसानी से मानने वाले कब थे। हाथ धोकर पीछे पड़ गये। बात यह थी कि मैं शेर को हमेशा एक चमत्कार और शायर को कोई अलौकिक व्यक्ति समझता था और यद्यपि शेर कहने की एक दबी-दबी-सी इच्छा अपने दिल में भी पाता था लेकिन इस भावना को क्रियात्मक रूप देने का साहस कभी न किया था। उन्हें फिर समझाया कि जनाब शेर कहने के लिए चाहे दो वक़्त का खाना न मिले लेकिन इश्क़ करना बहुत जरूरी है। वे बोले, पहले शेर कहना शुरू कर दो बाद में इश्क़ भी हो जाएगा। कम से कम तुम्हारे शेर पढ़ने वाले तो तुम्हें ज़रूर आशिक़ समझने लगेंगे। मुहब्बत करने को मेरा भी दिल चाहता था इसलिए मैंने ग़ज़लें कहना (गढ़ना) शुरू कर दीं। बिल्कुल परम्परागत ढंग के पद्यों में भक्तिरस, शृंगाररस इत्यादि को अपने शेरों में समोने का प्रयत्न करने लगा। साल भर में ही मुझे अनुभव हो गया कि सचमुच मैं किसी पर आशिक़ हो गया हूँ और अपने आयु-अनुपात से मुझे जो भी अच्छी सूरत नजर आती उसे देखकर यह खयाल होता कि कहीं मैं उसी पर तो आशिक़ नहीं हूँ ? यह सिलसिला दो साल तक जारी रहा......

"उस समय दूसरा महायुद्ध पूरे जोबन पर था। सारे देश में भूख-नंग की आँधियां चल रही थीं। अंग्रेज़ी और अमरीकी सिपाही सड़कों, गलियों को रौंदते फिर रहे थे। निचले मध्य-वर्ग और निर्धनों के घर वीरान और चकले आबाद हो रहे थे......चारों ओर जीवन और उसके सुन्दर मूल्य फ़ासिज़्म के हाथों दम तोड़ रहे थे। ऐसे में मुझे लगा कि जिस प्रकार की परम्परागत

शायरी मैं कर रहा हूँ वह एक अक्षम्य नैतिक अपराध है......मैं इस परिणाम पर पहुँच गया कि साहित्य को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अब मैं केवल अपने व्यक्तिगत अनुभवों से काम ले रहा था......"

उन दिनों 'वामिक़' अपने जीवन और अपनी शायरी के उस मोड़ पर आ गया था जहाँ पहुँचकर कोई भी कलाकार नये सिरे से जन्म लेता है। वह कहता है कि वह भावुक नहीं है लेकिन वह स्वाभाविक रूप से भावुक और रसिक है। उस पर उसकी सामाजिक और राजनीतिक चेतना ने सोने पर सुहागे का काम किया और वह—

ये रंजो-खुशी खुद कुछ भी नहीं एहसासो-नज़र के धोखे हैं

कहते-कहते चीख उठा :

दरिया में तलातुम बर्पा है कश्ती का फ़साना क्या माने ?
गिरदाब[1] से जब लड़ना है तुम्हें तिनके का सहारा क्या माने ?
ये नौहा-ए-कश्ती[2] बन्द करो, खुद मौजे-तूफ़ां[3] बन जाओ।
पैरों के तले साहिल होगा, साहिल की तमन्ना क्या माने ?

समय के साथ-साथ उसमें हर अनुचित प्रतिबन्ध के प्रति विद्रोही-भावना बढ़ती गई जैसा कि वह अपनी नज़्म 'पापी' में कहता है :

जी में आता है कि क़ानूनी हदों को तोड़ दूँ,
ताक़े-जिंदाने-तमद्दुन की[4] सलाखें मोड़ दूँ,
शीशा-ए-मज़हब को संगे-मासियत से[5] फोड़ दूँ,
ऐसी हालत में भी क्या मुझसे मुहब्बत है तुम्हें ?

उसने तीन साल तक वकालत की और छोड़ दी—शायद इसलिए कि वकालत उसके समीप स्वतन्त्र और सच्चा पेशा नहीं था। फिर कुछ समय तक इधर-उधर भटकने के बाद उसने सरकारी नौकरी करली, लेकिन सात साल बाद उसे भी छोड़ दिया। उसका कहना है कि नौकरी में रहते हुए वह अपनी कला का खून होते नहीं देख सका। उसके बाद वह अपने गाँव में वापस चला गया और किसानों में काम करने लगा। इस बीच में उसने महसूस किया कि प्रगतिशील कवि जनता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ लिख रहे हैं लेकिन जनता के लिए बहुत कम अपना क़लम उठाते हैं। अतएव उसने अपने प्रांत की सहल और ग्रामीण भाषा में किसानों तथा अन्य श्रमजीवियों के लिए वहाँ की पुरानी

---

१. भंवर २. नाव के डूबने का शोकालाप ३. तूफ़ानी लहर
४. संस्कृति के कारावास की खिड़की की ५. पाप-रूपी पत्थर

शैली में आल्हा, विरहा, रसिया, कजली, चेती आदि लिखीं जिन्हें पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई। उसका कहना है कि लोक चीन के नेता 'माओ' के कला-सम्बन्धी विचारों ने उसके सिद्धांतों पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

कला के सम्बन्ध में 'वामिक़' एक अपना सिद्धांत भी रखता है। उसका कहना है कि विषय स्वयं कलात्मक अथवा अकलात्मक नहीं होता। वह तो कलाकार का दृष्टिकोण है और कहने का ढंग है जो विषय को अच्छा या बुरा बनाता है। उदाहरणतः अपने एक शेर में वह मज़दूर और किसान को इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

नज़र आ रहा है पस्ती से अरूजे-इब्ने-आदम[1]।
कि ज़मीरे-ख़ाको-आहन हुए ज़िन्दगी के महरम[2]॥

'वामिक़' ने तुकान्त नज़्में अधिक और निर्बंध तथा अतुकान्त नज़्में कम कही हैं। इस सम्बन्ध में एक स्थान पर उसने कहा था कि "निर्बंध तथा अतुकांत नज़्म लिखने के इरादे से निर्बंध तथा अतुकांत नज़्म लिखना एक अकलात्मक कार्य है। मैं जब मानसिक उलझनों और काव्य-विषय की माँगों से विवश हो जाता हूँ तो उसे निर्बंध तथा अतुकांत अथवा अर्ध निर्बंध तथा अर्ध-तुकांत रूप में प्रस्तुत करता हूँ। लेकिन इस विवशता में भी कला के तक़ाज़ों से विमुख नहीं होता। निर्बंध तथा अतुकांत शायरी में जो एक प्रकार कासपाटपन उत्पन्न हो जाने का भय होता है मैं उसे साहित्य की अन्य कला-सम्बन्धी विभूतियों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ।" मेरे विचार में अपनी इस चेष्टा के कारण ही उसकी निर्बंध तथा अतुकांत नज़्मों में नये-नये संकेत और नई-नई प्रक्रियाएँ मिलती हैं। इस रूप में उसकी संक्षिप्ततर नज़्म यह है :

मेरे एवाने-तख़य्युल[3] के सरासीमा[4] नुक़ूश,
यूँ उभरते हैं, चमकते हैं, बिखर जाते हैं,
जैसे ये चाँद ये तारे ये शिहाबे-साक़िब[5]।
ज़िन्दगी अपनी मगर पा-ए-हवादिस के तले[6],
रेंगती, डरती, सिसकती ही चली जायेगी।
मेरे हंसते हुए चेहरे पे न जाना ऐ दोस्त,

---

१. मानव-उत्थान २. मिट्टी और लोहे का अन्तःकरण (मज़दूर-किसान) जीवन के जानकार हो गये ३. कल्पना-महल ४. विक्षुब्ध ५. टूटते हुए तारे ६. दुर्घटनाओं के पैरों (बोझ) के नीचे

ज़हर को ज़हर समझ कर ही पिये बैठा हूँ,
एक अंबार दहकते हुए अंगारों का,
अपने सीनें में ब-हर-हाल लिये बैठा हूँ।

'वामिक़' उर्दू के उन शायरों में से हैं जो सामयिक विषयों पर बड़ी तेजी से क़लम चलाते हैं, लेकिन वह सामयिक विषयों पर क़लम चलाते हुए कहीं से कहीं भटक जाने वाले शायरों में से नहीं है। उसकी शायरी का प्रारम्भ ही बंगाल के अकाल ऐसे सामयिक विषय से हुआ और वह आज भी अपनी कला-निपुणता से सामयिक विषयों को सुन्दर कला-कृतियों के सांचे में ढाल रहा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसने अन्य विषय नहीं लिये। उसके दोनों कविता-संग्रहों ('चीखें' और 'जर्स') में विभिन्न विषयों की पर्याप्त मात्रा मिलती है और सच तो यह है कि कुछ स्थानों को छोड़कर उसने जिस विषय पर भी क़लम उठाया है, उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया है।

भूखा बंगाल

पूरब देस में डुग्गी बाजी फैला सुख का काल,
दुख की अग्नि कौन बुझाये सूख गये सब ताल,
जिन हाथों ने मोती रोले आज वही कंगाल रे साथी,
आज वही कंगाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पीठ से अपने पेट लगाये लाखों उल्टे खाट
भीख-मंगाई से थक-थक कर उतरे मौत के घाट
जीवन-मरन के डांडे मिलाये बैठे हैं चंडाल रे साथी
बैठे हैं चंडाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल।

नद्दी-नाले गली-डगर पर लाशों के अंबार,
जान की ऐसी महंगी शै का उलट गया व्योपार,
मुट्ठी-भर चावल से बढ़कर सस्ता है ये माल रे साथी,
सस्ता है ये माल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

कोठरियों में गांजे बैठे बनिये सारा नाज,
सुन्दर नारी भूख की मारी बेचे घर-घर लाज,
चौपट नगरी कौन संभाले चार तरफ़ भूचाल रे साथी,
चार तरफ़ भूचाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पुरखों ने घरबार लुटाया छोड़ के सब का साथ,
मायें रोईं बिलक-बिलक कर बच्चे भये अनाथ,
सदा सुहागन विधवा बाजे खोले सिर के बाल रे साथी,
खोले सिर के बाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

अत्ती-पत्ती चबा-चबा कर जूझ रहा है देश,
मौत ने कितने घूंघट मारे बदले सौ-सौ भेस,
काल बिकट फैलाय रहा है बीमारी का जाल रे साथी,
बीमारी का जाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

धरती माता की छाती में चोट लगी है कारी,
माया क़ाली के फंदे में वक़्त पड़ा है भारी,
अब तो उठ जा नींद के माते देख तो जग का हाल रे साथी,
देख तो जग का हाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

प्यारी माता चिन्ता मत कर हम हैं आने वाले,
कुन्दन-रस खेतों से तेरी गोद बसाने वाले,
ख़ून पसीना हल हंसिया से दूर करेंगे काल रे साथी,
दूर करेंगे काल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

मीना बाज़ार

मीनारों पर अज़ां हुई
ये शाम भी कहां हुई
पुजारी मन्दिरों में आके शंख फूंकने लगे
ये शाम भी कहां हुई
गजर बजा—बटन दबे
वो कुमकुमे चमक उठे
दुकानें जगमगा गईं
निगाहों में समा गईं
वो महवशाने-सीम-बर[1]
फ़ुसूं-तराज़े - रहगुज़र[2]
दरों में[3] अपने आ गईं
और अपनी कायनाते-ग़म पे खुद ही जैसे छा गईं
लबे-ख़मोश में नई कहानियां लिए हुए
रुख़ों पे[4] ग़ाज़ों से लदी जवानियां लिए हुए
तपे हुए दिमाग़ो-दिल में कितने शोले मुशतअ़ल[5]
ये वो ख़िज़ां-रसीदा[6] हैं बहार जिन से मुनफ़इल[7]
ज़माने के सुलूक से
ये तंग आके भूख से
रगड़ रही हैं एड़ियां
मज़ल्लतों के[8] ग़ार में

---

१. चन्द्रमुखी और चांदी ऐसे बदन वाली सुन्दरियां २. रास्ते में जादू बिखेरने वाली ३. दरवाज़ों में ४. चेहरों पर ५. भड़क रहे ६. पतझड़ की मारी हुई ७. लज्जित ८. तुच्छताओं, हीनताओं के

और इन्तक़ाम के लिए
खड़ी हैं इन्तज़ार में
समाज की ये बेटियां
समाज ही की बीवियां
नज़र के तेज़ भालों से
शराब के पियालों से
फ़रिश्तों से शरीफ़-तर
ज़मीं के रहने वालों से
खिराजे - हुस्न पायेंगी
हँसेंगी और हँसायेंगी
ये वो हैं जिनकी ज़िन्दगी
मुसर्रतों से दूर है
ये वो हैं जिनकी हर हँसी
जराहतों से[1] चूर है
ये वो हैं जिनका घर बुलंदियों पे रह के पस्त है
ये वो हैं जिनकी फ़तह भी शिकस्त ही शिकस्त है
मगर इन्हीं पे संगसारियों[2] का हुक्म आम है
"वुजूद में ये कब से और किस तरह से आ गईं ?"
जवाब इसका फिर मिलेगा ये तो वक़्ते-शाम है
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई ?
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहाँ ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हमको छोड़कर
मगर दिले-हज़ीं ठहर

---

१. घावों से २. व्यभिचारिणी को पत्थर मार-मारकर मार डालने की प्राचीन परम्परा

वो सामने दोराहे पर
ये कैसा अज़दहाम[१] है
ये कैसा इन्तज़ाम है
ये बादे-पा[२] सवारियों पे कैसा एहतमाम है
उरूसी धूम - धाम[३] है
ये बेबसी की रुख़सती
उजाले में ये तीरगी[४]
सदाए-नै[५] से किस की हर फ़ुग़ां[६] लिपट के रह गई
ये शाम भी कहां हुई
अभी अभी जवानसाल
एक ज़िन्दा लाश को
हरीर[७] में लपेट कर
मुसर्रतों के दोश पर[८]
किसी तिलाई[९] कुहनासाल[१०] मक़बरे को सौंपने
ये लोग ले के जायेंगे
और इसके बाद होगा क्या
ये लोग भूल जायेंगे
किसी ने ग़ैज़[११] में कहा
"ये कौन बद - शुगून है
ज़बान इसकी खेंच लो
ग़रीबे-शहर[१२] हो कोई
तो शहर से निकाल दो"
उधर निगाहे - अहरमन[१३]
हवेलियों पे खंदाज़न[१४]

---

१. जमघटा २. हवा से बातें करने वाली ३. विवाह की धूम-धाम ४. अन्धकार ५. शहनाई की आवाज़ ६. विलाप ७. रेशम ८. कांधों ९. सुनहले १०. पुराने ११. क्रोध १२. परदेसी १३. नागधारी देवता की दृष्टि १४. हँस रहा है

इधर सवादे-वक़्त पर[१]
उम्मीदो-बीम की[२] किरन
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हम को छोड़ कर
किधर से आ गया किधर
ये तंगो - तार[३] रास्ते
मगर ये किस की चीख़ पर
क़दम हमारे रुक गये
किसी निहानख़ाने[४] का लुटा हुआ शबाब है
कि हाथ में समाज के शिकस्ता इक रबाब है
मुग़न्नियों को[५] दो ख़बर
कि इस के तार-तार में
दबे हुए शरार में
न जाने कौन राग है
न जाने कितनी आग है
मगर ये किस के वास्ते
ये तंगो - तार रास्ते
सदाओं पर सदायें[६] दीं
यहां पर अब कोई नहीं
बस इस चिराग़ झिलमिला रहा था वो भी बुझ गया
पलक लरज़[७] के रह गई
और इक निगाहे - वापसी[८]

---

१. समय रूपी नगर पर २. आशा और निराशा की ३. तंग और अंधेरे
४. गुप्त स्थान ५. संगीतकारों को ६. आवाज़ों पर आवाज़ें ७. कांप
८. पलटती हुई नज़र

फ़साने कितने कह गई
चिता भी खाक हो चुकी
जवानी खून रो चुकी
ये कौन शै दबे क़दम ठिठक के दूर हट गई
दरिंदे चढ़ते आ रहे हैं मरघटों की राह में
सियाही बढ़ती जा रही है फ़िक्र में, निगाह में
ये मुख़्तसर सी दास्तां
और इस में इतनी तलखियां
तलू-ए-शव[1] में अलअमां[2]
ये आधी रात का समां
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हम को छोड़ कर ।

---

१. संध्या समय २. हे भगवान !

परिचय

'तावां' मेरा बहुत प्रिय मित्र है, इसलिए उसके विषय में कुछ लिखते हुए मैं डर सा रहा हूँ कि कहीं मेरी यह मित्रता उसके और मेरे दोनों के पक्ष में अहितकर सिद्ध न हो।

मेरी उसकी मित्रता आज से छः सात साल पहले उन दिनों हुई जब फ़तहगढ़ (उत्तर-प्रदेश) जेल से रिहा होकर और अपना वकालत का पेशा त्याग कर वह मकतबा जामिया (जामियानगर) में काम करने के लिये दिल्ली आया था। पहली बार मैंने उसे एक साहित्यिक बैठक में देखा और मैंने देखा कि उसकी उपस्थिति में सभा के सदस्य एक विचित्र प्रकार का हीनता-भाव अनुभव कर रहे हैं। कारण इसका यह नहीं था कि वह कोई बहुत बड़ा और बहुत प्रसिद्ध शायर था बल्कि इसका कारण उसका छः फुट का क़द, भरा-भरा बदन, सफ़ेद और सुर्ख रंग, सिर पर सियाह, सफ़ेद और सुनहले बालों का यह बड़ा छत्ता, आँखों पर चढ़ा बल्कि मढ़ा हुआ सियाह चश्मा और मुंह में दबा हुआ आयरिश पाइप था और यों शायर की बजाय वह सेना का कोई जनरल दिखाई देता था, जिससे उसके मातहत लोग तो भय खाते ही हैं, आम नागरिक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेकिन यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है तो मुझे अच्छी तरह याद है कि दो-तीन मुलाक़ातों में ही पहले इस सैनिक के तमग़े, फिर वर्दी यहाँ तक कि खोल की तरह चेहरे का रोब भी उतर गया और भीतर से एक अत्यन्त अहानिकारक, सहानुभूतिपूर्ण और कोमल-आत्मा निकल आई। और आज केवल मैं ही उसे पसन्द नहीं करता, वह

दिल्ली के पूरे सांस्कृतिक क्षेत्र में बड़ी प्रियता की दृष्टि से देखा जाता है।

शरीर तथा आत्मा का यह अंतर उसके अपने पक्ष में, उस संस्था के पक्ष में जिसमें वह काम करता है, और उस साहित्यिक आंदोलन के पक्ष में, जिससे वह तन-मन से सम्बंधित है, बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आप उसके ज़िम्मे कोई कठिन से कठिन कार्य डाल दीजिये, किसी सरकारी अफ़सर से ऐसा घी लाने को कह दीजिये जो टेढ़ी उंगलियों से भी न निकलता हो, किसी ऐसे व्यक्ति से भिड़ा दीजिये जो उसके सिद्धांतों का कट्टर विरोधी हो और किसी ऐसी सभा में भेज दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य किसी ग़लतफ़हमी के आधार पर एक-दूसरे का शत्रु बना बैठा हो, वह चुटकियों में सब को राम कर लेगा।

दूसरों को राम करने का यह सिलसिला, जो आज इस स्तर पर पहुँच चुका है कि उसे कभी मात नहीं होती, बहुत पहले से शुरू हो चुका है, उस समय से, जब वह अभी बच्चा ही था और उसे प्रायः मात हुआ करती थी। उसका घराना एक जागीरदार घराना[1] था। पिता 'ख़ान साहब' थे और बड़े भाई 'ख़ान बहादुर', लेकिन बड़े मियाँ सो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुबहानअल्ला के विपरीत 'छोटे मियाँ' कांग्रेस के जलसों-वलसों में जा पहुँचते थे। घर में लगे हुए अंग्रेज़ अधिकारियों के चित्रों की आँखें फोड़ देते थे और फिर पाठशाला के ज़माने में तो छोटे मियाँ और भी गुल खिलाने लगे। एक बार फरुख़ाबाद के मिशन स्कूल से छुट्टियाँ बिताने घर आये हुए थे कि उन्हीं दिनों डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का तबादला हो गया और चूँकि उसे क़ायमगंज से होकर गुज़रना था, इसलिए क़ायमगंज के इस अंग्रेज़-दोस्त खानदान ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब के सम्मान में स्टेशन पर चाय की दावत का प्रबन्ध किया और घर के सब लोगों को सख़्त ताक़ीद कर दी कि वे ग़ुलाम रब्बानी पर कड़ी नज़र रखें ताकि वह स्टेशन पर न पहुँचने पाए। उसे स्टेशन पर तो न जाने दिया गया लेकिन जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट महोदय ने चाय की प्याली होंटों से लगाई तो ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी बिच्छू ने उन्हें डंक मार दिया हो। 'छोटे मियाँ' ने स्टेशन भेजी जाने वाली शक्कर का डब्बा साल्ट आफ़ मैगनेशिया से भर दिया था।

अंग्रेज़-शासकों के प्रति घृणा के इस विष को मन में दबाये ग़ुलाम रब्बानी शिक्षा ग्रहण करता रहा। घर के प्राणी उसे डाँटने-डपटने के साथ-साथ इस विचार से प्रसन्न भी होते रहे कि पूरे ख़ानदान में वही पहला व्यक्ति था जो

---

१. 'ताबां' १४ फरवरी १९१४ को पितौरा (गाँव) क़ायमगंज, ज़िला फ़रुख़ाबाद के एक आफ़रीदी पठान घराने में पैदा हुआ।

हैं और जब हम रुक जाते है तो नज़्म के प्रवाह में कमी आ जाती है और मस्तिष्क को झटका लगता है।

इसके अतिरिक्त मुझे 'तावां' से एक और शिकायत है और वह है उसका सामयिक विषयों पर अधिक लिखना। इस प्रसंग में तर्क करने पर यद्यपि वह मेरी सन्तुष्टि कर देता है (मैं पहले कह चुका हूँ कि उसके पास प्रभावित करने का एक अत्यन्त उपयुक्त शस्त्र उसके श्वेत बाल और जरनैली शरीर है) फिर भी मेरी सन्तुष्टि नहीं होती। 'तावां' या आप इसे मेरी ढिठाई कह सकते हैं। विश्व-साहित्य में से कुछ उदाहरण और रूसी लेखक इलिया अहरनबर्ग ऐसे साहित्यकारों के इस प्रकार के कथनों का उदाहरण देकर :

> "एक लेखक को शताब्दियों के लिए ही न लिखना चाहिये, उसे एक संक्षिप्त क्षण के लिए भी लिखने का ढंग आना चाहिये—ऐसा क्षण जिस पर किसी जाति के भाग्य का आधार हो..."

आप कह सकते हैं कि लेखक अथवा कवि अपने समय का इतिहासकार होता है (और इससे मुझे भी इन्कार नहीं) लेकिन मेरे समीप लेखक अथवा कवि, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ बाद में होता है, पहले लेखक अथवा कवि होता है। मैं साहित्य के जड़ मूल्यों का पक्षपाती नहीं हूँ जिन्हें कुछ लोग साहित्य के 'स्थायी मूल्यों' का नाम देते हैं; न मुझे इससे इन्कार है कि कोई विषय अपने आप में अच्छा बुरा, तुच्छ या महान नहीं होता, यह लेखक अथवा कवि की कला-क्षमता है जो उसे छोटा या बड़ा बनाती है और कल्याणकारी साहित्य का तो मैं बहरहाल पक्षपाती हूँ लेकिन 'तावां' से मुझे शिकायत यह है कि पर्याप्त कला-मर्मज्ञता रखने पर भी वह व्यक्तिगत् अनुभवों तथा प्रेक्षण की नींव पर बहुत कम शेरों की रचना करता है और बंगाल-अकाल, फ़िसाद, इन्डोनेशिया, कोरिया, वीतनाम, मिश्र, ईरान, रोज़नबर्ग और स्टालिन आदि की मृत्यु ऐसी घटनाओं की प्रतीक्षा अधिक करता है। और मुझे डर है कि यह प्रतीक्षा धीरे-धीरे उसे उस स्तर पर न ले जाये जहाँ लेखक अथवा कवि अनुभव तथा प्रेक्षण की प्रसव-पीड़ा से बचने के प्रयत्न में मनोवेग का शिकार होकर रह जाता है और यों लेखक अथवा कवि कहलाने की अपेक्षा राजनीतिज्ञ कहलवाने का अधिक हक़दार बन जाता है।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं मानेगा और वही करेगा जिसे वह स्वयं ठीक समझता है और मैं यह भी जानता हूँ कि यह लेख पढ़ने के बाद

जब वह इस प्रसंग में मुझसे बहस करेगा तो मैं उसकी हाँ में हाँ मिलाने पर विवश हो जाऊँगा।

तीन वर्ष पूर्व लिखा हुआ यह लेख छपने से पहले मैंने 'तावां' को भेजा। लेख के साथ-साथ इस संकलन के लिए चुनी हुई उसकी रचनायें भी। उत्तर में उसने अपनी इधर की कुछ रचनायें मुझे भेजीं और लिखा :

"कुछ नज़्में और ग़ज़लें भेज रहा हूँ। पिछली तीनों ग़ज़लें निकाल दो और उनकी बजाय ये ग़ज़लें शामिल कर लो। नज़्मों में से 'दीवाली' और 'मिस्र' को न निकालो तो अच्छा है। इस तब्दीली की रोशनी में तुम्हें अपने मज़मून (लेख) में कवितायें खासी तब्दील करनी होंगी। कम-अज़-कम वह हिस्सा जहाँ तुमने 'दवामी' (स्थायी) और हंगामी (सामयिक) मौज़ूआत (विषयों) पर बहस की है। मैं आज भी दवामी और हंगामी मौज़ू के मुतअल्लिक़ वही राय रखता हूँ। दवामी और हंगामी अदब का तअल्लुक़ मौज़ू से नहीं बल्कि फ़ॉर्म से है। अदबे-दवामी 'क्या कहा है ?' से नहीं 'कैसे कहा है ?' से बनता है।। बहरहाल यह बहस फिर होती रहेगी। इस वक्त तो इतना काफ़ी है कि तुम्हें नये इंतिख़ाब (चयन) की रोशनी में मज़मून तब्दील करना चाहिये।"

मज़मून मैंने तब्दील नहीं किया। उसकी कुछ रचनायें अवश्य तब्दील कर दी हैं।

मिश्र (मिश्र देश)

कितनी सदियों से अबुलहौल[1] पे तारी था जमूद,
जैसे अहराम[2] के साये में पड़ा सोता था।
अहदे-हाज़िर का[3] अबुलहौल—फ़िरंगी ज़रदार,
वादी-ए-नील में तखरीब[4] का विष बोता था।

जिस तरह रूप भरे खिज्र[5] का कोई रहज़न[6],
चहरा-ए-खिज्र पे थी हुस्ने-तअल्लुक़[7] की निक़ाब।
कितने यूसुफ़ बिके सरमाये के बाज़ारों में,
लुट गया कितनी ज़ुलेखाओं[8] का अनमोल शबाब।

आज इदराके - हक़ीक़त[9] की मसीहाई[10] से,
जां पड़ी जज़्बा-ए-मिल्ली की[11] ममी[12] में जैसे।
जंगे - आज़ादी ने ऐ दोस्त किया है पैदा,
रब्ते-ताज़ा[13] अरबी[14] और अजमी[15] में जैसे।

अब तहफ़्फ़ुज़[16] के तराने हों कि इमदाद के राग,
"कोई जामा[17] हो छुपेगा नहीं क़द का अंदाज़।"
गीत के बोल बदल जाने से क्या होता है ?
वही इफ़रीत[18] का नग़मा वही इबलीस[19] का साज़।

---

१. फ़राऊन युग में बना हुआ बुत जिस का चेहरा तो मनुष्य का है लेकिन धड़ शेर का २. मिश्र देश के बड़े-बड़े मीनार (जिनमें ममियां बंद हैं) ३. वर्तमान काल का ४. तोड़-फोड़ ५. एक पैग़ंबर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ६. डाकू ७. सुन्दर सम्बंध ८. अज़ीज़े-मिश्र की पत्नी जो यूसुफ़ पर आशिक़ हो गई थी ९. वास्तविकता की पहचान १०. मुर्दे को ज़िन्दगी प्रदान करने का काम ११. राष्ट्रीयता के जज़्बे की १२. वह शव जिन्हें मसाला लगा कर संभाल कर रखा जाता है। १३. नया सम्बन्ध १४. अरब-निवासी १५. वे जो अरब निवासी नहीं हैं १६. रक्षा १७. लिबास १८. भूत १९. शैतान

साफ़ बतलाते हैं ये अहले-जुनूँ के[1] तेवर,
सरनगूं होने को है तौक़ो-सलासिल का निज़ाम[2]।
मुन्तज़िर नील है खोले हुए मौजों का किनार,
आज फ़रऊन[3] फ़िरंगी है तो मूसा है अवाम।

---

१. उन्मत्त लोगों के २. जंजीरें और गले में लोहे के पट्टे डालने वाली व्यवस्था ३. मूसा के ज़माने का मिस्र का बादशाह (बहुत घमंडी)

ग़ज़लें

कूचा-ए-शौक़[1] रहे-फ़िक्रो-नज़र[2] से गुज़रे।
नक़्शे-पा[3] छोड़ गये हम तो जिधर से गुज़रे॥
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन।
मैकदे[4] राह में हायल थे[5] जिधर से गुज़रे॥
ये वो मंज़िल है कि इलियास[6] भी गुम खिज्र[7] भी गुम।
हाए आवारगी-ए-शौक़[8] किधर से गुज़रे॥
ज़ाहिदो-शैख़ में[9] क्या-क्या न हुई सरगोशी।
मैकदे जाते हुए हम जो उधर से गुज़रे॥
आज 'तावां' दिले-मरहूम[10] बहुत याद आया।
बाद मुद्दत के जब उस राह-गुज़र[11] से गुज़रे॥

◇ ◇ ◇

भर आई आंख तो अक्सर किसी के नाम के साथ।
मगर वो अश्क[12] जो छलका किये हैं जाम के साथ॥
महे-तमाम की[13] बातें महे-तमाम के साथ॥
वो रात हो गई मन्सूब[14] उनके नाम के साथ॥
क़फ़स में रह के भी अक्सर बहार का दामन।
नज़र से चूम लिया हमने एहतराम[15] के साथ॥
चमन पे साया-ए-अब्रे-बहार[16] क्या कहिये।
वो जुल्फ़ रुख पे[17] बिखरती है इल्तज़ाम[18] के साथ॥
कोई समझ न सका राज़े-दिलबरी 'तावां'।
ये लुत्फ़े-खास[19] है इक शाने-इंतिक़ाम के साथ॥

---

१. प्रेमिका की गली २. चिंतन-मार्ग ३. पदचिन्ह ४. मधुशालाए ५. मार्ग में पड़ते थे ६-७. पैग़म्बरों के नाम (पथ-प्रदर्शक) ८. जिज्ञासा (इश्क़) सम्बंधी आवारगी ९. धर्मोपदेशकों में १०. मरा हुआ दिल (जो कभी आशिक़ होने के कारण जीवित था) ११. मार्ग (प्रेमिका की गली) १२. आंसू १३. पूरे चांद की १४. सम्बंधित १५. श्रद्धा १६. बहार के बादलों की छाया १७. चेहरे पर १८. अनिवार्य रूप से १९. विशेष अनुकम्पा

जगन्नाथ 'आज़ाद'

जहां ज़ुल्मत का मरकज़, आंधियों का आशियाना है
वहां 'आज़ाद' पैग़ामे-चिराग़ां ले के आया हूं

परिचय

जगन्नाथ 'आज़ाद' की शायरी के सम्बन्ध में इस समय मेरे सम्मुख 'जोश' मलीहाबादी, 'फ़िराक़' गोरखपुरी, एहतिशाम हुसैन, ख़्वाजा अहमद अब्बास और बहुत से अन्य साहित्यकारों की रायें रखी हैं और मुझे समझ नहीं आ रही है कि मैं 'आज़ाद' के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के सम्बन्ध में अपने इस लेख की शुरूआत कहाँ से करूँ?

'जोश' मलीहाबादी की नज़र में 'आज़ाद' इस संसार के हंगामों का एक निश्चित दर्शक या एक अनुत्तरदायी संगीतधर्मी शायर की तरह अध्ययन नहीं करता बल्कि वह परिस्थितियों की आत्मा में डूबकर मानव-जीवन का गहरी नज़र से प्रेक्षण कर ऐसी शायरी करता है जो रोचक भी होती है और मानव जाति के लिए हितकर भी।

'फ़िराक़' गोरखपुरी के शब्दों में 'आज़ाद' की शायरी किताबी नहीं, बल्कि ज़िन्दगी की आवाज़ है। एक चोट खाये हुए और सोचने वाले दिल की पुकार!

एहतिशाम हुसैन उसे आधुनिक काल के सफल उर्दू शायरों की तरह जीवन की समस्याओं को शायरी के साँचे में सुरीति से ढालने वाला शायर कहता है और उसकी शैली में रचाव के साथ-साथ कहीं-कहीं व्यंग की झलक भी देखता है।

और ख़्वाजा अहमद अब्बास की राय में 'आज़ाद' अपनी नज़्मों और ग़ज़लों में प्रोपेगंडा के घटिया नारे नहीं लगाता। उसके रोमांटिक शेरों में भी

अवसन्नता नहीं होती और न ही वह कभी राजनीतिक आवश्यकता से शेर का गला घोंटता है।

प्रत्यक्ष है कि इन मतों के बाद 'आज़ाद' की शायरी के बारे में कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती; लेकिन मेरे लेख का विषय चूंकि 'आज़ाद' की शायरी के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी है इसलिए इन मतों को उनके स्थान पर छोड़ते हुए मैं उस 'आज़ाद' की ओर देखता हूँ जो 'आज़ाद' की बजाय कभी केवल जगन्नाथ था। पश्चिमी पंजाब में सिंध नदी के उस पार एक छोटा-सा शहर है ईसाखील। उसी ईसाखील में ५ दिसम्बर १९१८ को उसका जन्म हुआ। पिता तिलोकचंद 'महरूम' स्वयं एक प्रसिद्ध शायर थे (हैं) इसलिए जगन्नाथ को जगन्नाथ 'आज़ाद' बनने में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। अपनी काव्य-अभिरुचि के प्रारम्भ के बारे में स्वयं उसने एक जगह लिखा है कि :

"पाँच वर्ष का था जब पिता का तबादला ईसाखील से कलोरकोट के स्कूल में हो गया। ईसाखील से कलोरकोट जाने के लिए काला बाग के स्थान पर सिंध नदी पार करनी पड़ती है। हमारी नाव चली ही थी कि पहाड़ पर बने हुए मकानों को देखकर पिता ने कहा :

पहाड़ों के ऊपर बने हैं मकां।

और मुझसे गिरह (दूसरी पंक्ति) लगाने को कहा। मैंने तुरन्त गिरह लगाई :

अजब इनकी सूरत अजब इनकी शां।

पिता ने कहा 'सूरत' नहीं 'शौकत' कहो। उस समय तो मैं सूरत और शौकत का भेद न समझ सका लेकिन कुछ समय के बाद जब मैंने दोनों शब्दों का फ़र्क़ जान लिया तो मुझे पता चला कि शेर कहने में नेतृत्व और परामर्श का महत्व कितना अधिक होता है।"

इसी नेतृत्व और परामर्श के महत्व को समझ लेने से अपने कालेज के ज़माने (लाहौर) में उसने डाक्टर 'इक़बाल', सय्यद आबिदअली 'आबिद', सूफ़ी गुलाम मुस्तफ़ा 'तबस्सुम' और डाक्टर सय्यद मोहम्मद अब्दुल्ला ऐसे साहित्यकारों की शरण ली और डाक्टर 'इक़बाल' की शायरी से तो वह इतना प्रभावित हुआ कि उसकी आज की शायरी में भी 'इक़बाल' का लबो-लहजा देखा जा सकता है।

कलोरकोट से आठवीं और मियांवाली से दसवीं श्रेणी की परीक्षा पास

करने के बाद १६३३ ई० में जब वह उच्च शिक्षा के लिए रावलपिंडी आया और उसके पिता ने भी कोशिश करके अपना तबादला वहाँ करवा लिया तो तीन वर्ष तक उसे पिता के मित्रों अब्दुलहमीद 'अदम' और अब्दुलअज़ीज़ 'फ़ितरत' ऐसे सिद्धहस्त शायरों की महफ़िल में उठने-बैठने का अवसर मिला और उन लोगों की साहित्य-सम्बन्धी चर्चा से उसने पूरे उर्दू जगत का चित्र देख लिया। उस ज़माने में उसने अपने कालेज में एक साहित्य-सभा (बज़्मे-अदब) की नींव डाली और कालेज मैगज़ीन का संपादन भी किया। कालेज मैगज़ीन में तो ख़ैर उसकी रचनाओं को प्रकाशित होना ही था लेकिन कलात्मक रूप से चूँकि उसके शेरों में दूसरे तरुण शायरों की अपेक्षा अधिक पटुता होती थी इसलिए मौलाना सलाहुद्दीन अहमद और दयानारायण 'निगम' ऐसे संपादकों ने 'अदबी दुनिया' और 'ज़माना' में उसकी रचनाओं को उचित स्थान दे उसको प्रोत्साहन दिया और यह सिलसिला उसके ओरिएंटल कालेज लाहौर से एम. ए. करने के बाद तक जारी रहा।

यहाँ मैं एक बात कहने का साहस करना चाहता हूँ कि कलात्मक पटुता के बावजूद उसकी उन दिनों की शायरी में उसकी सामाजिक सूझ-बूझ का कुछ पता नहीं चलता था और उसकी अधिकतर नज़्में ठीक वैसी ही होती थीं जैसी हम आज भी दैनिक पत्रों में प्रतिदिन देखते हैं और शायद इसीलिए 'अदबे-लतीफ़' और 'सवेरा' उच्चकोटि की उर्दू पत्रिकाओं के संपादकों ने उन दिनों उसकी कोई नज़्म या ग़ज़ल प्रकाशनार्थ स्वीकार नहीं की और व्यंग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार तो उन दिनों 'आज़ाद' का हर दूसरा शेर पहले शेर की पैरोडी होता था।

लेकिन कभी-कभी मनुष्य के जीवन में केवल एक घटना या दुर्घटना उसके जीवन के धारे को मोड़कर रख देती है और उस एक कचोके से ही आत्मालोचन की क्षमता उत्पन्न हो जाने से उसे अपनी त्रुटियां स्वीकार करते हुए कोई झिझक नहीं होती और अपने गुणों को वह और अधिक निखारने का प्रयत्न करने लगता है।

१६४६ में भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके दो टुकड़े कर दिए गए और हज़ारों-लाखों लोग न केवल बेघर हो गए बल्कि उन्होंने एक-दूसरे के ख़ून से ऐसी होली खेली जिसका उदाहरण पूरे विश्व-इतिहास में नहीं मिलता और स्वयं 'आज़ाद' भी इस गड़बड़ और रक्तपात का शिकार हुआ और उसे अपना प्यारा देश छोड़ना पड़ा। और सैकड़ों कष्ट झेलता हुआ जब वह दिल्ली पहुँचा

तो उसके मस्तिष्क में एक प्रश्न उत्पन्न हुआ :

"क्यों ?"

"ये सब क्यों ?"

और हम देखते हैं कि शीघ्र ही उसने न केवल इस 'क्यों' का उत्तर पा लिया बल्कि अपनी रचनाओं द्वारा उसने इसका ठीक-ठीक उत्तर भी प्रस्तुत किया। अतएव यदि मैं यह कहूँ कि सही अर्थों में 'आज़ाद' की शायरी का प्रारम्भ १९४७ के बाद हुआ और विशेषकर इस प्रकार के शेरों के साथ :

> अभी तो चश्मे-इबरत वक़्त की रफ़्तार देखेगी।
> अभी ये किस तरह कह दें सितमरानों पे[1] क्या गुज़री ?

तो मैं समझता हूँ मैं किसी ग़लत-बयानी से काम नहीं ले रहा।

'आज़ाद' से मैं लाहौर में भी अक्सर मिलता रहा हूँ और यहाँ दिल्ली में तो आए दिन उससे मुलाक़ातें रहती हैं लेकिन मुझे १९४९ की वह शाम कभी नहीं भूलती जब देश-विभाजन के बाद हम पहली बार दिल्ली में एक-दूसरे से मिले थे और उसके साधारण से वस्त्र और मोरी गेट के इलाक़े में छोटा-सा अन्धकारमय मकान देखकर मैंने उससे पूछा था :

"यह तुम्हें क्या हो गया है ?"

और उसने व्यंग्य की हँसी हँसते हुए (जिसे मैंने पहले कभी उसके होठों पर नहीं देखा था) कहा था "और तुम्हें क्या हो गया है ?"

उस समय मैं समझता था कि वह केवल अपनी झिझक दूर कर रहा है क्योंकि देखने में मुझे कुछ नहीं हुआ था, मैंने काफ़ी अच्छे वस्त्र पहन रखे थे और एक अच्छे मकान में रहता था। लेकिन फिर मेरे कहने पर जब उसने अपनी कुछ-एक नज़्में मुझे सुनाईं तो मुझे अनुभव हुआ कि यदि सचमुच मुझे कुछ नहीं हुआ है तो मैं झूठ बोल रहा हूँ।

आज जगन्नाथ 'आज़ाद' भारत सरकार के इन्फ़रमेशन ब्यूरो में इन्फ़रमेशन अफ़सर है। अच्छा लिबास पहनता है, अच्छा खाना खाता है और अच्छे घर में रहता है, लेकिन इस परिवर्तन में और उस परिवर्तन में जो भारत-विभाजन के बाद उसमें पैदा हुआ था, धरती-आकाश का अन्तर है। आज किसी साहित्य-सभा में चुपचाप बैठने या केवल पिंगल आदि पर बातचीत करने की बजाए वह जीवन और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध पर बहस

१. अत्याचारियों पर

सैद्धान्तिक वहस करता है और उसने जान लिया है कि :

जिस नज़्म में मौजूद न फ़र्दा[1] की तड़प हो।
वो नज़्म है 'आज़ाद' फ़क़त[2] मर्सिया-ख्वानी[3] ॥

और यही कारण है कि छः-सात वर्ष के इस संक्षिप्त से काल में ही उसने आधुनिक उर्दू शायरी में अपना एक विशेष स्थान वना लिया है और वड़ी से वड़ी पत्रिकाओं के सम्पादक उसकी रचनाओं को वड़े गौरव से प्रकाशित करते हैं।

१. भविष्य २. केवल ३. शोकगाथा

१५ अगस्त १९४७ ई०

न पूछो जब बहार आई तो दीवानों पे क्या गुज़री ?
ज़रा देखो कि इस मौसम में फ़रज़ानों[१] पे क्या गुज़री ?
बहार आते ही टकराने लगे क्यों साग़रो-मीना ?
बता ऐ पीरे-मैख़ाना ! ये मैख़ानों पे क्या गुज़री ?
फ़ज़ा में हर तरफ़ क्यों धज्जियां आवारा हैं उनको ?
जुनूने - सरफ़रोशी तेरे अफ़सानों पे क्या गुज़री ?
विसाले-शम्मअ़[२] की हसरत में सब बेताब फिरते थे।
मैं क्या जानूं हज़ूरे-शम्मअ़ परवानों पे क्या गुज़री ?
कहो दैरो-हरम वालो[३] ! ये तुम ने क्या फ़ुसूं फूंका[४] ?
ख़ुदा के घर पे क्या बीती सनमख़ानों[५] पे क्या गुज़री ?
निशाने-बर्गो-गुल[६] तक भी नज़र आता नहीं हमको।
समझ में कुछ नहीं आता गुलिस्तानों पे क्या गुज़री ॥
जहां नूरे-सहर के[७] भी क़दम जमने न पाते थे।
बताये कौन आख़िर उन शबिस्तानों पे[८] क्या गुज़री ?
वो रंगो-नूर से भरपूर बसतानों पे[९] क्या बीती ?
शबाबे-शेर से मामूर[१०] काशानों पे क्या गुज़री ?
अभी तो चश्मे - इबरत वक़्त की रफ़्तार देखेगी।
अभी ये किस तरह कह दें सितमरानों पे क्या गुज़री ?
न पूछ 'आज़ाद' अपनों और बेगानों का अफ़साना।
हुआ था क्या ये अपनों को ये बेगानों पे क्या गुज़री ?

---

१. बुद्धिमानों २. शम्मअ़ के मिलाप (स्वतन्त्रता) ३. काबे और बुत-ख़ाने वालो ४. जादू ५. बुतख़ानों (मन्दिरों) ६. फूल और पत्ती तक का निशान ७. ऊषा के प्रकाश के ८. शयनगृहों पर ९. फुलवाड़ियों पर १०. परिपूर्ण

ग़ज़लें

हमारे रब्ते-बाहम[1] की कहां तक बात जा पहुँची।
हक़ीक़त[2] से चली थी दास्तां[3] तक बात जा पहुंची॥
उठीं दिल से यक़ीने-बाहमो[4] पर जिसकी बुनियादें।
ताज्जुब है वही आखिर गुमां तक बात जा पहुंची॥
गुलिस्तां के किसी गोशे पे इक कौंदा सा लपका था।
मगर आखिर हमारे आशियां तक बात जा पहुंची॥
रफ़ीक़ो! दोस्तो! दावे मुहब्बत के बजा, लेकिन।
अगर मेरी बदौलत इम्तिहां तक बात जा पहुंची॥
वहीं तक राज़े-सरबस्ता[5] रही जब तक रही दिल में।
ज़रा आई ज़बां तक और कहाँ तक बात जा पहुंची॥
शमीमे-गुल[6] ने जिस की इब्तिदा की थी गुलिस्तां में।
वहां ज़िंदां[7] में ज़ंजीरे-गिरां[8] तक बात जा पहुंची॥
किया था ज़िक्र सा बेमेहरी-ए-अहबाब का[9] मैंने।
मगर नाक़दरी-ए-हिन्दोस्तां तक[10] बात जा पहुँची॥

◇ ◇ ◇

---

१. परस्पर सम्बन्ध (प्रेम) २. वास्तविकता ३. कथा-कहानी ४. परस्पर विश्वास ५. गुप्त भेद ६. फूल की महक ७. कारागार ८. बोझल जंजीर ९. मित्रों की बेरुखी का १०. भारत का निरादर करने तक

जो दिल का राज़ बे-आहो-फ़ुग़ाँ कहना ही पड़ता है।
तो फिर अपने क़फ़स को आशियाँ कहना ही पड़ता है॥
तुझे ऐ तायरे-शाख़े-नशेमन[1] ! क्या ख़बर इसकी ?
कभी सय्याद को भी बाग़बाँ कहना ही पड़ता है॥
ये दुनिया है यहाँ हर काम चलता है सलीक़े से।
यहां पत्थर को भी लाले-गिरां[2] कहना ही पड़ता है॥
ब-फ़ैज़े-मसलहत[3] ऐसा भी होता है ज़माने में।
कि रहज़न को[4] अमीरे-कारवाँ[5] कहना ही पड़ता है॥
ज़बानों पर दिलों की बात जब हम ला नहीं सकते।
जफ़ा को फिर वफ़ा की दास्ताँ कहना ही पड़ता है॥
न पूछो क्या गुज़रती है दिले-ख़ुद्दार पर अक्सर।
किसी बेमेहर[6] को जब मेहरबाँ कहना ही पड़ता है॥

◇ ◇ ◇

१. घोंसले की टहनी पर बैठने वाले पक्षी २. बहुमूल्य हीरा ३. समय की मांग के अनुसार ४. डाकू को ५. क़ाफ़िले का पथ-प्रदर्शक ६. निर्दयी

परिचय

"......न खाने की चीजें खाते हैं न पीने की चीजें पीते हैं। न सूंघने की चीजें सूंघते, न टटोलने की चीजें टटोलते, न वरतने की चीजें वरतते और न झपट पड़ने की चीजों पर झपटते हैं। चारे और घास-फूंस से विटामिन हासिल करते हैं और वेज़रर चरिंद (अहानिकारक पशु) की ज़िन्दगी जीते हैं।"

यह है 'जोश' मलीहावादी की भाषा में 'अर्श' मल्सियानी के व्यक्तिगत जीवन का सारांश। 'अर्श' मल्सियानी जो मुखाकृति, शरीर और वस्त्रों के आधार पर, वार्तालाप और उलझी हुई जीवन-समस्याओं को चुटकियों में सुलझा देने के आधार पर और संसार की प्रत्येक वस्तु पर निरन्तर तीस वर्ष से शतरंज को प्रधानता देने के आधार पर शायर कम और किसी गाँव के पटवारी अधिक मालूम होते हैं। इस पर भी जब मैंने उनके उपनाम के बारे में उनसे वात की तो मुझे उत्तर मिला कि "घटिया क़िस्म का तख़ल्लुस रखने से चूंकि शायरी पर उसका असर पड़ने का अन्देशा था इसलिए मैंने 'अर्श' (आकाश या ईश्वर के बैठने का सिंहासन) तख़ल्लुस चुना।" लेकिन इसके साथ ही उन्होंने यह भी अभिव्यक्ति की कि "१९२५ ई० में जब मैंने अपनी पहली नज़्म अपने वालिद साहब[1] को इस्लाह (संशोधन) की ग़र्ज़ से दिखाई

---

१. श्री 'जोश' मल्सियानी—उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान् और शायर। भारत सरकार की ओर से हाल ही में उनकी साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है।

तो वालिद साहब ने न केवल इस्लाह देने से इन्कार कर दिया बल्कि डांट पिलाई कि शायरी का जौहर (गुण) तुम में मौजूद ही नहीं, इसे छोड़ दो।"

शायरी का जौहर, जैसा कि बाद में सिद्ध हुआ, 'अर्श' में पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। उनके पिता ने शायद इसलिए उनकी पीठ न थपथपाई थी कि शेरो-शायरी में पड़कर उनका बेटा अपने शिक्षण से मुँह न मोड़ ले। क्योंकि कुछ समय बाद ही जब किसी व्यक्ति ने 'अर्श' का नाम लिये बिना उन्हें यह शेर सुनाया :

> मरकर भी गिरफ़्तारे-सफ़र[1] है मेरी हस्ती।
> दुनिया मेरे आगे है तो उक़्बा[2] मेरे पीछे॥

तो उन्होंने जी खोलकर दाद दी और कहा कि यह शेर ज़रूर किसी उस्ताद का है। लेकिन जब इन महाशय से उन्हें पता चला कि किसी उस्ताद का नहीं, स्वयं उनके सुपुत्र का है तो एक बार फिर उनके माथे पर बल पड़ गया और उन्होंने यह कहकर शेर की प्रशंसा करनी बन्द कर दी कि एक अच्छा शेर कहने से कोई शख्स शायर नहीं हो जाता। इस प्रकार प्रोत्साहन न मिलने का, 'अर्श' के कथनानुसार, उन पर यह प्रभाव पड़ा कि अपनी नज़्मों-ग़ज़लों पर वे और भी अधिक मेहनत और फिर स्वयं ही प्रत्यालोचन करने लगे। बाक़ायदा इस्लाह किसी से न ली और शनैः-शनैः मल्सियान ऐसी शायरी के लिहाज़ से मरुभूमि पर शायर की हैसियत से स्वयं ही अपने पैरों पर खड़े हो गए।

अपने जन्म और जन्म-भूमि के बारे में एक स्थान पर वह स्वयं ही लिखते हैं कि "पंजाब के ज़िला जालन्धर का एक छोटा-सा क़स्बा जिसे मेरे पिता अक्सर 'ख़राबाबाद' के नाम से याद करते हैं, मेरा जन्म-स्थान है। इस क़स्बे का नाम मल्सियान है। ज्ञान तथा विद्वत्ता की दृष्टि से इस क़स्बे में मेरे माननीय पिता से पूर्व कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसे थोड़ा-बहुत भी विद्वान् कहा जा सके। २० सितम्बर १९०८ ई० को इसी दूरदराज़ और असाहित्यिक वातावरण में मेरा जन्म हुआ।"

मल्सियान ही नहीं 'अर्श' की युवावस्था का अधिकांश भाग ऐसे ही असाहित्यिक वातावरण और शेरो-शायरी की शत्रु नौकरियों में व्यतीत हुआ जिनसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए वे बेतरह छटपटाते रहे—"एफ़० ए० में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि स्वभाव के विरुद्ध गवर्नमेंट एग्रीकल्चरल स्कूल की

---

१. सफ़र में गिरफ़्तार (गतिशील) २. परलोक

प्रतियोगिता में बैठा। दुर्भाग्यवश सफल भी हो गए। दो साल शिक्षा भी पाई और उसके बाद नहर विभाग में ओवरसियर भी नियुक्त हो गये। मन ने ग्लानि की और मस्तिष्क ने विद्रोह। एक वर्ष के समय में तीन बार त्यागपत्र दिया और अन्तिम बार दृढ़ निश्चय किया कि इस असाहित्यिक वातावरण को पुनः नहीं अपनाऊंगा।"

इस असाहित्यिक वातावरण से निकले तो 'आस्मान से गिरा खजूर में अटका' के अनुसार 'अर्श' को लुधियाना के एक औद्योगिक केन्द्र या स्कूल में शिक्षक बनना पड़ा और एक दो नहीं पूरे बारह वर्ष तक बनना पड़ा। लेकिन इस सब के बावुजूद शेर कहने का शौक़ या उन्माद ज्यों का त्यों बना रहा और वे इधर-उधर के मुशायरों में भी शामिल होते रहे। इसे श्री गुलाम मोहम्मद (भूतपूर्व गवर्नर-जनरल पाकिस्तान) ही की कृपा कहनी चाहिये कि उन्होंने 'अर्श' को उस अप्रिय और असंगत वातावरण से मुक्ति दिलाकर दिल्ली के जौहरियों के सामने अपनी शायरी के जौहर को प्रस्तुत करने का अवसर जुटाया। दिल्ली में 'अर्श' पहले सप्लाई विभाग में, फिर सॉंग एण्ड पब्लिसिटी, फिर लेबर विभाग और उसके बाद मिनिस्ट्री ऑफ़ इन्फ़रमेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग में नौकर हुए। फिर १९४८ ई० में प्रकाशन विभाग में असिस्टैंट एडीटर नियुक्त हुए और १९५६ ई० में 'जोश' मलीहाबादी (जो उन दिनों उसी विभाग में उर्दू 'आजकल' के एडीटर थे) के पाकिस्तान चले जाने के बाद से एडीटर के पद पर आसीन हैं। अब तक 'हफ़्त-रंग', 'चंगो-आहंग' और आहंगे-हजाज़ के नाम से तीन कविता-संग्रह और 'पोस्टमार्टम' नाम से एक हास्य-लेखों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है और न केवल भारत बल्कि पाकिस्तान में भी कोई मुशायरा ऐसा नहीं होता जिसमें 'अर्श' की उपस्थिति अनिवार्य न समझी जाती हो।

अपनी काव्य-प्रवृत्ति के सम्बन्ध में 'अर्श' का कहना है कि वे किसी साहित्यिक दल या संघ से सम्बन्ध नहीं रखते बल्कि पुरातन और नूतन के समावेश से जो साहित्य जन्म लेता है उसी की रचना में प्रयत्नशील रहते हैं। यह बात यद्यपि कुछ भ्रमजनक-सी लगती है और किसी भी बिन्दु पर इसके डांडे मिलाए जा सकते हैं लेकिन 'अर्श' की शायरी का विस्तृत अध्ययन करने वाला कोई पाठक भी इससे भिन्न राय नहीं दे सकता कि अपनी शायरी के प्रारम्भिक काल में तो 'पुरातन और नूतन' के समावेश की बजाए वे पुरातन ही पुरातन पर ध्यान देते थे। लेकिन फिर धीरे-धीरे वे 'पुरातन' से केवल वर्णन-

शैली और 'नूतन' से आधुनिक काल की समस्याओं का विषय लेने लगे—वे समस्याएं जो उनके समक्ष थीं ; देश और जाति के समक्ष थीं ; सारी मानवता और पूरी शताब्दि के समक्ष थीं—अतएव भाषा और वर्णन-शैली को एक ओर रख जब भी कोई सत्यनिष्ठ कवि या लेखक अपने काल की समस्याओं को लेता है तो उनके वास्तविक रूप ही में लेता है और जब वास्तविक रूप में लेता है तो अपनी ज़बान से वह भले ही इक़रार न करे उसकी रचनायें स्वयं चुग़ली खाती हैं कि उसका सम्बन्ध अवश्य ही उस साहित्यिक संघ से है जो नया या प्रगतिशील कहलाता है, जो मानव-प्रेमी है और जिसकी सहानुभूतियाँ भौगोलिक सीमाओं को पार कर विश्व-व्यापी हो जाती हैं।

कमज़र्फ़[1] दुनिया

ये दौरे-ख़िरद[2] है दौरे-जुनूं[3], इस दौर में जीना मुश्किल है।
अंगूर की मै के धोखे में ज़हराब[4] का पीना मुश्किल है॥
जब नाख़ुने-वहशत[5] चलते थे रोके से किसी के रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानियत[6] सीते हैं तो सीना मुश्किल है॥
जो 'धर्म' पे बीती देख चुके, 'ईमां' पे जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीम की दुनिया में इन्सान का जीना मुश्किल है॥
इक सब्र के घूंट से मिट जाती सब तश्नालबों की[7] तश्नालबी।
कमज़र्फ़ी-ए-दुनिया के सदक़े ये घूंट भी पीना मुश्किल है॥
वो शोला नहीं जो बुझ जाये, आंधी के एक ही झोंके से।
बुझने का सलीक़ा आसां है, जलने का क़रीना[8] मुश्किल है॥
करने को रफ़ू कर ही लेंगे, दुनिया वाले सब ज़ख्म अपने।
जो ज़ख्म दिले-इन्सां पे[9] लगा, उस ज़ख्म का सीना मुश्किल है॥
वो मर्द नहीं जो डर जाये माहौल के[10] ख़ूनी मन्ज़र[11] से।
उस हाल में जीना लाज़िम[12] है जिस हाल में जीना मुश्किल है॥
मिलने को मिलेगा बिल-आख़िर[13] ऐ 'अर्श' सुकूने-साहिल[14] भी।
तूफ़ाने-हवादिस से[15] लेकिन बच जाये सफ़ीना[16] मुश्किल है॥

---

१. ओछी २. बुद्धि-काल ३. उन्माद-काल ४. पानी में घुला हुआ विष ५. पशुता के नाख़ून ६. मानवता के हृदय का घाव ७. प्यासों की ८. सुन्दर ढंग ९. मानव-हृदय पर १०. वातावरण के ११. दृश्य १२. आवश्यक १३. अन्ततः १४. तट की शान्ति १५. दुर्घटनाओं के तूफ़ान से १६. नौका

नवाए-इश्क़[1]

मोहब्बत सोज़ भी है साज़ भी है।
ख़मोशी भी है, ये आवाज़ भी है॥
नशेमन के[2] लिए बेताब तायर[3]।
वहां पाबंदी-ए-परवाज़[4] भी है॥
मेरी ख़ामोशी-ए-दिल[5] पर न जाओ।
कि इस में रूह की आवाज़ भी है॥
ख़मोशी पर भरोसा करने वाले!
ख़मोशी दर्द की ग़म्माज़[6] भी है॥
दिले-बेगाना-ख़ू[7], दुनिया में तेरा।
कोई हमदम कोई हमराज़ भी है?
तराना-हाए-साज़े-ज़िन्दगी[8] में।
इक आवाज़े-शिकस्ते-साज़[9] भी है॥
है मेअ़राजे-ख़िरद[10] भी 'अर्श'-आज़िम[11]।
जुनूं[12] का फ़र्शे-पा[13] अंदाज़ भी है॥

---

१. इश्क़ का नग़मा २. घोंसले के ३. पक्षी ४. उड़ने की पाबंदी ५. हृदय की चुप्पी ६. चुग़ल-ख़ोर ७. दूसरों को पसंद करने वाले दिल ८. जीवन के साज़ के संगीत ९. टूटे हुए साज़ का स्वर १०. बुद्धि की चरम सीमा ११. सातवां आकाश (जहां ख़ुदा रहता है) १२. उन्माद १३. पैरों के नीचे का फ़र्श

नाख़ुदा को[१] ढूंढ जाकर हल्क़ा-ए-गिरदाब में[२]।
बन्दा-ए-साहिल-नशीं[३] तो नाख़ुदा होता नहीं ॥
'अर्श' पहले ये शिकायत थी ख़फ़ा होता है वो।
अब ये शिकवा है कि वो ज़ालिम ख़फ़ा होता नहीं ॥

◇ ◇ ◇

पहला सा वो जुनूने-मोहब्बत[४] नहीं रहा।
कुछ-कुछ संभल गये हैं तुम्हारी दुआ से हम ॥
यूं मुत्मइन से[५] आए हैं खाकर जिगर पे चोट।
जैसे वहाँ गये थे इसी मुद्दआ[६] से हम ॥
आने दो इल्तिफ़ात में[७] कुछ और भी कमी।
मानूस[८] हो रहे हैं तुम्हारी जफ़ा से[९] हम ॥
ख़ू-ए-वफ़ा[१०] मिली दिले-दर्द-आशना[११] मिला।
क्या रह गया है और जो मांगें ख़ुदा से हम !
पाए-तलब[१२] भी तेज़ था, मंज़िल भी थी क़रीब।
लेकिन निजात[१३] पा न सके रहनुमा से[१४] हम ॥

◇ ◇ ◇

दर्द की इब्तिदा[१५] भी है, ज़ब्त की[१६] इन्तिहा भी है।
क़तरा-ए-अश्क[१७] आंख में आके रुका हुआ भी है ॥
राहे-फ़ना पे[१८] हर जगह खा न फ़रेबे-बंदगी[१९]।
देख कि इस मुक़ाम पर[२०] सजदा-ए-दिल[२१] रवा[२२] भी है ?
ऐ दिले-कमनज़र[२३] ज़रा उस पे भी कुछ नज़र रहे।
दुश्मने-मुद्दआ[२४] है जो, ख़ालिक़े-मुद्दआ[२५] भी है !

---

१. नाविक को २. भंवर के घेरे में ३. तटवासी ४. प्रेमोन्माद ५. सन्तुष्ट से ६. उद्देश्य ७. कृपा में ८. अभ्यस्त ९. अत्याचार से १०. प्रेम निभाने की आदत ११. पीड़ित हो उठने वाला हृदय १२. तलाश करने वाला पांव १३. मुक्ति १४. पथप्रदर्शक से १५. शुरुआत १६. सहन-शक्ति की १७. आंसू की बूंद १८. विनाश-मार्ग में १९. उपासना का धोखा २०. स्थान पर २१. दिल का प्रणाम २२. उचित २३. संकुचित दिल २४. मनोकामना का शत्रु २५. मनोकामना का उत्पत्ति-कर्त्ता

फुटकर शेर

तहय्युर[1] है हुज़ूरी में तो बेताबी है दूरी में ।
मुसीबत में ये जाने-नातवाँ[2] यूँ भी है औ[3] यूँ भी ॥

◇ ◇ ◇

तवाज़न[4] खूब ये इश्क़ो-सज़ा-ए-इश्क़ में[5] देखा ।
तबीयत एक बार आई, मुसीबत बार-बार आई ॥

◇ ◇ ◇

दाग़े-दिल से[6] भी रोशनी न मिली ।
ये दिया भी जला के देख लिया ॥

◇ ◇ ◇

तसन्नोअ़ की[7] फ़ुसूंकारी का[8] कुछ ऐसा असर देखा ।
कि ये दुनिया मुझे दुनियानुमा[9] मालूम होती है ॥

◇ ◇ ◇

न हरम[10] में है वो न दैर[11] में है ।
हम तो दोनों जगह पुकार आये ॥

◇ ◇ ◇

खयाले-तामीर के असीरो[12], करो न तख़रीब की[13] बुराई ।
बग़ौर[14] देखो तो दुश्मनी के क़रीब ही दोस्ती मिलेगी ॥
अ़ताब[15] करने दो 'अर्श' उनको कि इसमें भी मसलहत[16] निहाँ[17] है ।
मिज़ाज को बरहमी[18] मिलेगी तो हुस्न को दिलकशी[19] मिलेगी ॥

---

१. विस्मय २. अशक्त जान ३. और ४. सन्तुलन ५. इश्क़ और इश्क़ के दण्ड में ६. दिल के दाग़ से ७. बनावट की ८. जादू फूंकने का ९. दुनिया जैसी १०. काबे की चार-दीवारी ११. मन्दिर १२. निर्माण के इच्छुक व्यक्तियो १३. विनाश १४. ध्यान से १५. कोप १६. हित १७. निहित १८. रुष्टता १९. मनोहरता

परिचय

यह १९४० ई० की बात है, उधर दूसरा महायुद्ध भयानक रूप धारण करता जा रहा था और इधर उर्दू साहित्य में विषय और रूप सम्बन्धी नित नये प्रयोग किए जा रहे थे—जो लेखक भी सामान्य स्तर से हटकर कोई नई बात कहता था, उसकी गणना प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में होने लगती थी। फ्रायड के सिद्धांत, जेम्स-जॉयस और डी० एच० लॉरेंस की शैली और टी० एस० इलियट के भावों का अनुसरण ज़ोरों पर था। काम (विषय—Sex) पर बड़ी बेबाकी से क़लम उठ रहे थे और उस समय की धारा के अनुसार उन रचनाओं पर उन्नति तथा प्रगतिशीलता का लेबल लगाया जा रहा था और 'शिष्ट पाठक' उन पर झल्ला रहे थे—यह युग उर्दू शायरी में निर्बंध तथा अतुकांत शायरी का युग था—उन्हीं दिनों 'मख्मूर' जालंधरी अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा प्रेक्षण और अपनी विशेष शैली के साथ साहित्य-क्षेत्र में उत्तीर्ण हुआ। वह हमारे समाज के चेहरे पर से कुछ ऐसी निर्दयता से नोच-नोच कर झिल्लियाँ उतारने लगा कि नैतिकता की रूढ़िगत-परम्पराओं से प्रभावित मस्तिष्क उत्तेजित हो उठे। उनकी ओर से जिन उर्दू लेखकों और कवियों को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ दी गईं, 'मख्मूर' जालंधरी उनमें से एक था। वास्तव में 'मख्मूर' जालंधरी जिस वातावरण से आया था, वह वातावरण ही ऐसा था कि अपनी नज़्मों में समय तथा समाज की किसी बुराई, किसी घिनावने पात्र को सुधारवादी दृष्टिकोण से नग्न करते हुए भी आप-ही-आप उसकी नज़्मों में ऐन्द्रीय आनन्द का अंश उभर आता था।

गुरबख़्शसिंह 'मख़मूर' जालंधरी १८ अक्तूबर १९१५ को लालकुर्ती बाज़ार, जालंधर छावनी में एक साधारण दुकानदार के घर पैदा हुआ। जालंधर छावनी में लालकुर्ती बाजार आलीशान दोमंज़िला बारकों की भयावह भुजाओं में घिरा हुआ है। आज उन बारकों में अंग्रेज़ साम्राज्य के अधमवर्गीय (Proletariate) सैनिकों की बजाय हमारे अपने अनपढ़, आधे भूखे और आधे नंगे सैनिक आबाद हैं। जिन दिनों 'मख़मूर' जालंधरी ने इस वातावरण में आँख खोली लोगों के दिलों में अपनी पराधीनता की बड़ी खटक थी। अधमवर्गीय गोरे यद्यपि साम्राज्यशाही गोरों के वैसे ही दास थे जैसे हम उनके, फिर भी साम्राज्यशाही गोरों ने अपने सैनिकों के मन-मस्तिष्क में उनके भारतवासियों के शासक होने का जो विचित्र विचार डाल रखा था, उससे वशीभूत वे जब चाहते सिक्खों की पगड़ी, मुसलमानों की टोपी और हिन्दुओं की धोती उतार लेते। गोरे पर हाथ उठाने का दण्ड मृत्यु था। लालकुर्ती बाजार में गिने-चुने साधारण दुकानदारों के अतिरिक्त वहाँ सबके-सब गोरों के 'ख़िदमतगार' बसते थे—भंगी, धोबी, नाई, बहिश्ती, बावर्ची, बैरे, ख़ानसामे, चौकीदार, ख़लासी, साईस, इत्यादि। और इस निचले वर्ग को खुशामद, जी-हुज़ूरी, स्थायी भय, भाग्य-विमूढ़ता, संतोष आदि प्रवृत्तियों ने नितांत पंगु बना दिया था। वे सब गोरों के फटे हुये जूते, उधड़ी हुई वर्दियाँ और घिसी हुई जर्सियाँ पहनते। शराब पीकर लड़ते-झगड़ते और पुलिस वालों का पेट भरते। घरों में चूल्हे कभी सुलगते, कभी बुझ जाते। छः महीने काम करते, छः महीने निठल्ले रहते। किसी की बेटी भाग जाती तो किसी का बेटा। 'मख़मूर' को इस वातावरण की भुखमरी और सड़ांद ने अत्यन्त प्रभावित किया और यही वातावरण उसकी शायरी का आधार बना। उसकी कुछ नज़्मों के शीर्षक देखिये: 'महतरानी', 'भूखी जवानियाँ', 'बीस चेहरे', 'धोबन आई'।

उसकी शायरी का श्रीगणेश और विकास किस प्रकार हुआ उसके बारे में वह स्वयं कहता है :

"मुझे मेरे बचपन के साथी 'इसी' निचले वर्ग से मिले। मेरे साथियों के बड़े-बूढ़े राग-रंग, नाच, कथा आदि के बड़े प्रेमी थे। वे अक्सर थानेदारों, गोरा पुलिस और मेम साहिब के सम्बन्ध में 'बिरहा' कहते, दोहे और चौपाइयाँ गाते। उनकी देखा-देखी मैं भी 'बिरहा' कहने लगा—[illegible], झूठे और शेखचिल्ली ढंग के लड़कों के बारे में। यह मनोरंजन मुझे बहुत पसंद आया, क्योंकि इस प्रकार दूसरों पर चोट करने का अवसर और आनन्द मिलता था।

(उर्दू का प्रथम जन-कवि) की सुन्दर परम्पराओं का उत्तराधिकारी कहूँगा क्योंकि 'नज़ीर' अकबराबादी ने भी रूढ़िगत कविता के विरुद्ध नये-नये प्रयोग किये थे। 'शेफ़ता' ऐसे गंभीर आलोचकों ने उसे अश्लीलतावादी और बाज़ारू कवि कहा क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा में बड़ी बेबाकी से उसकी समस्यायें प्रस्तुत करता था और अपने आत्मानुभव तथा अपनी मनोवृत्ति का निःसंकोच वर्णन करता था। 'नज़ीर' की नज़्म 'आंधी' का एक टुकड़ा देखिये :

इस आंधी में अहा-हा-हा अजब हमने मज़े मारे,
फ़लक पर ऐशो-इशरत से दिखाई दे गये तारे,
रक़ीबों की है अब ख्वारी, ख़राबी क्या लिखूँ बारे,
तले कोठे के बैठे अट गये सब गर्द के मारे,
भरी नथनों में उनके ख़ाक दस-दस सेर आंधी में।

१९४२ ई० के बाद 'मख्मूर' की नज़्मों के दो और संग्रह 'तलातुम' और 'मुख्तसिर नज़्में' प्रकाशित हुए। 'तलातुम' की नज़्में उसकी कला-कौशलता को अवश्य प्रकट करती हैं, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से उनमें 'मख्मूर' वहीं का वहीं दिखाई देता है। हाँ 'मुख्तसिर नज़्में' उसके एक ठोस प्रयोग का साक्षी है, जिसकी कुछ नज़्में तो केवल एक पंक्ति की नज़्में हैं। इन अत्यन्त संक्षिप्त नज़्मों में उसके विचारों की गहराई और जीवन-जिज्ञासा के अंश भी मिलते हैं।

१९४४ ई० में जब 'मक्तबा उर्दू' और 'मक्तबा जदीद' (लाहौर के प्रकाशन-गृह) के लिए 'मख्मूर' ने रूसी साहित्य को उर्दू का जामा पहनाने का कार्य आरम्भ किया (अब तक वह टाल्स्टाय का उपन्यास 'वार एण्ड पीस', गोर्की का 'मदर', शोलोखोफ़ का 'एण्ड क्वायट फ़्लोज़ दी डॉन' और 'वर्जन सॉयल अपटर्नड' आदि कई पुस्तकों का अनुवाद कर चुका है) तो उसके अपने कथनानुसार उसे पहली बार मालूम हुआ कि जिस यथार्थवाद का वह अनुयायी था वह वास्तविक यथार्थवाद नहीं था, और उसने समझ लिया कि यथार्थवाद के लिए सामाजिक और राजनीतिक बोध अनिवार्य है। देश के बटवारे ने उसके इस विश्वास को और भी दृढ़ता प्रदान की कि सामाजिक और राजनीतिक बोध के बिना कोई लेखक महान् साहित्य की रचना नहीं कर सकता। उसे मानव-मित्र तथा मानव-शत्रु शक्तियों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये।

१९४८ ई० में 'मख्मूर' जालंधर रेडियो में नौकर हुआ। यहाँ रहकर साढ़े तीन वर्ष में उसने डेढ़ हज़ार के लगभग पंजाबी तथा उर्दू में फीचर और

नाटक लिखे। यद्यपि ये नाटक और फीचर सरकार की विशेष पालिसी के आधार पर लिखवाये जाते थे फिर भी प्रौढ़ 'मख्मूर' ने यहाँ भी अपनी कला से विश्वासघात नहीं किया। वह उन नाटकों में भी अपने इर्द-गिर्द बिखरे हुए समाज के भेद-भाव को समोता रहा, और कदाचित् इसी कारण से उसे साम्यवादी कहकर रेडियो से निकाल दिया गया।

आज 'मख्मूर' जालंधरी दिल्ली के एक दैनिक पत्र 'मिलाप' में काम करने के साथ-साथ अपनी शायरी में समाज के विभिन्न पात्रों के चित्रण द्वारा सामाजिक क्रान्ति के आगमन की घोषणा कर रहा है।

अग़वा

सलीमा, चान्द की किरन
हर इक ख़याल की दुल्हन
नज़र-नज़र की आरज़ू
नज़र-नज़र की जुस्तजू
शरारतों की जलवागाह, शोख़ियों की अंजुमन
तजल्लियों की[1] शाहराह, ज़रनिगार[2] , ज़ूफ़िगन[3]
सलीमा, उस ज़माने का
हसीं फ़रेब खा गई
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन क़दम उठा गई
क़फ़स की तीलियों को तोड़कर परिन्द उड़ गये
नज़र जो मोड़ सामने पड़ा उसी पे मुड़ गये
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन क़दम उठा गई
मगर क़यामत आ गई

(२)

सलीमा, रंगो-बू चमन
शराब जिसका बांकपन
सलीमा, जिसके पैरहन[4]
नज़रनवाज़, सहरफ़िगन[5]

---

१. प्रकाश की २. कुन्दन-मुखी ३. प्रकाश बिखेरने वाली ४. पहरावे
५. जादू बिखेरने वाला

बड़ी दलेर थी जो अपना राज़ फ़ाश कर गई
रिवायतों का आबगीना[1] पाश-पाश कर गई
छुपे करिश्मे, पाकबाज़
उठे हिजाबे-बेसवा[2]
नदी है मै की खुल्द में[3]
यहां शराब नारवा
हिजाब उठाके-रस्मो-राह तोड़कर चली गई
बुज़ुर्गतर निगाह में
बड़ा गुनाह कर गई
ग़रीब वालदैन को
यूँही तबाह कर गई
जबीं पे[4] कुन्बे की सियाह कश्का[5] इक लगा गई
निसाई[6] हुस्न और वक़ार[7] ख़ाक में मिला गई
वो शर्मसार कर गई
लबों पे ताने धर गई
दिलों में ज़ख़्म सैंकड़ों
सदा-बहार भर गई
दो छोटी बहनों के लिए नुकीले कांटे बो गई
वो उम्र-भर की इज़्ज़त अपने मैल में भिगो गई
बुरी मिसाल बन गई
सलीमा ऐसी नाज़नीं
शफ़क़-जमाल[8] , मह-जबीं[9]

---

१. पानी का बुलबुला २. वेसवा की ३. स्वर्ग में ४. माथे पर ५. कलंक का टीका ६. स्त्रीत्व ७. शान ८. डूबते सूरज की लालिमा ऐसी सुन्दर ९. चन्द्रमुखी

बहन ग़ैर का हाथ हम पर पड़े
तो लगता है यूँ जैसे नश्तर गड़े
यही चाहते हैं वहीं पर खड़े
वो उतनी जगह या गले या सड़े
बुरे हाथ जिस जा पड़े !

बहन मर्द की शान है वो कमाये
कमाया हुआ उसका कुल कुनबा खाये
जो कुछ रूखा-सूखा सा बाहर से लाये
उसे बीवी धोये, संवारे, पकाये
सुघड़ और चतुर नाम पाये !

मुझे देखो ये कोई दावा नहीं
कभी घर में तिनका भी होता नहीं
अगर भूखे सोये तो परवा नहीं
ज़बाँ पर कभी शिकवा आया नहीं
गिला अपना शेवा नहीं !

बहन तुम से क्या अपनी बिपता छुपाऊँ
हया रोके है वरना कुर्ता उठाऊँ
तो शलवार की ख़स्ता हालत बताऊँ
कई खिड़कियां और रोज़न[1] दिखाऊँ
कहां और टांके लगाऊँ !

अरी नौकरी तो बहाना है बस
नई पौद सचमुच हविस है हविस
इरादे गुनहगार नीयत नजिस[2]
सदा पायें मर्दों की क़ुरबत[3] में रस
कि घेरे रहें पांच दस !

---

१. झरोके २. अपवित्र ३. सामीप्य

हमें तो बहन नख़रे आते नहीं
कभी सुर्खी पाउडर लगाते नहीं
दोपट्टे को सिर से हटाते नहीं
ये बालों में चिड़ियां बनाते नहीं
ये सीना दिखाते नहीं !

हमारी क़नाअ़त[1] हमारा सिंगार
भला कुछ भी लगता नहीं रंगदार
वो शादी के जोड़े जो थे तीन-चार
लिया है सब उन पर से गोटा उतार
कि है सादगी खुद बहार !

बहन अब तो गहना भी फबता नहीं
सुनो तुम से तो कोई पर्दा नहीं
इक आवेज़ा[2] भी घर में रक्खा नहीं
किसी चोर-उचक्के का खटका नहीं
ज़रा दिल धड़कता नहीं !

बहन बात मेरी अधूरी रही
ये अंधेर है औरत और नौकरी
जभी तो ज़माने की ये गत बनी
न देखा न ऐसा सुना था कभी
अभी उलटी गंगा वही !

चलें देके मर्दों के हाथों में हाथ
अगर आज इसके तो कल उसके साथ
करें भौंडे फ़ैशन में मेमों को मात
बस इक बच्चे के बाद पायें निजात
कि औलाद है दुख की राह !

१. सन्तोष २. कानों की बाली

बहन बात फिर बीच में कट गई
नवेली बहू लाजपतराय की
महीनों सुसर से झगड़ती रही
"कि घर में बढ़ी जाती है भुखमरी
मुझे करने दो नौकरी!"

बहन ठीक है पेट भरता नहीं
महीना गुज़ारे गुज़रता नहीं
मगर आदमी इससे मरता नहीं
कोई बेहयाई तो करता नहीं
कुएं में उतरता नहीं!

बहन तेरा मुंह क्यों है उतरा हुआ
लहू जैसे सारा निचोड़ा हुआ
तुझे बैठे-बैठे भला क्या हुआ
अरी फोड़ा निकली तू रिस्ता हुआ
कोई आज झगड़ा हुआ?

बहन कोई दिन ऐसा कटता नहीं
कि जब आसमां सर पे फटता नहीं
घटाया बहुत खर्च घटता नहीं
इसी वास्ते झगड़ा हटता नहीं
घिरा अब्र[1] छटता नहीं!

बहन भूख का गर्म बाज़ार है
फ़िरंगी न अब उस का ब्योपार है
सिरों पर टंगी फिर भी तलवार है
यक़ीनन कोई हम में बटमार है
हमीं में रियाकार[2] है!

---

१. बादल २. धोखेबाज़

बहन उस निगोड़े के गोली लगे
कहीं से कोई तेज़ आंधी उठे
महल उसका हो जाये ऊपर-तले
सदा के लिए उसका दीपक बुझे।
जो दिन-रात हमको छले!

अहाहा तेरे मुंह में मिसरी बहन
तेरी बात हो जल्द पूरी बहन
बने तू कई पोतों वाली बहन
जिये तू जुगों तक चहेती बहन
लगे उम्र मेरी बहन!

'अख्तर' उल-ईमान

चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले

व्यंजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज़ को जिसे 'प्रत्यक्ष कविता' (Direct Poatry) कहा जाता है, पसंद नहीं करते। शुरू में वह फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' और मुईन अहसन 'जज़्बी' की शायरी से वहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर 'मीराजी' को तो शायद वह अपना गुरु मानता था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रंग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरों में उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है। एक अत्यन्त घायल आवाज़, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेषता है। उसकी नज़्में बड़ी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं। पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के कांटे-कंकरों से बचाते हुए अन्त में वे उसे उस मंज़िल पर ले जाती हैं, जहां पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वयं को हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है— मानो एक भारी बोझ था, जा उसके कंधों से उतर गया हो। ज़रा उसकी एक नज़्म 'अंदोखता' (संचित) देखिये :

कोहरा, नीला बसीतो-बुलंद[१] आसमां
इतना खामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकूं[२],
इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
अपने गल्ले से बिछड़ी हुई भेड़ हूँ,
तुम कहां हो मेरी रूह की रोशनी,
तुम तो कहती थीं ये दर्द पाइंदा[३] है,
तुम कहां हो, मेरे रास्तों के दिये,
बुझ गये फिर भी हर चीज़ ताबिंदा[४] है,
मैं मिलों-कारखानों के बोझल धुएं,
क़हवाखानों[५] का मग़मूम[६] ताबिंदगी,
काहनों[७] की मुहब्बत का फ़ुज़ला[८] जिसे,
रब्बे-मौजूदो-मादूम[९] ने बख़्श दी,
दायमी[१०] जिंदगी, मैं तुम्हारे लिए,

१. विशाल तथा उच्च २. शांत ३. स्थायी ४. प्रकाशमान ५. वेश्याघरों ६. उदास ७. यहूदियों की-सी शक्ल के सेवक (जादूगर) ८. फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १०. स्थायी

अहदे-क़ारून[1] की गीर[2] और दार[3] से,
अपनी ज़ख्मी मुहब्बत बचा लाया हूँ।

यह तथा 'अख़्तर' की ऐसी ही कई और नज़्में व्याख्या की नहीं, महसूस करने की मांग करती हैं। लेकिन कभी-कभी जान-बूझकर महसूस कराने के उद्देश्य से लिखी गई उसकी नज़्में काफ़ी भ्रमोत्पादक भी हो जाती हैं। और यदि उन पर कोई शीर्षक न हो तो यह समझना कठिन हो जाता है कि शायर ने प्रेमिका की मृत्यु पर नज़्म लिखी है या वह बंगाल के अकाल से सम्बन्धित है। इस प्रसंग में वह अभी तक 'मीराजी-स्कूल' से पूरी तरह अपना दामन नहीं छुड़ा सका जिसकी नज़्मों की विशेषता यह होती थी कि उनके रचयिता से पूछे बिना उन्हें समझ लेना दूध की नदी खोद निकालने के तुल्य होता था।

अब तक 'अख़्तर' उल-ईमान के तीन कविता-संग्रह 'गिरदाब' 'सब-रंग' और 'तारीक सय्यारा' प्रकाशित हो चुके हैं।

---

१. क़ारून का युग (क़ारून हज़रत मूसा के चचा के बेटे का नाम है जो बहुत बड़ा धनवान लेकिन कंजूस था) २, ३. पकड़-धकड़

आख़िरे-शब[1]

ढली रात तारे झपकने लगे आंख, शबनम के नासुफ़ता[2] मोती,
सरे-शाख़े-गुल[3] अपने अंजाम से कांप उठे, ख़्वाब पूरे-अधूरे,
उड़े जैसे ऊदे, रुपहले, सुनहरे, सियाह, मलगुजे, भूरे, बादल,
तहे-आसमां[4] रूई के नरम गालों की मानिंद हर सिम्त[5] उड़ते—
फिरे, और नद्दाफ़ की ज़र्ब[6] को भूल कर पल गुज़रते-गुज़रते,
सरे-बालिशे-ख़ाक[7] सब ज़िद्दी बच्चों की मानिंद रोते मचलते,
चढ़ी नींद से चूर होकर वहीं सो रहे, याद की सब्ज़ परियां,
घने जंगलों, लालाज़ारों[8], पहाड़ों, भरी वादियों से गुज़रतीं,
कहीं क़ाफ़े-माज़ी[9] के नमनाक[10] ग़ारों में रूपोश होने लगी हैं।

मुबारक हो मैंने सुना है तुम फूल सी जान की मां बनी हो,
मुबारक ! सुना है तुम्हारा हर इक ज़ख़्म मुंदमिल हो गया है[11]।

◇ ◇ ◇

१. रात्रि का अन्त २. अनबिंधा मोती ३. फूल की शाखा कि सिरे पर ४. आकाश के नीचे ५. ओर ६. धुनिये की चोट ७. धूल-मिट्टी के सिरहाने ८. फुलवाड़ियों ९. अतीत का क़ाफ़ (परियों के रहने का कल्पित स्थान) १०. सजल ११. अच्छा हो गया है

तब्दीली

इस भरे शहर में कोई ऐसा नहीं,
जो मुझ राह चलते को पहचान ले,
और आवाज़ दे "ओ बे, ओ सर-फिरे",
दोनों इक दूसरे से लिपट कर वहीं,
गिर्दो-पेश[1] और माहौल[2] को भूलकर,
गालियां दें, हंसें, हाथापाई करें,
पास के पेड़ की छांव में बैठकर,
घंटों इक दूसरे की सुनें और कहें,
और इस नेक रूहों के बाज़ार में,
मेरी ये क़ीमती बेबहा[3] ज़िन्दगी,
एक दिन के लिए अपना रुख मोड़ ले।

◇ ◇ ◇

१. आस-पास २. वातावरण ३. बहुमूल्य

अनजान

तुम हो किस बन की फुलवारी अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?
चलता फिरता आ पहुँचा हूँ राही हूँ मतवाला हूं,
इन रंगों का जिनसे तुमने अपना रूप सजाया है,
इन रंगों का जिनसे तुमने अपना खेल रचाया है,
इन गीतों का जिनकी धुन पर नाच रहे हैं मेरे प्राण,
इन लहरों का जिनकी रौ में डूब गया है मेरा मान,
मेरा रोग मिटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?
मैं हूं ऐसा राही जिसने देस देस की आहों को,
ले लेकर परवान चढ़ाया और रसीले गीत बुने,
चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले,
मैं हूँ वो दीवाना जिसने फूल लुटाये ख़ार[1] चुने,
मेरे गीतों और फूलों का रस भी सूख गया था आज,
मेरे दीप अंधेरा बनकर रोक रहे थे मेरे काज,
मेरी जोत जगाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूं मैं हूँ कौन ?
एक घड़ी एक पल भी सुख का वक़्त है इस राही को,
जीवन जिसका बीत गया हो कांटों पर चलते चलते,
सब कुछ पाया प्यार की ठंडी छांव जो पाई दुनिया में,
उसने जिसकी वीत गई हो वरसों से जलते-जलते,
मेरा दर्द बटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो, मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?

---

१. कांटे

'सलाम' मछलीशहरी

शायद कि इन्क़िलाबे-ज़माना के साथ-साथ
मेरी तबाहियों में तुम्हारा भी हाथ है

परिचय
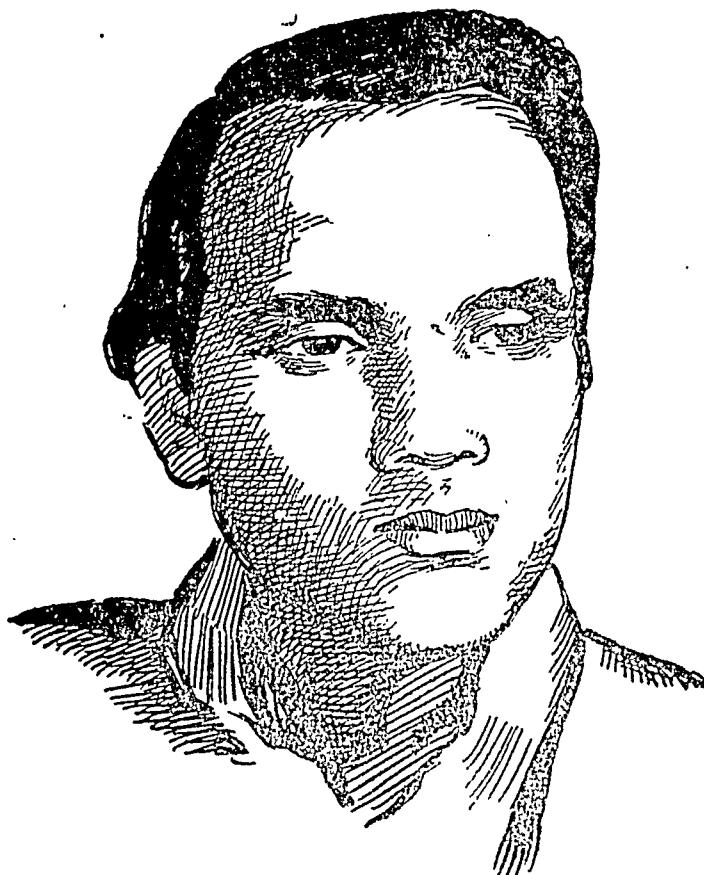
"अगर कोई वैरंग लिफ़ाफ़ा आये तो समझ लीजिये, वह सलाम का है" (—मुमताज़ शीरीं)

"जो लड़की उसे खूबसूरत नज़र आती है वह फ़ौरन उस पर एक नज़्म लिख डालता है।" (—क़ुरहत-उल-ऐन हैदर)

"आप से मिलिये, आप सलाम हैं और आपकी शायरी वालैकुम-अस्सलाम !" (—फ़ुर्क़त काकोरवी)

"तुम घबराओ नहीं 'सलाम' ! दुनिया उस वक़्त तुम्हारी शायरी की क़दर करेगी जब उसका तर्जुमा अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी से फ्रेंच में होगा और फिर फ्रेंच से मैं उसे उर्दू में तर्जुमा करूँगा" (—'मजाज़' लखनवी)

'सलाम' मछलीशहरी के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के बारे में दर्जनों लतीफे मशहूर हैं और चूंकि पिछले पन्द्रह-सोलह वर्ष से उर्दू का कोई अच्छा-बुरा पत्र ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ जिसमें सलाम की कोई नज़्म, ग़ज़ल, कहानी, ड्रामा, लेख या सम्पादक के नाम लम्बा-चौड़ा पत्र न छपा हो, इसलिए मेरा ख्याल है कि लोग-बाग उसकी रचनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते और सच बात तो यह है कि इस लेख के लिखने तक स्वयं मैंने भी उसकी बहुत कम चीज़ें पढ़ी थीं। इस पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मित्रों से जो कुछ मैंने सुना था वह भी कुछ अधिक 'सन्तोषजनक' नहीं था, अतएव मेरे मन में कभी 'सलाम' से मुलाक़ात करने की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई—न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही शायर की हैसियत से।

लेकिन किसी के चाहने न चाहने से क्या होता है, 'सलाम' से मेरी मुलाक़ात हुई और जैसा कि कहा जाता है 'ख़ूब' हुई। और फिर लखनऊ रेडियो से तब्दील होकर जब वह दिल्ली रेडियो में आ गया और कुछ दिनों तक बिन बुलाये मेहमान की तरह मेरे ही यहाँ रहा तो आप अनुमान लगा सकते हैं कि मेरी हालत क्या हुई होगी ? मेरे मित्र मुझ पर तरस खाते कि मुझ पर भगवान् का कोप 'सलाम' मछलीशहरी के रूप में प्रकट हुआ है जो न तो अच्छी बातें करता है, न अच्छे कपड़े पहनता है। इस पर जब वह अपने आत्म-विश्वास और स्वाभिमान की बातें करता है तो और भी उपहासजनक हो जाता है। लेकिन मित्रों की बार-बार हिदायतों के बावजूद कि वह अपने शत्रु अधिक बनाता है और मित्र कम बल्कि नहीं के बराबर, और चूंकि उसकी मित्रता या शत्रुता का सम्बन्ध सीधा उसके स्वार्थ से होता है, इसलिए मुझे उस समय के लिए तैयार रहना चाहिए जब मेरा नाम भी उसके शत्रुओं की सूची में लिखा जाएगा। मैं अभी तक उससे घृणा नहीं कर सका हूँ और मेरा ख़याल है कि घृणा उससे उसका कोई शत्रु भी नहीं करता। घृणा का नहीं, वह दया का पात्र है।

उर्दू शायरी का यह दयनीय शायर मछली शहर, ज़िला जौनपुर के एक निर्धन और अशिक्षित घराने में पहली जुलाई १६२१ को पैदा हुआ। प्रत्यक्ष है कि उच्च शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता थी और घर में धन नहीं था। अतः वह उर्दू में मिडिल और अंग्रेज़ी में दसवीं श्रेणी से आगे न बढ़ सका और अपनी छोटी-सी आयु में ही अपना और अपने कुटुम्ब का पेट पालने के लिए उसे तरह-तरह के पापड़ बेलने पड़े। एक-एक पैसे को वह दाँतों से पकड़ता रहा (और अब तो उसके दाँत और भी मज़बूत हो गये हैं) और चूंकि वर्तमान जीवन-व्यवस्था में पैसे का महत्व बहुत ही अधिक है, पैसे का होना सब कुछ है और पैसे का न होना उदार से उदार मनुष्य को अधम बना देता है, इसलिए दीन-दरिद्र 'सलाम' के मस्तिष्क में कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक गांठें पड़ती गईं। भरी महफ़िलों में उस पर तरह-तरह के वाक्य कसे जाते हैं। हर समय पिता या पत्नी को रुपया भेजने, मालिक-मकान का किराया चुकाने या जिस होटल में वह खाना खाता है, वहाँ चालीस के बजाये हर महीने उससे पैंतालीस रुपये ठगे जाने की बातें सुन-सुनकर मित्र-मुलाक़ाती उसे ऐसी नज़रों से देखने लगते हैं जैसे कहना चाहते हों—"तुम स्वयं ही बताओ 'सलाम'! तुम्हें शायर समझा जाये या कनमैलिया ?" तो या तो उनके

मस्तिष्क में एक और गाँठ पड़ जाती है या फिर वह उन लोगों पर बेतरह बरस पड़ता है। ऐसे समय में उसकी हालत और भी दयनीय हो जाती है क्योंकि अपने हीनता-भाव पर वह यह कहकर पर्दा डालने का निष्फल प्रयास करने लगता है कि नई पीढ़ी के लगभग सभी शायर उसके शिष्य या उससे प्रभावित हैं।

लेकिन इन सब बातों के अतिरिक्त मेरे विचार में 'सलाम' की सबसे बड़ी ट्रैजिडी यह है कि उसे बहुत छोटी आयु में ख्याति प्राप्ति हो गई। एक शायर की हैसियत से उसने उस समय आंख खोली जब उर्दू शायरी में रूप-संबन्धी नित नये प्रयोग किये जा रहे थे। नये ढंग में कही हुई प्रत्येक बात बेहद सराही जाती और कथा-वस्तु में चाहे कितना ही नैराश्य या अवसन्नता होती, रूप का नयापन उसे प्रथम श्रेणी की शायरी की पदवी दिला देता। उस काल में जिन उर्दू शायरों ने रूप सम्बन्धी असाधारण प्रयोग किये उनमें नून० मीम० 'राशिद' और 'मीराजी' का नाम सबसे पहले आता है और 'मीराजी' की शायरी तो एक बाक़ायदा स्कूल का दर्जा रखती है जिसकी विशेषता है प्रतीक-वाद तथा कामुकता।

'सलाम' मछलीशहरी इन दोनों शायरों का समकालीन है और उसने भी बहुत-से नये और सफल प्रयोग किये हैं। लेकिन जो चीज़ उसे 'मीराजी' से अलग करती है वह है विविध विषयों को पकड़ में लाना और जहाँ तक संभव हो प्रतीकवाद से पहलू बचाना। और जो चीज़ उसे 'राशिद' से अलग करती है वह है पंक्तियों की तराश-खराश करने की बजाय बड़ी तीव्रगति से उनका आप ही आप ढलते चले जाना।

यहाँ उस काल के रूप-सम्बन्धी प्रयोगों के गुणों-अवगुणों पर विस्तार से कुछ कहने की गुंजायश नहीं है, लेकिन इस वास्तविकता से किसी प्रकार इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन प्रयोगवादी शायरों ने आधुनिक उर्दू शायरी के विकास में काफ़ी बड़ा योग दिया है।

'सलाम' मछलीशहरी आज भी उसी तीव्रगति से साहित्य-रचना कर रहा है और उसकी इधर की कुछ चीज़ें काफ़ी पसन्द भी की गई हैं, लेकिन मेरे विचार में यदि वह जीवित है और रहेगा तो अपनी उन्हीं प्रयोग-काल की नज़्मों से।

ड्राइंग-रूम

ये सीनरी, ये ताजमहल, ये कृष्ण हैं और ये राधा हैं,
ये कौच है, ये पाईप है मेरा, ये नावल है, ये रिसाला है,
ये रेडियो है, ये क़ुमक़ुमे[1] हैं, ये मेज़ है, ये गुलदस्ता है,
ये गांधी हैं, टैगोर हैं ये, ये शाहनशाह, ये मलिका हैं।

हर चीज़ की बाबत पूछती है जाने कितनी मासूम है ये,
हां इस पर रात को सोने से मीठी-मीठी नींद आती है,
हां इसके दबाने से बिजली की रोशनी गुल हो जाती है,
समझी कि नहीं, ये कमरा है, हां मेरा ड्राइंग-रूम है ये।

इतनी जल्दी, मज़दूर औरत! आखिर ये गले में बाहें क्यों ?
ले देर हुई अब भाग भी जा, बस इतनी मुहब्बत काफ़ी है,
इस मुल्क के भूखे-प्यासों को पैसे की हाजत[2] काफ़ी है,
इतनी हंसमुख खामोशी, इतनी मानूस[3] निगाहें क्यों ?

मैं सोच रहा हूं कुछ बैठा, पाइप के धूएं के बादल में,
मैं छुप-सा गया हूं इक नाज़ुक तखईल[4] के मैले आंचल में !

---

१. बिजली के बल्ब २. ज़रूरत ३. परिचित ४. कल्पना

सड़क बन रही है

मई के महीने का मानूस मन्ज़र
ग़रीबों के साथी ये कंकर ये पत्थर
वहां शहर से एक ही मील हटकर
—सड़क बन रही है।

ज़मीं पर कुदालों को बरसा रहे हैं
पसीने - पसीने हुए जा रहे हैं
मगर इस मुशक़्क़त[1] में भी गा रहे हैं
—सड़क बन रही है।

मुसीबत है, कोई मुसर्रत नहीं है
इन्हें सोचने की भी फ़ुर्सत नहीं है
जमादार को कुछ शिकायत नहीं है
—सड़क बन रही है।

जवां, नौजवां और खमीदा कमर[2] भी
फ़ुसुर्दा जबीं[3] भी बहिश्ते-नजर भी
वहीं शामे-ग़म भी जमाले-सहर[4] भी
—सड़क बन रही है।

जमादार साये में बैठा हुआ है
किसी पर उसे कुछ अ़ताब[5] आ गया है
किसी की तरफ़ देखकर हंस रहा है
—सड़क बन रही है।

---

१. परिश्रम २. झुकी हुई (बूढ़ी) ३. चिंतित माथा ४. सुबह का सौन्दर्य ५. क्रोध

ये बेबाक उलफ़त ये अल्हड़ इशारा
बसन्ती से रामू तो रामू से राधा
जमादार भी है बसन्ती का शैदा

—सड़क बन रही है।

अगर सिर पे पगड़ी तो हाथों में हंटर
चला है जमादार किस शान से घर
बसन्ती भी जाती है पोशीदा होकर[1]

—सड़क बन रही है।

समझते हैं लेकिन हैं मसरूर अब भी
उसी तरह गाते हैं मज़दूर अब भी
बाहर-हाल वां[2] हस्बे-दस्तूर अब भी

—सड़क बन रही है।

◇ ◇ ◇

१. छुपकर २. वहां

······ज़रा बैठो
मैं दरिया के किनारे धान के खेतों से हो आऊं
यही मौसम है जब धरती से हम रूई उगाते हैं
तुम्हें तकलीफ़ तो होगी—
हमारे झोंपड़ों में चारपाई भी नहीं होती
नहीं—मैं रुक गई तो धान तक पानी न आयेगा
हमारे गांव में बरसात ही तो एक मौसम है
कि जब हम साल-भर के वास्ते कुछ काम करते हैं
—इधर बैठो,
पराई लड़कियों को इस तरह देखा नहीं करते,
—ये लिप-स्टिक,
ये पाउडर,
और ये स्कार्फ़ क्या होगा ?
मुझे खेतों में मज़दूरी से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती
मेरे होंटों पे घंटों बूंद पानी की नहीं पड़ती
मेरे चेहरे, मेरे बाज़ू पे लू और धूप रहती है
गले में सिर्फ़ पीतल का ये चन्दन-हार काफ़ी है
—बहुत ममनून हूं, लेकिन
हुज़ूर आप अपने तोहफ़े शहर की परियों में ले जायें

······हवा में दिलकशी है
और फ़ज़ा सहबा[1] लुटाती है
ज़रा पीपल की शाखों में
सुनहरे चांद की अंगड़ाइयां देखो
अभी बादल की रिमझिम में नहा-धोकर जो निकली है—!
ग़रीबी एक लानत है—

---

१. लाल मदिरा

तुम्हें परमात्मा ने हुस्न की देवी बनाया है
मेरा ये फ़र्ज़ है इस हुस्न को आरास्ता कर दूं
तुम्हारी मुस्कराहट से ज़रा वहशत बरसती है
मैं इसमें जगमगाती जिन्दगी की रूह भर दूंगा
तुम्हारे होंटों में सूखी हुई पत्ती की लर्ज़िश[1] है
मैं इसमें इक अनोखा रंग देकर जान लाऊंगा
तुम इस वीरांकदे[2] में किस क़दर मजबूर लड़की हो
तुम्हें मेरी मुहब्बत, मेरी दौलत की ज़रूरत है
—चलो मैं भी तुम्हारे साथ उन खेतों में चलता हूं
हवा में दिलकशी है और फ़ज़ा सहबा लुटाती है !
मैं दरिया की हसीं लहरों में इक संगीत ढूंढूंगा
तुम्हारे गांव की सखियों की टोली गीत गायेगी
सुनहरे धान के खेतों की दुनिया झूम जायेगी
नदी से दूर पीपल के किनारे, एक पनघट पर
वहां पाज़ेब की झंकार में नग़मे बरसते हैं
मैं ये सुनता रहा हूं,
आज इनको देख भी लूंगा—
अदीबों शायरों ने गांव को जन्नत बताया है—

……फ़रेबे-मज़हबो-सरमायादारी और क्या होगा ?
कि जनता के दिलों को
आंसुओं को,
उनकी आहों को,
दबाने के लिए—अपने तईं मसरूर रहने को
अदीबों, शायरों ने गांव को जन्नत बताया है

---

१. कम्पन २. निर्जन स्थान

खुद अपने रंगमहलों में—
किसानों और मज़दूरों की फ़रियादों से बचने को
शहनशाहों ने फ़नकारों से कुछ नग़मे खरीदे हैं
—तो फिर सरकार देहातों के नज़्ज़ारों को निकले हैं
मगर अब आलमे-मज़दूरो-दहक़ां[1] और ही कुछ है
ज़मीं पर खेत हैं, लेकिन यहां नग़मे नहीं होते।

◇ ◇ ◇

१. मज़दूरों-किसानों की हालत।
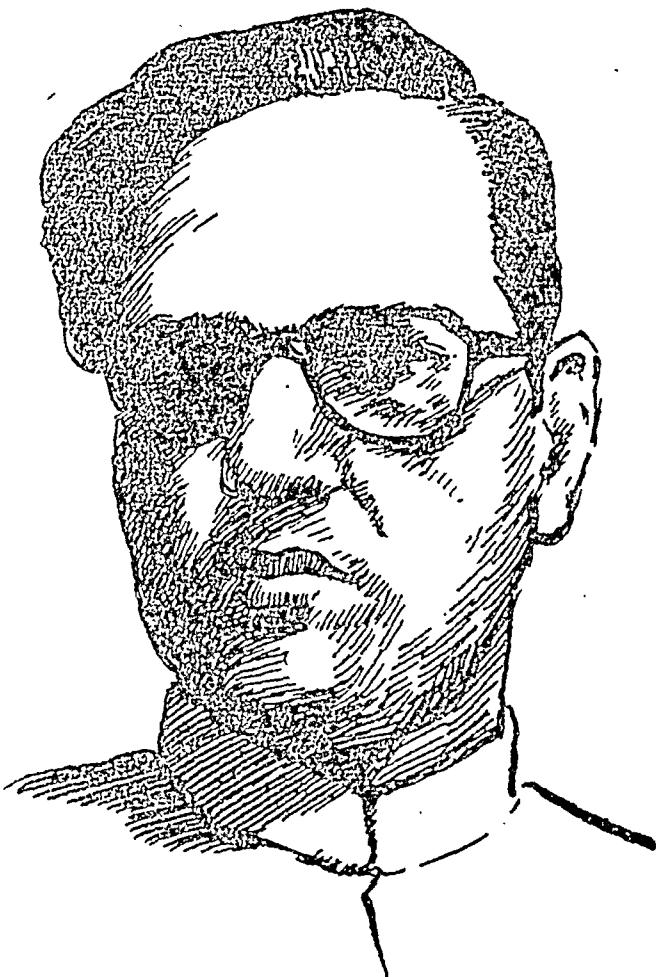
'मजरूह' सुलतानपुरी

अब खुल के कहूँगा हर ग़मे-दिल 'मजरूह' नहीं वो वक्त कि जब
अश्कों में सुनाना था मुझको आहों में ग़ज़लख़्वां होना था

परिचय

रूस की क्रांति से पहले क्रांतिकारी दल में एक टुकड़ी ऐसे युवकों की भी थी जो अतीत की प्रत्येक परम्परा को रूढ़ि और सामन्त-काल का जूठन कहकर उसे समाप्त कर डालने पर उतारू थी और इस सम्बन्ध में कोई सैद्धान्तिक युक्ति भी सुनने को तैयार नहीं थी। अतएव जब वहाँ के महान लेखक तुर्गनेव ने अपने उपन्यासों में ऐसे संकीर्णतावादी (Nihilist) पात्रों को प्रस्तुत करना और उनका खेदजनक परिणाम दिखाना शुरू किया तो उन युवकों ने उसे रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी बल्कि क्रान्ति-विरोधी तक कह डाला और माँग की कि उसकी समस्त पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया जाय क्योंकि उनके अध्ययन से क्रान्तिकारी युवकों के भटक जाने की सम्भावना है।

कुछ वर्ष पूर्व लगभग इसी प्रकार की एक माँग उर्दू के कुछ लेखकों और शायरों ने भी की। कहने को तो वे भी अपने आपको प्रगतिशील और क्रांतिकारी लेखक और शायर कहते थे लेकिन प्रगतिवाद के वास्तविक अर्थ समझे बिना और क्रांति से यांत्रिक लगाव के कारण उनसे कुछ ऐसी ही भूलें हुई और चूँकि ऐसे लेखकों और शायरों की संख्या काफ़ी बड़ी थी इसलिए एक समय तक प्रगतिशील साहित्य में गतिरोध तथा शैथिल्य रहा। उन्होंने नई बातें ज़रूर कीं लेकिन अतीत से सम्बन्ध न होने के कारण वे बातें खोखले नारे बनकर रह गई। यहीं तक बस नहीं, उन्होंने साहित्य के कुछ रूपों को मरते हुए सामन्ती समाज का अंग कहकर उनके उन्मूलन की भी माँग की।

बेचारी उर्दू 'ग़ज़ल' पर भी उनका यह नज़ला गिरा। ग़ज़ल को सामन्ती

समाज का अंग और केवल 'आत्मीयता' (Subjectiveness) का चमत्कार कहते हुए वे इस तात्त्विक सिद्धांत को भूल गये कि हर नई चीज़ पुरानी चीज़ की कोख से जन्म लेती है। भाषा तथा साहित्य और संस्कृति तथा सभ्यता से लेकर शारीरिक वस्त्रों तक कोई चीज़ शून्य में आगे नहीं बढ़ती बल्कि इसे अपने पिछले फ़ैशन का सहारा लेना पड़ता है। और जहाँ तक आत्मीयता का सम्बन्ध है, आत्मीयता किसी चिकने घड़े का नाम नहीं है बल्कि आत्मीयता भी पदार्थ-विषमता का ही प्रतिबिम्ब होती है। अपने मन की दुनिया में रहना किसी पागल के लिए तो सम्भव है लेकिन कोई चेतन व्यक्ति वाह्य परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इन जोशीले लेकिन विमूढ़ युवकों के बारे में जो नयेपन के इतने रसिया थे और पुरानी परम्पराओं के इतने विरोधी, उर्दू के एक समालोचक ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "उन्होंने टब के गदले पानी के साथ-साथ टब और बच्चे को भी फेंक देने की ठान ली थी।"

सौभाग्यवश उर्दू के इन संकीर्णतावादी लेखकों और शायरों ने बहुत शीघ्र अपनी भूल स्वीकार कर ली और साहित्य, इतिहास और सामाजिक परिस्थितियों के अध्ययन तथा निरीक्षण के बाद अब वे बच्चे और टब को नहीं केवल टब के गदले पानी को फेंकने और उसकी जगह निर्मल और स्वच्छ पानी भरने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह ठीक है कि उर्दू शायरी का एक विशेष रूप होने के कारण ग़ज़ल की कुछ अपनी विशेष परम्पराएँ हैं और वह सामन्त-काल की उत्पत्ति है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ग़ज़ल की परम्पराओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ या हो नहीं सकता। विश्व, समाज और मानव-जीवन की प्रत्येक वस्तु की तरह ग़ज़ल की परम्पराओं में भी बराबर परिवर्तन होता रहा है और 'मीर', 'सौदा', 'दर्द', 'मोमिन', 'ग़ालिब', 'हाली' और 'दाग़' के कलाम के क्रमशः अध्ययन से हम इस परिवर्तन अथवा विकास का रंग-रूप देख सकते हैं। जागीरदारी के पतन और इस कारण से ग़ज़ल की अधोगति के बाद बीसवीं शताब्दी में जिन शायरों ने ग़ज़ल की रूढ़िगत परम्पराओं में परिवर्तन लाने का भरसक प्रयत्न किया उनमें हसरत मोहानी, 'इक़बाल', 'जोश', 'जिगर', 'फ़िराक़', 'फ़ैज़' और 'जज्बी' के नाम सबसे आगे हैं। इस प्रसंग में, 'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र में नवागन्तुक है।

'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र में नवागन्तुक अवश्य है लेकिन असिद्धहस्त नहीं। उर्दू ग़ज़ल के शयनगृह में वह एक सिमटी-सिमटाई लजीली

दुल्हन की तरह नहीं बल्कि एक निश्चित तथा निडर दूल्हे की तरह दाखिल हुआ है और कुछ ऐसे स्वाभिमान से दाखिल हुआ है कि शयनगृह का मदमाता वातावरण चकाचौंध प्रकाश में परिवर्तित हो गया है।

'मजरूह' की शायरी में ग़ज़ल के बांकेपन के साथ-साथ ग़ज़ल का सुन्दर स्वरूप भी मौजूद है और चूंकि उसके सुलझे हुए राजनीतिक बोध ने सामाजिक विकास और गति के नियमों को समझ लिया है इसलिए वह सौंदर्य का चित्र प्रस्तुत कर रहा हो या प्रेम का दुख-दर्द, राजनीतिक समस्याओं का उल्लेख कर रह हो या समाज की गति का चित्रण, हमें उसके यहां हर जगह यथार्थवाद की झलक मिलती है और जब वह कहता है कि :

बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफ़ीना[1] मेरा डबो देते॥

या

मेरे काम आ गईं आखिरश[2] यही काविशें[3] यही गरदिशें।
बढ़ीं इस क़दर मेरी मंज़िलें कि क़दम के खार[4] निकल गये॥

या फिर

सर पे हवा-ए-ज़ुल्म चले सौ जतन के साथ।
अपनी कुलाह कज[5] है उसी बांकपन के साथ॥

तो केवल इतना ही नहीं कि 'मजरूह' हमें ग़ज़ल की प्राचीन परम्पराओं का उत्तराधिकारी नजर आता है बल्कि उसके यहाँ हमें ऐतिहासिक सच्चाइयों की भी बड़ी सुन्दर झलक मिलती है। खिज़ां, बहार, चमन, साक़ी, महफ़िल, शराब, पैमाने इत्यादि शब्दों से, जो प्राचीन ग़ज़ल के 'पात्र' हैं, 'मजरूह' ने बड़ी कला-कौशलता से अपना काम निकाला है। इन शब्दों को पहनाया हुआ उसका नया अर्थ इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि शायरी के अन्य रूपों की तरह ग़ज़ल भी एक लिबास है जो विचारों के शरीर को ढांपता है और अपनी तराश-खराश और रंग-रूप के आधार पर किसी भी दूसरे लिबास से कम सुन्दर नहीं। 'मजरूह' ने आवश्यकतानुसार इस लिबास में कुछ नये शब्दों द्वारा और भी रंगीनी और खूबसूरती पैदा करने की कोशिश की है। अपनी इस कोशिश में कहीं-कहीं तो वह बहुत सफल रहा है। उदाहरणस्वरूप पूंजीवाद के प्रति अपनी

---

१. नाव २. आखिर ३. प्रयत्न ४. कांटे ५. टोपी टेढ़ी है।

घृणा प्रकट करते हुए उसके सबसे बड़े लक्षण 'बैंक' को वह इस प्रकार अपने शेर में बांधता है :

जबीं पर[1] ताजे-ज़र[2], पहलू में ज़िंदां[3], बैंक छाती पर।
उठेगा बेकफ़न कब ये जनाज़ा हम भी देखेंगे॥

और क्रान्ति का स्वागत करते हुए वह ज़मीन, हल, जौ के दाने, और कारखाने ऐसे शब्दों को, जो नज़्मों में तो किसी तरह खप सकते हैं लेकिन ग़ज़ल की नाज़ुक कमर इनका बोझ मुश्किल ही से उठा सकती है, बड़ी शान से यों प्रयोग में लाता है :

अब ज़मीं गायेगी हल के साज़ पर नग़मे।
वादियों में नाचेंगे हर तरफ़ तराने से॥
अहले-दिल उगायेंगे ख़ाक से महो-अंजुम[4]।
अब गुहर[5] सुबक[6] होगा जौ के एक दाने से॥
मनचले बुनेंगे अब रंगो-बू के पैराहन।
अब सँवर के निकलेगा हुस्न कारख़ाने से॥

लेकिन कभी-कभी नये शब्दों के प्रयोग की धुन में और राजनीति-सम्बंधी सामयिक आन्दोलनों की धारा में बहकर वह कला की दृष्टि से बेतरह असफल भी रहता है और उस कोमल सम्बंध को भुला देता है जो राजनीतिक बोध और उसके कलात्मक वर्णन के बीच होना चाहिये। उसके ऐसे शेर गालीचे में टाट के पेवंद की तरह खटकते हैं। ज़रा एक शेर देखिये :

अमन का झंडा इस धरती पर किसने कहा लहराने न पाये?
ये भी कोई हिटलर का है चेला, मार ले साथी जाने न पाये॥

इस प्रकार के शेर यद्यपि उसकी शायरी में आटे में नमक के बराबर हैं, फिर भी मेरे तुच्छ विचार में 'मजरूह' को इस प्रकार के वर्णन से पहलू बचाना चाहिये, क्योंकि यह भी कुछ उसी प्रकार की संकीर्णता है जिसने रूस के महान कलाकार तुर्गनेव को क्रान्ति-विरोधी ठहराया था और क्रान्ति-आंदोलन में योग देने की बजाय क्रान्ति को हानि पहुँचाई थी।

आधुनिक उर्दू ग़ज़ल का यह क्रान्तिवादी शायर, जो अपने साधारण जीवन में बड़ा-सौंदर्य प्रेमी है, कभी भद्दी बात नहीं करता, कभी भद्दे वस्त्र नहीं पहनता, भद्दा खाना नहीं खाता, भद्दे मकान में नहीं रहता, भद्दी पुस्तकें नहीं

१. माथे पर २. पूंजी का ताज ३. जेलखाना ४. चान्द-सितारे
५. मोती ६. हल्का (कम कीमत का)

रखता और इसीलिए वहुत कम भद्दे शेर कहता है, ज़िला आज़मगढ़ के एक कस्बे निज़ामाबाद में पैदा हुआ और हकीम वनते-बनते संयोग से शायर बन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी ज़बान से सुनिये :

"मैं एक पुलिस कांस्टेबल का बेटा हूँ जो मुलाज़मत के दौरान में आज़मगढ़ यू० पी० में रहे और वहीं कस्वा निज़ामाबाद में १९१९ में मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम (उर्दू, फ़ारसी, अर्बी) वहीं हासिल की। १९३० में मैं आज़मगढ़ से कस्वा टांडा जिला फ़ैज़ाबाद आया और वहाँ अर्बी दर्स निज़ामिया की तकमील (पूर्ति) करना चाही लेकिन कर नहीं सका और इलाहावाद यूनीवर्सिटी के अर्बी इम्तिहानों 'मौलवी', 'आलम', 'फ़ाज़ल' की फ़िक्र की कि इस जरिये से किसी स्कूल में टीचरी मिल सकेगी। लेकिन 'आलम' तक पढ़कर उसे भी छोड़ दिया और तिब (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अर्बी ज़बान में तिब की तकमील की। यह ज़माना १९३८ का है। चन्द महीने तक मतब (औषधालय) किया लेकिन चूंकि सुलतानपुर में कुछ शेरो-अदब का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक़ पैदा हुआ। १९४१ में 'जिगर' मुरादावादी ने मुझे एक मुशायरे में सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरों में गये। इस दौरान में उन्होंने मुझे दो वातें बताईं। एक तो यह कि जैसे आदमी होंगे वैसे शायर होंगे। दूसरी वात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नक़ल न करो वल्कि जो गुज़रे (आत्मानुभव हो) वही कहो। वाक़ायदा इसलाह (संशोधन) मैंने किसी से नहीं ली। विल्कुल शुरू की दो ग़ज़लों पर 'आसी' साहव मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे ग़ज़लें मेरे हाफ़ज़े (मस्तिष्क) में विल्कुल नहीं हैं। १९४५ में एक मुशायरे के सिलसिले में वम्बई आया और यहीं फ़िल्मों के गीत वग़ैरा लिखने लगा और अब तक यहीं हूँ। १९४७ से प्रगतिशील लेखक-संघ से वावस्ता हूँ और रोज़-वरोज़ (अगरचे फ़ुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश में हूँ कि ग़ज़ल के पसमंज़र (पृष्ठ-भूमि) में मार्कसिज़्म को रखकर समाजी, सियासी और इश्क़िया शायरी कर सकूं। चुनांचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनों एतवार से जानते हो, जो चाहो फ़ैसला कर लो।"

इस सम्बोधन का 'तुम' चूंकि 'मैं' हूँ इसलिए मेरा फ़ैसला यह है कि 'मजरूह' आदमी भी वहुत अच्छा है और शायर भी वड़ा प्रतिभाशाली।

ग़ज़लें और शेर

हम अपना मुदावा[1] ढूँढ चुके दरियाओं में सहराओं में।
तुम भी जिसे तस्कीं दे न सके वो दर्दे-जुनूं कम क्या होगा?
गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकनां[2] अरबाबे-चमन[3]।
जब बर्क़[4] तड़प कर टूटी थी उस वक़्त का आलम क्या होगा?
जिस शोख़-नज़र की महफ़िल में आंसू भी तबस्सुम बन जाये।
वां शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा?
अब अपनी नज़र है बेमाने मफ़हूमे-तमन्ना[5] कुछ भी नहीं।
जब इश्क़ भी था कुछ चीं-ब-जबीं[6], अब हुस्न भी बरहम क्या होगा?
'मजरूह' मेरे अरमानों का अंजाम शिकस्ते-दिल[7] ही सही।
जी खोल के ख़ुद पर हंस न सकूं इतना भी मुझे ग़म क्या होगा?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो ज़िन्दगी के लिए।
हम एक बार तेरी आरज़ू भी खो देते॥
कहां वो शब कि तेरे गेसुओं के साये में।
खयाले-सुबह से फिर आस्तीं भिगो लेते॥
बचा लिया मुझे तूफ़ाँ की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफ़ीना[8] मेरा डबो देते॥

---

१. इलाज २. रोते-धोते ३. चमन के मालिक ४. बिजली ५. आकांक्षा का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८. नौका

ये रुके-रुके से आंसू ये घुटी-घुटी-सी आहें।
यूंही कब तलक ख़ुदाया गमे-ज़िन्दगी निबाहें ?
कहीं ज़ुल्मतों में[1] घिरकर है तलाशे-दस्ते-रहबर[2]।
कहीं जगमगा उठी हैं मेरे नक़्शे-पा से[3] राहें ।।
तेरे खानमां-ख़रावों[4] का चमन कोई, न सहरा।
ये जहां भी बैठ जायें वहीं इनकी बारगाहें[5] ।।
कभी जादा-ए-तलब[6] से जो फिरा हूं दिल-शिकस्ता।
तेरी आरज़ू ने हंसकर वहीं डाल दी हैं बांहें ।।

◇ ◇ ◇

तेरी चश्मे-शोख़ को क्या हुआ नहीं होती आज हरीफ़े-दिल[7] ।
मेरे ज़ोमे-इश्क़[8] की खैर हो ये किसे नज़र से गिरा दिया ।।
शबे-इन्तज़ार की कश्मकश में न पूछ कैसे सहर हुई ।
कभी इक चिराग़ जला दिया कभी इक चिराग़ बुझा दिया ।।

◇ ◇ ◇

किस किस को हाय तेरे तग़ाफ़ुल[9] का दूं जवाब ।
अक्सर तो रह गया हूँ झुकाकर नज़र को मैं ।।
अल्लाह रे वो आलमे-रुख़सत कि देर तक ।
तकता रहा हूँ यूंही तेरी रहगुज़र को मैं ।।

◇ ◇ ◇

मोहतसिव ! साक़ी की चश्मे-नीम-वा[10] को क्या करूं ।
मैकदे का दर खुला गर्दिश में जाम आ ही गया ।।
इक सितमगर तू कि वजहे-सद-खराबी[11] तेरा दर्द ।
इक बला-कश[12] मैं कि तेरा दर्द काम आ ही गया ।।

---

१. अंधेरों में २. पथ-प्रदर्शक के हाथों की तलाश ३. पदचिह्नों से
४. जिनका घर तूने वर्बाद कर रखा है ५. दरवार, कचहरी ६. प्रेम-मार्ग
७. दिल की शत्रु ८. इश्क़ का घमंड ९. वेरुखी १०. अधखुली आंख
११. सैकड़ों खराबियों का कारण १२. वेतहाशा पीने वाला

हम क़फ़स ! सय्याद की रस्मे-ज़बाँ-बन्दी की खैर ।
बेज़बानों को भी अन्दाज़े-कलाम[1] आ ही गया ।।
क्यों कहूंगा मैं किसी से तेरे ग़म की दास्तां ।
और अगर ऐ दोस्त लब पर तेरा नाम आ ही गया !

◇ ◇ ◇

मुझे सहल हो गईं मंज़िलें वो हवा के रुख भी बदल गये ।
तेरा हाथ हाथ में आ गया कि चिराग़ राह में जल गये ।।
वो लजाये मेरे सवाल पर कि उठा सके न झुका के सर ।
उड़ी ज़ुल्फ़ चेहरे पे इस तरह कि शबों के राज़[2] मचल गये ।।
वही बात जो न वो कर सके मेरे शेरो-नग़मे में आ गई ।
वही लब न मैं जिन्हें छू सका क़दहे-शराब में[3] ढल गये ।।
उन्हें कब के रास भी आ चुके तेरी बज़्मे-नाज़ के हादसे ।
अब उठे कि तेरी नज़र फिरे जो गिरे थे गिर के संभल गये ।।
मेरे काम आ गईं आखिरश यही काविशें यही गरदिशें ।
बढ़ीं इस क़दर मेरी मंज़िलें कि क़दम के खार निकल गये ।।

◇ ◇ ◇

आहे-जांसोज़[4] की महरूमी-ए-तासीर[5] न देख ।
हो ही जायेगी कोई जीने की तदबीर, न देख ।।
हादसे और भी गुज़रे तेरी उल्फ़त के सिवा ।
हां ! मुझे देख मुझे अब मेरी तस्वीर न देख ।।
ये ज़रा दूर पे मंज़िल ये उजाला ये सुकूं ।
ख्वाब को देख अभी ख्वाब की ताबीर न देख ।
देख ज़िंदां से परे रंगे-चमन, जोशे-बहार ।
रक़्स करना है तो फिर पांव की ज़ंजीर न देख ।।
कुछ भी हो फिर भी दुखे दिल की सदा हूं नादां ।
मेरी बातों को समझ तलखी-ए-तक़रीर[6] न देख ।।

---

१. बोलने का ढंग २. रातों के भेद ३. शराब के प्याले ४. जान तक को जला देने वाली आह ५. प्रभाव-हीनता ६. कटु स्वर

वही 'मजरूह' वही शायरे-आवारा-मिज़ाज।
कौन उट्ठा है तेरी बज़्म से दिलगीर न देख॥

◇ ◇ ◇

न मिट सकेंगी तनहाइयां मगर ऐ दोस्त।
जो तू भी हो तो तबीयत ज़रा बहल जाये॥

◇ ◇ ◇

सुनते हैं कि कांटे से गुल तक हैं राह में लाखों वीराने।
कहता है मगर ये अज़्मे-जुनूं सहरा से गुलिस्तां दूर नहीं॥

◇ ◇ ◇

अलग बैठे थे फिर भी आंख साक़ी की पड़ी हम पर।
अगर है तिश्नगी[1] कामिल[2] तो पैमाने भी आयेंगे॥

◇ ◇ ◇

हम तो पा-ए-जानाँ पर[3] कर भी आए इक सजदा।
सोचती रही दुनिया कुफ्र है कि ईमां[4] है?

◇ ◇ ◇

सवाल उनका जवाब उनका सुकूत[5] उनका खिताब[6] उनका।
हम उनकी अंजुमन में सर न करते ख़म तो क्या करते?

◇ ◇ ◇

मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंज़िल मगर।
लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया॥
मैं तो जब मानूं कि भर दे साग़रे-हर खासो-आम।
यूं तो जो आया वही पीरे-मुग़ां[7] बनता गया॥
जिस तरफ़ भी चल पड़े हम आबला-पायाने-शौक़[8]।
खार से गुल और गुल से गुलिस्तां बनता गया॥

---

१. प्यास (कामना) २. पूर्ण ३. महबूब के पैरों पर ४. ईमान
५. चुप्पी ६. सम्बोधन ७. शराब देने वाला बुजुर्ग साक़ी ८. जिज्ञासा (प्रेम) के मार्ग पर चलने वाला ऐसा राही जिसके पांव में छाले पड़ गये हों।

शरहे-ग़म[1] तो मुख़्तसर होती गई उसके हुज़ूर ।
लफ़्ज़ जो मुंह से न निकला दास्तां बनता गया ।।

◇ ◇ ◇

आ निकल के मैदां में दो-रुख़ी के ख़ाने से ।
काम चल नहीं सकता अब किसी बहाने से ।।
सुनते हम तो क्या सुनते इक बुज़ुर्ग की बातें ।
सुबह को इलाक़ा[2] क्या शाम के फ़साने से ।।
वो लगा के सीने से फ़लसफ़ा तसव्वुफ़[3] का ।
शेख़ जी हसीनों में फिरते हैं दिवाने से ।।
ख़ुदकशी ही रास आई देख बदनसीबों को ।
ख़ुद से भी गुरेज़ां[4] हैं भाग कर ज़माने से ।।
अब जुनूं पे वो साअ़त[5] आ पड़ी कि ऐ 'मजरूह' ।
आज ज़ख़्मे-सर बेहतर दिल पे चोट खाने से ।।

◇ ◇ ◇

जस्त करता हूं[6] तो लड़ जाती है मंज़िल से नज़र ।
हाइले-राह कोई और भी दीवार सही ।।
ज़िन्दगी की क़द्र सीखी शुक्रिया तेग़े-सितम[7] ।
हां हमीं थे कल तलक जीने से उकताये हुए ।।
सैरे-साहिल कर चुके ऐ मौजे-साहिल सर न मार ।
तुझ से क्या बहलेंगे तूफ़ानों के दहलाये हुए ।।

◇ ◇ ◇

मैं हज़ार शक्ल बदल चुका चमने-जहां में सुन ऐ सबा ।
कि जो फूल है तेरे हाथ में ये मेरा ही लख़्ते-जिगर[8] न हो ?
तेरे पा ज़मीं पे रुके-रुके तेरा सर फ़लक[9] पे झुका-झुका ।।
कोई तुझ से भी है अज़ीम-तर[10] यही वहम तुझको मगर न हो ।।

---

१. ग़म की व्याख्या २. सम्बंध ३. सूफ़ीवाद ४. दूर (पहलू बचाये हुए) ५. समय (क्षण) ६. छलांग लगाता हूं ७. ज़ुल्म ढाने वाली तलवार ८. दिल का टुकड़ा ९. आकाश १०. अधिक महान

मेरे होंटों पे तड़पते हैं अभी तक शिकवे।
जाने उसकी वही नीची सी नज़र है कि नहीं ?
दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर।
सोचता हूं ये तेरी राहगुज़र है कि नहीं ?

◇ ◇ ◇

दुआ देती हैं राहें आज तक मुझ आबला-पा को।
मेरे क़दमों की गुलज़ारी बियाबां से चमन तक है।।

'क़तील' शफ़ाई

ग़मे-ज़ात से मेरी ज़िन्दगी ग़मे-क़ायनात में ढल गई
किसी बज़्मे-नाज़ में खोके भी मुझे क़ायनात से प्यार है

परिचय

किसी शायर के शेर लिखने के ढंग आपने बहुत सुने होंगे। उदाहरणतः 'इक़बाल' के बारे में सुना होगा कि वे फ़र्शी हुक्का भरकर पलंग पर लेट जाते थे और अपने मुन्शी को शेर डिक्टेट कराते थे। 'जोश' मलीहाबादी सुबह-सवेरे लम्बी सैर को निकल जाते हैं और यों ताज़ादम होकर रचनात्मक काम करते हैं। नज़्म या ग़ज़ल लिखते समय बेतहाशा सिगरेट फूँकने, चाय की केतली गरम रखने और लिखने के साथ-साथ चाय की चुस्कियाँ लेने, यहाँ तक कि कुछ शायरों के सम्बन्ध में यह भी सुना होगा कि उनके दिमाग़ की गिरहें शराब के कई पैग पीने के बाद खुलना शुरू होती हैं। लेकिन यह अंदाज शायद ही आपने सुना हो कि कोई शायर शेर लिखने का मूड लाने के लिए सुबह चार बजे उठकर बदन पर तेल की खूब मालिश करता हो और फिर ताबड़-तोड़ डंड पेलने के बाद लिखने की मेज़ पर बैठता हो। यदि आपने नहीं सुना तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह शायर 'क़तील' शफ़ाई है।

'क़तील' शफ़ाई के शेर कहने के इस अंदाज़ को और उसके कहे हुए शेरों को देखकर आश्चर्य होता है। कितनी अजीब बात है कि इस प्रकार लंगर-लंगोट कसकर लिखे गये शेरों में झरनों का सा संगीत और मधुरता, फूलों की-सी महक और निखार और उर्दू की परम्परागत शायरी के महबूब की कमर ऐसी लचक मिलती है। अर्थात् ऐसे वक्त में जब कि उसके कमरे से खम ठोंकने की आवाज़ आनी चाहिये, वहाँ के वातावरण में कुछ ऐसी गुनगुनाहट बसी होती है :

चौदहवीं रात के चाँद की चाँदनी खेतियों पर हमेशा बिखरती रहे,
ऊँघते रहगुज़ारों पे फैले हुए हर उजाले की रंगत निखरती रहे,
नर्म ख्वाबों की गंगा बिफरती रहे !

या

रात भर बूँदियाँ रक़्स करती रहीं, भीगी मौसीक़ियों ने सवेरा किया।

या फिर

सोई-सोई फ़ज़ा आँख मलने लगी, सेली-सेली हवाओं के पर तुल गये।

और इसके साथ यदि आपको यह भी मालूम हो जाय कि 'क़तील' शफ़ाई जाति का पठान है और एक समय तक गेंद-बल्ले, रैकट, लुंगियाँ और कुल्ले बेचता रहा है, चुंगीखाने में मोर्हरिरी और बस की कम्पनियों में बुकिंग-क्लर्की करता फिरा है तो उसके शेरों के लोच-लचक को देखकर आप अवश्य कुछ देर के लिए सोचने पर विवश हो जायेंगे। इस पर यदि कभी आपको उसे देखने का अवसर मिल जाय और आपको यह न बताया जाय कि यह 'क़तील' है तो आज भी पहली नज़र में वह आपको शायर की अपेक्षा एक ऐसा क्लर्क नज़र आयेगा जिसकी सौ-सवासौ तनख्वाह के पीछे आधा दर्जन बच्चे और एक पत्नी जीने का सहारा ढूंढ रही हो। चेहरे-मोहरे से भी वह ऐसा ठेठ पंजाबी नज़र आता है जो अभी-अभी लस्सी के बड़े-बड़े दो गिलास पी चुका हो, लेकिन डकार लेना अभी बाक़ी हो।

'क़तील' शफ़ाई का जन्म दिसम्बर १९१९ में तहसील हरीपुर जिला हज़ारा (पाकिस्तान) में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा इस्लामियाँ मिडिल स्कूल रावलपिंडी में प्राप्त की, उसके बाद गवर्नमेंट हाई स्कूल में दाखिल हुआ, लेकिन पिता के देहांत और कोई अभिभावक न होने के कारण पढ़ाई जारी न रह सकी। पिता की छोड़ी हुई पूंजी समाप्त होते ही उसे तरह-तरह के 'बिज़नेस' और नौकरियाँ करनी पड़ीं। साहित्य की ओर ध्यान इस तरह हुआ कि क्लासिकल साहित्य में पिता की बहुत रुचि थी, उन्होंने नन्हे क़तील को 'क़िस्सा चहार दरवेश' और 'क़िस्सा हातिमताई' आदि पुस्तकें पढ़ने को दीं और उन्हें पढ़ते-पढ़ते उसे स्वयं कहानियाँ लिखने का शौक़ चर्राया। लेकिन बाद में कहानियाँ लिखने की बजाय उसने केवल इस कारण से शायरी शुरू कर दी कि उसके कथनानुसार उसे कहानी को साफ़ करने और फिर कापी करने में बहुत कष्ट होता था। शुरू-शुरू में उसने वही 'आहों, फ़रियादों' वाली परम्परागत ग़ज़लें कहीं (और मैं समझता हूँ आगे चलकर यही चीज़ उसके लिए हितकर सिद्ध हुई क्योंकि इस प्रकार वह शायरी की पुरानी परम्पराओं से अनभिज्ञ

नहीं रहा) और 'शफ़ा' कानपुरी नाम के एक शायर से इसलाह ली (इसी सम्वन्ध से वह स्वयं को 'शफ़ाई' लिखता है), लेकिन नौकरी के सिलसिले में रावलपिंडी आने पर उसने साहित्य की प्रगतिशील धारा के अनुसरण में काव्य-रूप के नये-नये प्रयोग किये और अहमद नदीम क़ासमी ऐसे शायर के मैत्रीपूर्ण परामर्शों द्वारा उसकी इस शायरी का प्रारम्भ हुआ जो आज हमारे सामने है।

लेकिन कोई परामर्श या संशोधन उस समय तक किसी शायर के लिए हितकर नहीं हो सकता जब तक कि स्वयं शायर के जीवन में कोई प्रेरक वस्तु न हो। लगन और क्षमता का अपना अलग स्थान है लेकिन इस दिशा की समस्त क्षमतायें मौलिक रूप से उस प्रेरणा ही के वशीभूत होती हैं, जिसे 'मनोवृत्तांत' का नाम दिया जा सकता है। अतएव १९४७ में जब वह लाहौर की एक फ़िल्म कम्पनी में गीतकार के रूप में काम कर रहा था, 'चन्द्रकान्ता' नाम की एक एक्सट्रा-गर्ल उसके जीवन में आई। और उसकी शायरी को नई शक्ति और नया रंग-रूप प्रदान कर गई। यद्यपि यह प्रेम केवल डेढ़ वर्ष तक चल सका और उसका परिणाम विलकुल नाटकीय तथा शायर के लिए अत्यन्त दुखदायक सिद्ध हुआ लेकिन जहाँ तक उसकी शायरी का सम्वन्ध है स्वयं उसके अपने शब्दों में :

"यदि यह घटना न घटी होती तो शायद अब तक मैं वही परम्परागत ग़ज़लें लिख रहा होता जिनमें यथार्थ की अपेक्षा वनावट और फ़ैशन होता है। इस घटना ने मुझे यथार्थवाद के मार्ग पर डाल दिया और मैंने व्यक्तिगत घटना को सांसारिक रंग में ढालने का प्रयत्न किया। अतएव उसके वाद जो कुछ भी मैंने लिखा है वह कल्पित कम और वास्तविक अधिक है।"

यूं उस पर यह नया भेद खुला कि काव्य की परम्पराओं से पूरी जानकारी रखने और अपनी ओर से नये विचार तथा नये शब्द देने के साथ-साथ केवल वही शायरी अधिक अपील कर सकती है जिसमें शायर का व्यक्तित्व अर्थात् उसका 'मनो-वृत्तान्त' विद्यमान हो (जो अनिवार्य रूप से परिस्थितियों से जन्म लेता और वनता है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के वाद नई पीढ़ी के जो उर्दू शायर वड़ी तेज़ी से उभरे हैं उनमें 'क़तील' शफ़ाई का अपना एक विशेष रंग है।

अब तक 'क़तील' की कविताओं के तीन संग्रह 'हरियाली', 'गजर' और 'जल-तरंग' प्रकाशित हो चुके हैं। अपने कविता-संग्रहों के नाम रखने में उसने किसी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। ये नाम उसकी संगीतवर्मी शायरी के सूचक हैं।

हरजाई

खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
एक सरशार[1] जवां मैंने खड़ा पाया था।
तमतमाते हुए चेहरे पे सुलगती आँखें,
जैसे महके हुए गुलज़ार का ख्वाब आया था।

सर पे गागर के छलकने से जो तारे टूटे,
आसमां झांक रहा था मुझे हैरानी से।
टन से कंकर जो पड़ा मेरी हसीं गागर पर,
एक नग़मा सा उलझने लगा पेशानी से।

टूटती रात गये घर को पलटना मेरा,
इक लपकते हुए साये ने डराया था मुझे।
"तुम? अरी तुम ?" (वही सरशार जवाँ था शायद),
"जी, यूंही एक सहेली ने बुलाया था मुझे।"

खेत भरपूर जवानी को लुटा बैठे थे,
हर दरांती पे तसलसुल[2] का जुनूं[3] तारी था।
जाने क्या देख रहा था वो मेरे चेहरे पर।
इस क़दर याद है उंगली से लहू जारी था।

---

१. आह्लादित २. निरन्तरता ३. उन्माद

कांच की चूड़ियाँ कल रात न हों हाथों में,
इतनी ऊंची तेरी पाज़ेब की झंकार न हो।
सरसराता हुआ मलबूस[1] न लहरा जाये,
किसी साये का गुमां[2] भी पसे-दीवार[3] न हो।

जब कभी चांद से पिघली हुई चांदी बरसी,
ऊंघती रात के शाने को झंझोड़ा हमने।
भूलकर भी कभी पलकें न झपकने पाईं,
इस क़दर नींद को आंखों से निचोड़ा हमने।

अब मगर चांदनी रात आके गुज़र जाती है,
पूछता ही नहीं कोई मेरी तनहाई को।
खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
ढूंढती हैं मेरी आंखें किसी हरजाई को।

◇ ◇ ◇

१. पहरावा २. सन्देह ३. दीवार के पीछे

सरताज

चिलमन से उभरती हैं खनकती हुई किरनें,
गाती है फ़ज़ा[1] में कोई ज़रपोश[2] कलाई,
मैं हलक़ा - ए - नग़मात में[3] हैरान खड़ा हूँ,
आंखों में समेटे हुए इक जश्ने - तलाई[4]।
ये जश्ने - मुसर्रत जिसे तख़्लीक़ किया है[5],
आराम से बीते हुए पच्चास बरस ने,
ये क़ाफ़िला - ए - उम्र की रौंदी हुई मंज़िल,
पूजा है जिसे हिरस को आवाज़े-जरस ने[6]।
ये सांस, ये सूखे हुए पत्तों का तरन्नुम[7],
ये जिस्म, ये टूटा हुआ पीतल का कटोरा,
ये रंग, ये तेज़ाब में डूबी हुई चान्दी,
ये उम्र, ये भादों की हवाओं का हिलोरा।
कुछ भी न सही, खून की बेकैफ़ हरारत[8],
दौलत ने इसे प्यार का हक़ दे तो दिया है,
गुलचीं की मचलती हुई मुश्ताक़[9] नज़र ने।
कोंपल को हिना[10]वार क़लक़[11]दे तो दिया है।
रातों को हव्स हो कि गजरदम[12] की हवायें,
गजरों की ये झंकार झरोके में रहेगी,
जब तक न हक़ायक़ से[13] हटा दे कोई पर्दा,
औरत यूंही अखलाक़ के धोखे में रहेगी।

---

१. वातावरण २. सोना-भरी ३. संगीत के घेरे में ४. सुनहला जश्न ५. रचा है ६. घड़ियाल की आवाज़ ने ७. संगीत ८. आनन्द-रहित गर्मी ९. उत्सुकतापूर्ण १०. मंहदी ११. बेचैनी १२. प्रभात १३. वास्तविकताओं से

गीत

तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई
मेरे मन की आस पुरानी, तेरे तन की आस नई

तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर झूले
कली-कली से प्यार बढ़ाये, रुत-रुत के दुख भूले
इक समान है तुझको, सावन हो या सरसों फूले

तेरा जोबन एक पहेली, तेरी आस-निरास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई

रूप-रंग में तेरी मुंहफट चंचलता इतराये
अंग - अंग में सजी-सजाई सुन्दरता बल खाये
संग-संग अन-देखे सपनों की शोभा लहराये

जीवन के हर मोड़ पे तेरी आस रचाये रास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई

एक उड़ान से तू उकताये बार-बार पर तोले
एक चाल न भाये तुझको क़दम-क़दम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले

मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में बास नई